कोई शिकायत नहीं

श्रीमती कृष्णा हठीसिंग

भूमिका

श्रीमती सरोजिनी नायडू

अनुवादक

श्री मोहम्मद हैरिस

हुसैनीअलम रोड, हैदराबाद (दक्षिण).

प्रकाशक

नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर

प्रकाशक
गोकुलदास धूत
नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर

पहली बार : १९४७
मूल्य
पांच रुपये

मुद्रक
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली, ९२-४७

तुम्हारी किताब !

तुम्हारी जिस किताब का बहुत दिनों से इन्तज़ार था, उसे मैंने एक बार उत्सुकता से पढ़ डाला और फिर कई हिस्सों को दुबारा पढ़ा। मैं इस किताब के कुछ हिस्से कई बार फिर पढ़ना चाहूंगा, लेकिन फिलहाल मुझे यह किताब दूसरों को पढ़ने के लिए देनी पड़ी। इस किताब के बारे में ठीक राय देना मेरे लिए आसान नहीं है; क्योंकि एक तो मैं वैसे ही तुम्हारी तरफदारी करता हूँ, और, इससे भी ज्यादा, जिन घटनाओं का तुमने ज़िक्र किया है, उनका हमारे जीवन से इतना गहरा सम्बन्ध है कि मैं मुश्किल से ही उन्हें तटस्थ होकर देख सकता हूँ। तो भी, ऐसी हालत में, मैं जितनी सही राय दे सकता हूँ, देने की कोशिश करूंगा।

मुझे यह किताब पसन्द है। पढ़ने में बहुत आसान है और आकर्षक भी है। ये ही बातें तुम्हारे लिखने की खूबी साबित करती हैं। अपने बारे में लिखते हुए अपने आपको कुछ ऊंचा उठा देना या बनावटीपन न लाना मुश्किल काम है। तुम इस बात से दूर रही हो और तुम्हारे लिखने में एक ऐसी स्वाभाविक गति है और खुदबखुद एक ऐसा बहाव है कि जो पढ़ने वाले का दिल लुभा लेता है। तुम अच्छा लिखती हो और तुम्हारी किताब के कई हिस्से तो दिल हिला देने वाले और बहुत ही अच्छे हैं। जब कभी भी तुम इस ऊंचाई पर न भी रही हो तो कुछ बुरा नहीं हुआ है, क्योंकि इसमें तुम्हारी सचाई दिखाई दी है और अपने आपको सुन्दर शब्दों में छिपाने के बदले खुद को व्यक्त करने की कोशिश नज़र आती है। तुम्हारे चित्र का दायरा सीमित है और ऐसा होना भी चाहिए था; क्योंकि तुमने अपने चित्र का विषय ही ऐसा चुना है, ख़ास तौर पर यह पारिवारिक इतिहास है और यह इतिहास भी एक पूरी सिलसिलेवार कहानी न होकर कई अलग चित्रों का समूह है। न तुम उस अन्दरूनी कशमकश की गहराई में पहुँची हो, जो किसी जीवन-कथा या आत्म-कथा का जरूरी भाग है। लेकिन इस गहराई में पहुंचना तुम्हारी किताब के दायरे के बाहर होता और तुम्हें सब तरह की मुश्किलों

में डाल देता। तुमने इस विशेष रूप और सामग्री को चुनकर अच्छा ही किया।

मेरा ख़याल है कि अपनी किताब से संतुष्ट होने और उस पर फख्र करने के लिए तुम्हारे पास कारण मौजूद है। सारी किताब में दुःख की हलकी छाया दिखाई देती है, जैसे कि मानों दुर्भाग्य हमारा पीछा कर रहा हो। यह तुम्हारे मन का सच्चा प्रतिबिंब है और शायद बहुत से दूसरे दिलों का भी और यह सचमुच बदलती घटनाओंका कुदरती नतीजा है, जब हम पीछे निगाह डालकर उन पर गौर करते हैं। कभी-कभी जैसा कि किताब के नाम से भी नज़र आता है, किस्मत को ललकारा गया है, और यह ठीक ही है; क्योंकि अगर इतिहास का कुछ मतलब है तो यह कि हम लगातार किस्मत को ललकारते रहे हैं या चाहो तो यह भी कह सकती हो कि हम किस्मत को तुच्छ समझते रहे हैं और बिना शिकायत किए किस्मत के जवाब को स्वीकार करते रहे हैं। पहला वार हमारा था, न कि किस्मत का और हालांकि होने वाली घटनाओं का हमें ज्ञान नहीं है, तो भी जो नतीजे हो सकते थे उनका अंदाजा करने में हमने कमी नहीं की और इसलिए हालांकि ज़िन्दगी कभी-कभी मुश्किल और कड़वी रही है तो भी शायद ही कभी हम अचरज में पड़े हों या अचानक बिना जाने-बूझे घिर गये हों। हमने इस तरीके से कितनी कामयाबी पाई, इस बात का फैसला करना या यह बताना उसके लिए नामुमकिन है, जो खुद ही इसमें हिस्सा ले रहा हो।

कहीं-कहीं तुम्हारी किताब में इतनी जान है कि मेरे दिमाग में कई तस्वीरें आगईं और गुजरा हुआ जमाना मेरे सामने आकर खड़ा हो गया और घर की एक अजीब याद ने मुझे घेर लिया। दूसरोंपर और ख़ासकर अजनबियों पर इसका क्या असर होगा, मैं नहीं जानता। यह सच है कि बहुत से लोग हममें दिलचस्पी रखकर हमारा सम्मान करते हैं और वे तुम्हारी कहानी में दिलचस्पी लेंगे। किसी हद तक यह कहानी दूसरों के जीवन का भी प्रतिबिंब है।

—जवाहरलाल नेहरू

भूमिका

किसी भी पुस्तक की भूमिका लिखने के लिए मैं शायद ही कभी राजी होती हूं; लेकिन चूंकि कृष्णा हठीसिंह को मैं बचपन से ही जानती हूं, इसलिए इस स्मृति-संग्रह के लिए आशीर्वाद पाने के उनके हक को मैंने फौरन मंजूर कर लिया।

वह बताती हैं कि अगस्त के अशुभ इतवार के दिन जब बहुत से राष्ट्रीय कर्मीजन, जिनमें उनका लगभग पूरा कुटुम्ब भी शामिल था, जेल में डाल दिये गये थे तो बाद के लम्बे और चिंता से भरे महीनों की तनहाई में अपने को थोड़ी तसल्ली देने के लिए उन्होंने इस पुस्तक को लिखना शुरू किया।

सीधी-सादी भाषा-शैली में और पूरी सफाई के साथ अपने शुरू के दिनों की कहानी उन्होंने इस पुस्तक में कही है। वह अब भी तो बिल्कुल बालक ही हैं। धन और सौंदर्य से भरे-पूरे घर में अपने सुखद पर अल्लड़ बचपन का चित्र उन्होंने खींचा है, फिर एक विद्रोही और मुश्किल से काबू में आनेवाली लड़की का, जो ऐसे वायुमण्डल में पली थी, जिसे एक दुबले-पतले, पर ओह, कितने महान महात्मा ने यकीन न आनेवाले तरीके पर बदल डाला, यानी भरी-पूरी हालत से संघर्ष और भयंकर बलिदान की समर-भूमि के रूप में उसे परिणत कर दिया। इसके बाद लेखिका ने अपने स्वीजरलैण्ड-निवास और रोग-ग्रस्त भाभी की झलक दिखाई है और अपने पिता और भाई के साथ फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मन और रूस के भ्रमण का उल्लेख किया है। उस सिलसिले में वह बताती हैं कि विदेश में किन-किन प्रसिद्ध व्यक्तियों से उनकी भेंट हुई। आगे उन्होंने जनाने जेल में सत्याग्रही कैदी के अपने तजुरबे दिये हैं और बिना किसी छिपाव-दुराव के अपने परिणय और शादी के प्रसंग और नगरों और अपरिचित वायुमण्डल के नये तौर-तरीके के रहन-सहन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया का जिक्र किया है। अपने दोनों पुत्र, हर्ष और अजित, को भी वह पुस्तक में लाई हैं, जिनकी वजह से अब मौजूदा राजनैतिक आंदोलन में

सक्रिय भाग लेने से उन्हें वंचित हो जाना पड़ा है। यहां-वहां पुस्तक के पन्ने पिता-माता तथा अन्य स्नेही जनों की मृत्यु के कारण आंसुओं से भीगे हैं।

यह बहुत-कुछ निजी कहानी होते हुए भी नेहरू-परिवार के इतिहास के साथ घुली-मिली है और इसी कारण सर्वसाधारण के लिए यह महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक है। क्या पच्चीस वर्ष तक नेहरू परिवार का इतिहास स्वतंत्रता के लिये किये गये भारतीय संघर्ष के इतिहास का सजीव प्रतीक और एक महत्त्वपूर्ण अंग नहीं है ?

इस सीधे-सादे विवरण में महान् मोतीलाल की तस्वीर भी हमें मिलती है। कहां मिलेगा उन जैसा दूसरा ! यहां वह एक ऐसे भक्तिपूर्ण परिवार के सच्चे स्नेहभाजक कुलपति और अधिनायक के रूप में आते हैं, जिसे वे हृदय से प्रेम करते थे। उनके इस महान गुण से महात्मा गांधी भी बहुत प्रभावित थे।

फिर आते हैं जवाहरलाल। दुनिया के बड़े-बड़े कामों के लिए उत्साह और निर्भीकता-पूर्वक जिहाद बोलने वाले। अपने हथियारों को वे उतार फेंकते हैं और खंजर को म्यान में डाल देते हैं। फिर उनके विविध रूप—भाई, पति पिता, मित्र और छोटे बच्चों के सखा—सामने आते हैं।

यहीं पर लेखिका ने बड़े कोमल रंगों से जवाहर की स्नेहभाजिनी और बहादुर पत्नी कमला की छवि अंकित की है, जिसके संक्षिप्त जीवन और मरण की दुखद घटना देश के काव्य और आख्यानों का विषय बन गई है।

स्वरूप, जिन्हें अब विजयलक्ष्मी कहते हैं, इस कहानी की कारीगरी में चांदी के चमकीले तार की भांति आती है और इंदिरा भी बधू की धानी साड़ी में क्षण भर के लिए हमारी आंखों के आगे घूम जाती है।

लेकिन मेरे लिए ठिंगनी शानदार, वृद्ध और कष्ट-पीड़ित स्त्री—मोतीलाल की पत्नी, जवाहर की माता—की याद सबसे कीमती है, जिनमें प्रेम और श्रद्धा के कारण आश्चर्यजनक साहस और सहनशीलता आगई थी। नाजुक जवानी के वर्षों में जिनकी एक अनमोल हीरे की भांति सावधानी के साथ रक्षा और देखभाल की गई थी, वहीवृद्धावस्था में आजादी के ऊबड़-खाबड़ और खतरनाक रास्ते पर चलने वालों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए मणि का प्रकाश बन गई थीं।

बचपन में विधवा होजाने वाली बड़ी बहन का चित्र भी बड़ा हृदय-

द्रावक है, जिन्होंने नेहरू-परिवार की अथक सेवा के लिए अपना जीवन ही समर्पित कर दिया था और जो अपनी बहन के प्रति अपना अंतिम कर्तव्य पूरा करके उनकी मृत्यु के चौबीस घण्टे बाद स्वयं चल बसी थीं। जो जीवन में बहन से अभिन्न रही थीं, वह मृत्यु के बाद भी उनसे अलग न हो सकीं।

नेहरू-परिवार के जीते-जागते इतिहास के इस चित्र—पटल पर कहीं गहरे तो कहीं हल्के, कहीं धुंधले तो कहीं बिल्कुल स्याह रंग भी आते हैं, जो मनुष्य के भाग्य के साथ सम्बद्ध हैं।

पुस्तक यहां खत्म हो जाती है; लेकिन नेहरू खानदान की सजीव कहानी आगे चलती जाती है। शानदार पिता और शानदार पुत्र द्वारा कायम कीगई देशभक्ति की महान परम्परा को उनके आगे आनेवाली पीढ़ी उचित रूप से सम्मानित करेगी।

—सरोजिनी नायडू

दो शब्द

तीन साल हुए, मेरे पति ने मुझ से कहा कि जो किताब लिखने का मैं इरादा करती हूँ वह लिख डालूं, पर उस वक्त मैंने इसकी कोशिश नहीं की। मार्च १९४१ में जब राजा जेल गए और मैं अकेली रह गई तो मैंने तय किया कि इस काम को शुरू करूं। मैं किताब के एक-दो अध्याय लिख चुकी थी कि मेरा बड़ा लड़का टायफाइड से बीमार पड़ गया और मैं लिखने का काम जारी न रख सकी। राजा छोड़ दिये गए और हम दोनों ने अपने बच्चे की बीमारी के कारण कई महीने बड़ी परेशानी में बिताये। बच्चा अच्छा हुआ तब भी मैं किताब का काम फिर से शुरू न कर सकी।

एक साल से कुछ ज्यादा समय इसी तरह बीत गया। राजा दुबारा अनिश्चित काल के लिए जेल चले गए और मैं फिर एक बार अकेली रह गई। शुरू के कुछ महीने बड़ी मुश्किल से कटे और किसी काम में दिल लगाना और जमकर कोई काम करना आसान न था। पर धीरे-धीरे नई परिस्थितियों की मैं आदी हो गई। अब मेरे पास कोई काम न था और वक्त काटना मुश्किल होता था। इसलिए मैंने अपनी किताब का काम फिर शुरू करने का निश्चय किया। जो विचार और पुराने दिनों की याद मेरे मन में प्रवाह की तरह पैदा होती थी उन्हें लिख सकने की वजह से उन महीनों का अकेलापन बर्दाश्त करने में मुझे कुछ मदद मिली। इस काम में अगर मुझे अपने पति का पथ-प्रदर्शन मिलता और अपने भाई की कड़ी नुक्ता-चीनी भी मिली होती तो मैं उसका खुशी से स्वागत करती, पर ऐसा हो नहीं सका। अगर हमारे एक दोस्त इस काम में मदद न करते और मेरे लिखे हुए पर नजर डालकर ठीक सलाह-मशविरा न देते तो मैं यह काम इतनी जल्दी खत्म न कर सकती। उनकी मदद, सलाह और कभी कम न होने वाली दिलचस्पी—इन चीजों ने इस काम में मेरी बड़ी मदद की है, खासकर ऐसे दिनों में जब मैं इतनी परेशान रहती थी और तबियत कुछ ऐसी बुझी हुई कि कोई भी काम करने को जी नहीं चाहता था।

मैं डॉ० अमिय चक्रवर्ती की, जिन्हें मैं 'अमिय दा' कहती हूं और अपना 'गुरु' मानती हूँ, आभारी हूं, जिन्होंने बार-बार मुझ से कह-कह कर यह किताब लिखने को तय्यार किया। कई साल से वह मुझ से यह कहते रहे हैं कि मैं इस प्रकार के पुराने संस्मरणों की एक किताब लिखूं। पर मैंने महसूस किया कि मैं लिख न सकूंगी। उन्हें पूरा निश्चय था कि मैं लिख सकती हूँ, पर मैं कुछ भी लिखने से झिझकती थी। मैं उनकी सलाह नहीं मानती थी, पर अमिय दा जब कभी मुझे खत लिखते, बराबर इस बात पर जोर देते थे। उधर यरवदा जेल की डरावनी दीवारों के भीतर से राजा भी मेरी हिम्मत बढ़ाते थे। इसीलिए आखिर मैंने बड़ी झिझक के साथ यह काम शुरू किया।

बीमारी के बावजूद भी श्रीमती सरोजिनी नायडू ने इस किताब की भूमिका लिखने का कष्ट किया है, जिसके लिए मैं उनकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मेरा उनसे बहुत पुराना परिचय है और मेरे घराने के साथ उनकी दोस्ती और गहरा प्रेम सबको मालूम है।

इस किताब में 'बचुली' का जो किस्सा है वह पहले 'स्टेट्समैन' (कलकत्ता) में छपा था। 'याद' विश्व भारती में छपा था और 'दो बहनें' 'हिंदू' (मद्रास) में। मैं इन सबकी आभारी हूं कि उन्होंने ये चीजें इस किताब में शामिल करने की इजाजत दी।

प्राक्कथन

"नहीं, अभी रात नहीं हुई है,
दो-तीन पहरेदार अभी खड़े पहरा दे रहे हैं,
परंतु अंधेरा भी बहुत बढ़ रहा है, और
ये पहरेदार, शायद सुबह होने से पहले ही
कत्ल कर दिये जायं।"

—पिअरी व्हां पासे

९ अगस्त १९४२ को सुबह ठीक पांच बजे बंबई की पुलिस अचानक हमारे घर पहुँची। उनके पास जवाहर और राजा की गिरफ्तारी के वारंट थे। आल इंडिया कांग्रेस कमिटी के जलसों में कई दिन के भारी काम की वजह से हम सब थकान से चूर थे। रात को बहुत देरतक हम सब बैठे हाल की बातों पर बहस करते रहे। आधी रात को हमारे मेहमान चले गए और जवाहर, राजा और मैं उसके बाद भी एक घंटे और बातें करते रहे। फिर हम सब सो गये।

रात को इतनी देर तक जागने के बाद बड़े तड़के जगाया जाना ही काफी बुरा था, पर अपने दरवाजे पर उस समय पुलिस को मौजूद पाना उससे भी ज्यादा बुरा था। जब दरवाजे की घंटी बजी तो मैं गहरी नींद में थी; फिर भी मैं घंटी सुनते ही उठ बैठी और मुझसे किसी के यह कहने की जरूरत न पड़ी कि पुलिस आगई है। उस वक्त सिवाय पुलिस के और आ भी कौन सकता था! मैं जल्दी से जवाहर के कमरे में गई, यह सोचकर कि वारंट सिर्फ उन्हीं के लिए होगा। वह बहुत ज्यादा थके हुए थे। इसलिए उनकी आंखें भी नहीं खुल रही थीं और न वह अभी ठीक से जग ही पाये थे। चंद मिनट के भीतर हमारा घरभर जाग गया और जब हमने यह समझ लिया कि होनहार होकर ही रहती है तो हम सब जवाहर का सामान

बांधने में उन्हें मदद देने लगे। राजा भी कुछ किताबें जमा करने में हाथ बंटा रहे थे कि मेरी भतीजी इंदिरा ने कहा, "राजा भाई, आप क्यों तैयार नहीं हो रहे हैं?" यह सुनकर मैंने तेजीसे पलट कर पूछा, "किसलिए?" झटसे इंदिरा ने कहा, "इनके लिए भी तो वारंट है।" न मालूम क्यों, पर हममें से किसी को यह खयाल नहीं था कि पहले ही हल्ले में वर्किंग कमेटी के मेम्बरों के अलावा और लोगों को भी गिरफ्तार किया जायगा, पर हम गलती पर थे।

अब राजाने भी अपना सामान ठीक किया और बहुत जल्द वे दोनों जाने के लिए तैयार हो गए। हमने उन्हें बिदा किया और पुलिस अफसर अपने पहरे में उन्हें उनकी गाड़ियों तक ले गये। जवाहर को किसी ना-मालूम जगह ले जाया जारहा था और राजा को यरवदा सेंट्रल जेल पूना में। हमने उन दोनों को नमस्कार किया और सब यह सोचते हुए वापस लौटे कि न मालूम इस बार भविष्य में हम सब की किस्मत में क्या लिखा है।

उस वक्त हमारे यहां बहुत से मेहमान आये हुए थे और उनसे सारा घर भरा हुआ था। उनमें से सिर्फ दो आदमी ही गये थे, पर अब घर की हर चीज बदली हुई मालूम होती थी। अब किसी चीज की कमी हो गई थी और कोई ऐसी चीज चली गई थी जिसके कारण पहले घरभर में जान थी और अब वही घर सूना मालूम हो रहा था। कई दिनों से हमारे घर आने जानेवालों का तांता बंधा हुआ था और अब उनकी संख्या और भी बढ़ गई। दोस्त, रिश्तेदार और अखबारों के जंगी रिपोर्टर हमारे घर के चक्कर काटने लगे। वे इन गिरफ्तारियों की तफसील मालूम करना चाहते थे। फिर भी हमें वही याद आ रहे थे जो हमसे दूर चले गये थे और हमारे मन में हर वक्त उन्हीं का खयाल बना रहता था।

बिलकुल ऐसी ही बात कई बार हो चुकी थी, पर फिर भी कोई इस बात का अभ्यस्त न हो पाया था। हर बार जब ऐसा होता तो कुछ परेशानी और थोड़ा अकेलापन मालूम होने लगता था।

अब साल भर से मेरे प्यारे और अजीज मुझसे दूर जेल की भयानक दीवारों और लोहे की शलाखों के पीछे बंद थे। उन्हें देखना भी मना था। हालांकि उनकी गैरहाजिरी मेरे जीवन में बहुत बड़ी कमी पैदा करती है, परन्तु मुझे न तो मायूस करती है और न मेरे कदम उससे डगमगाते हैं। मुझे पूरा यकीन है कि जिस मक़सद के लिए उन्हें जेल में डाल दिया गया है वह

सच्चा और सही है और इसलिए यह अनिवार्य है कि वे उसके लिए तकलीफें उठाएं।

एक साल किसी इन्सान की जिंदगी में कोई बड़ी लंबी मुद्दत नहीं है और पूरी कौम की जिंदगी में तो यह मुद्दत कुछ भी हकीकत नहीं रखती। पर कभी-कभी ऐसा होता है कि एक साल भी बहुत लंबा हो जाता है और उसका हर महीना खासी लंबी मुद्दत मालूम होने लगती है। मैंने कई बड़े भारी आंदोलन देखे हैं और क्या मालूम अभी और कितने ऐसे ही आंदोलनों में से गुजरना होगा। इन सब वर्षों में केवल मैंने ही नहीं, बल्कि हमारे और बेशुमार साथियों ने भी तरह-तरह की भावनाओं का अनुभव किया है। हमने ऐसी घड़ियां भी देखी हैं जो बड़ी खुशी की घड़ियां थीं और ऐसी भी जिनमें असीम निराशा थी। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि हमारे चारों ओर अंधेरा छा गया है और हमें रास्ता सुझाई नहीं दिया है। फिर ऐसे मौके भी आए हैं जब इस अंधेरे में रोशनी की कोई किरण दिखाई दी है और उसी से हमारे मन में अपनी लड़ाई जारी रखने के लिए नई आशा और नया जोश पैदा हुआ है।

परेशानी और तनहाई के इन महीनों में बहुत-सी बातों की याद मेरे मन में आती रही है। सिर्फ इस खयाल से कि दिल किसी भी काम में लगा रहे, मैंने इन चीजों को लिखना शुरू किया और धीरे-धीरे इसी से यह किताब तय्यार हो गई। इन बातों को लिखते वक्त मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं फिर एक बार अपने बचपन के और उसके बाद के दिनोंमें पहुंच गई हूं। इनमें कुछ बातों की याद दिल को खुश करनेवाली रही है और कुछ बातों से तकलीफ भी हुई है। पिछले जमाने की बहुत-सी बातें याद करते हुए मैं हंसी भी हूं और मेरी आंखों से आंसू भी निकल पड़े हैं। इनसे मुझे थोड़ी खुशी भी हुईहै, पर शांति बहुत मिली है। कभी-कभी थोड़ा सिर दर्द भी महसूस हुआ है।

मेरे बचपन का जमाना बड़े ही सुख और शांति से गुजरा है। हमारा कुनबा छोटा-सा था और हमारी छोटी-सी दुनिया सुख और शांति की दुनिया थी, जिसमें दुख या तकलीफ नाम को न थी। धीरे-धीरे हमारा जीवन काफी बदल गया, फिर भी हम सब एक साथ रहे। इसलिए इन बातों का कोई खास असर नहीं पड़ा। पर ज्यों-ज्यों वक्त गुजरता गया, परिस्थिति ने हमें मजबूर किया कि हम एक-दूसरे से दूर हो जायं। फिर भी समय बीतता गया और हालात

जैसे कुछ भी रहे उन्हीं के मुताबिक हम अपने-आपको बदलते रहे और नये तरीकों और नये रास्तों पर चलकर शरीर और मन से अपने-आपको आने वाली परिस्थितियों के मुकाबले के लिए मजबूत बनाते गए।

कुछ महीने पहले मैंने जवाहर को 'हिंदुस्तान में किसी जगह' खत लिखा और हमारे खानदान में पिछले पंद्रह साल की घटनाओं का जिक्र किया। उन्होंने मेरे खत का जो जवाब दिया उससे अच्छी तरह पता चलता है कि हमारा घर क्या था और कैसा हो सकता है और जिंदगी का हम पर क्या असर पड़ा। पर जिन मुसीबतों का हमें मुकाबला करना पड़ा उनका हमें जरा भी अफसोस नहीं है। वे लिखते हैं—

"तुमने १९२८ के और उस जमाने के हमारे संगठित परिवार की बाबत लिखा है। अब हमारे बहुत से अजीज, जो हमें प्यारे थे, मर चुके हैं और जो बाकी हैं वे इधर-उधर बिखरे हुए हैं और एक-दूसरे से मिल भी नहीं सकते। हर पीढ़ी को जमाने का जो सबक दोहराया जाता है वह उस पीढ़ी को अपने ज़ाती तजुरबे से ही सीखना पड़ता है। संघटन के बाद फिर विघटन होता है। लेकिन नया संघटन शायद पुराने संघटन से ऊंची सतह पर होता है; क्योंकि उसके अंदर पिछली कामयाबियों या नाकामयाबियों की याद कहीं-न-कहीं अर्द्ध-चेतन मन में रहती है। पिछले जमाने का बोझ हमारे साथ लगा रहता है और वह भार भी है और प्रेरणा भी। इसलिए कि वह एक ही वक्त में हमें नीचे की तरफ भी खींचता है और आगे को भी बढ़ाता है। कभी-कभी हम अपने आपको जीवन, यौवन और शक्ति से पूर्ण पाते हैं और कभी ऐसा होता है कि हजारों बरसों का बोझा हमें दबा लेता है और इस लंबी और अनन्त यात्रा में हम अपने आपको बूढ़ा और थका हुआ महसूस करने लगते हैं। ये दोनों हमारे व्यक्तित्व के अंग हैं और हम जैसे भी हैं इन्हीं के द्वारा बने हुए हैं और इन दोनों के निरंतर सम्मिश्रण और घात-प्रतिघात में हमेशा कोई-न-कोई नई चीज पैदा होती रहती है। हम उन प्राचीन सभ्यताओं की औलाद हैं जिनके पीछे सैकड़ों तेजस्वी पीढ़ियों के संघर्ष और सफलताओं का इतिहास और उनके जीवन की स्थिरता और गति-प्रगति की कहानी है। इसलिए हम इस सत्य का अनुभव उन लोगों से अधिक कर सकते हैं, जिनकी सभ्यता अपेक्षाकृत नई है और जिनका अतीत न इतना जटिल है और न जिसकी छाप इतनी गहरी है।

"हमारे पास ऐसा बहुत कुछ है जिससे हमारे मन और आत्माका संतुलन बना रहता है और हमें जीवन के बारे में एक ऐसा शांत और विश्वास-पूर्ण दृष्टिकोण मिलता है, जिसके कारण हम बदली हुई घटनाओं के बीच न उत्तेजित होते हैं और न चंचल। यही दरअसल पुरानी तहजीब की खास निशानी है। यही वह चीज है जो चीन के पास काफी से ज्यादा है और मेरा खयाल है कि वही चीज हिन्दुस्तान के पास भी है और उसी के कारण हिन्दुस्तान की अच्छी ही गुजरेगी।

मैं जब बच्चा था तो मुझे याद है कि हमारे खान्दान में बीस-पच्चीस आदमी थे, जो सब एक साथ रहते थे—जैसे मिले-जुले खानदानों में रहा करते हैं। मैंने इस बड़े खान्दान को टूटते हुए और उसके हरेक हिस्से को एक अलग संघटन का केन्द्र बनते देखा है और फिर भी ये अलग-अलग हिस्से प्रेम और समान हित के रेशमी धागों से बंधे रहे और उन सब का एक बड़ा संगठन हमेशा बना रहा। यह सिलसिला जारी ही रहता है और इस तरह जारी रहता है कि आपको पता भी नहीं चलता। पर जब घटनाएं जल्दी-जल्दी घटने लगती हैं तो मन को एक तरह का धक्का लगता है। जरा सोचो कि पिछले पांच बरसोंमें चीनमें क्या कुछ होता रहा और वहां जो महान् क्रांति हुई उसने वहांके हजारों-लाखों खान्दानों का ध्वंस कर दिया। फिर भी चीनी कौम जिंदा है और पहले से ज्यादा ताकतवर है। व्यक्ति पैदा होते हैं, बड़े होते हैं और लड़ाई और आफतों के होते हुए भी अपनी जाति और मानवता की परंपरा को चलाते हैं। कभी-कभी मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि हमें हिन्दुस्तान में भी अगर ऐसे बड़े अनुभवों का मौका मिले तो हम अच्छे रहेंगे। जो हो, हमें भी कुछ न कुछ तजुरबा हो ही रहा है और इस तरह धीरे-धीरे मगर पूरे यकीन के साथ हम भी एक नये राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं।"

: १ :

"फूल खिले हों, किसी भौंरे के समान आशा रस पी रही हो;
सुगंधित वायु बह रही हो और काव्य का स्फुरण होरहा हो !
ये दोनों बातें मेरे जीवन में थीं। प्रकृति के साथ जीवन खेल
रहा था। जब मैं छोटा था तब आशा और काव्य से जीवन
संपन्न था।"

—कोलरिज

सन् १९०७ के नवम्बर की एक सुबह—जब कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था—मैं प्रयागराज में पैदा हुई थी। अब यही शहर इलाहाबाद के नाम से मशहूर है। हमारा पूरा घर रोशनी से जगमगा रहा था और बहुत रात बीत जाने पर भी घर में लोग जाग रहे थे; क्योंकि मेरी माता को बड़ा कष्ट हो रहा था और सभी बच्चे के पैदा होने का इन्तजार कर रहे थे। बड़ी तकलीफ के बाद मैं पैदा हुई। मोटी-ताजी और तन्दुरुस्त। मुझे इसका पता भी न था कि मेरे इस दुनिया में आने के समय मेरी कमजोर और नाज़ुक मां को इतना कष्ट हुआ कि उनकी जान ही खतरे में पड़ गई थी। इसके कई हफ्ते बाद भी वे जिन्दगी और मौत के बीच झूलती रहीं। इधर मैं नर्सों और दूसरों की निगरानी में उसी तरह बढ़ती रही जैसे आमतौर पर बच्चे को बढ़ना चाहिए !

मां धीरे-धीरे ठीक होती गईं, पर बहुत दिनों तक कमजोर रहीं। उनके लिए यह मुमकिन न था कि वह मेरी देख-भाल कर सकें। इसलिए मेरी एक मौसी और नर्सें मेरी देख-भाल करती रहीं। जब मेरी उम्र तीन साल के करीब हुई तो उस मेम ने, जो मेरी बहन स्वरूप की देख-भाल किया करती थीं, मेरी भी देख-रेख शुरू की। मेरे भाई जवाहर मुझसे अठारह साल बड़े हैं और मेरी बहन सात साल। इसलिए मैं एक इकलौते बच्चे की तरह, जिसका कोई साथी न हो, पली। मुझमें और मेरे भाई और बहन के बीच में कोई भी चीज आम दिलचस्पी की न थी। भाई को तो मैं जानती भी न थी; क्योंकि जब मैं पैदा हुई वह इंग्लैंड में थे और मेरी उनसे पहले-पहल उस वक्त भेंट हुई जब मैं पांच साल की थी।

पैदा हुई उस वक्त पिताजी एक बड़े वकील की हैसियत से काफी नाम पैदा कर चुके थे और रईस थे। पिताजी ने हमारा घर आनन्द-भवन उस वक्त खरीदा था, जब जवाहर की उम्र दस सालकी थी। जिस जगह यह मकान बना हुआ है उसे बहुत ही पवित्र माना जाता है; क्योंकि आम विश्वास है कि यही वह जगह है जहां रामचन्द्रजी के चौदह बरस के वनवास से लौटने पर भरत से उनका मिलाप हुआ था। करीब ही भारद्वाज आश्रम है, जहां पुराने जमाने में एक बड़ा भारी गुरुकुल था और जो अब भी तीर्थ-स्थान माना जाता है। हमारा घर देखने के लिए लोगों की हमेशा ही भीड़ लग जाया करती थी—खासकर कुम्भ मेले के दिनों में, जो प्रयाग में हर बारह बरस बाद लगता है। इन दिनों लाखों आदमी इस पवित्र शहरमें 'संगम' पर स्नान करने आते हैं। उन दिनों हमारे घरको देखने जो लोग आते उनकी तादाद इतनी ज्यादा होती कि उनको रोक रखना नामुमकिन हो जाता। ये लोग हमारे घर के अहाते में फैल जाते थे और वहां थोड़ी देर आराम करते थे। हर साल माघ मेले के मौके पर काफी लोग वहां आते थे। उनमें बहुत कम लोग ऐसे होते थे जो हमारा घर देखे बिना अपने शहर या गांव वापस लौटते हों। इनके वहां आने का कारण कुछ तो यह होता था कि वह इस जगह को तीर्थ-स्थान मानते थे और कुछ यह भी कि वे पिताजी और जवाहर को देखना चाहते थे जिनके बारे में वे बहुत कुछ सुन चुके थे।

आनन्द-भवन लम्बा-चौड़ा मकान है। उसके चारों तरफ विशाल बरामदे हैं और इर्द-गिर्द बड़ा बाग है। मकान के एक तरफ लॉन है, पिछवाड़े फलों का बाग और सामने फिर लॉन—जिसमें एक सावन-भादों(ग्रीष्म-भवन)और एक टेनिस कोर्ट बना हुआ था। सावन-भादों के बीच में शिवजी की एक मूर्ति थी। यह मूर्ति बड़े-बड़े पत्थरों पर प्रतिष्ठित थी और ये पत्थर एक-दूसरे पर इस तरह रखे गये थे कि सब मिलकर एक छोटे-से पहाड़ की तरह दिखाई देते थे। शिवजी के सिर से पानी का एक छोटा चश्मा फूटता था, जो बहकर नीचे तालाब में गिरता था। इस तालाब में चारों तरफ सुन्दर फूल खिले रहते थे। गर्मियों में यह जगह बड़ी ठंडी रहती थी और मुझे तो बहुत ही पसन्द थी। बाद में जब हमारा नया मकान बनाया गया तो यह सावन-भादों गिरा दिया गया; क्योंकि यह नई इमारत के रास्ते में पड़ता था। पिताजी के पास बहुत से घोड़े, कुत्ते,

मोटरें और गाड़ियां थीं और उन्हें सैर-सपाटे का और घोड़े की सवारी का बड़ा शौक था। अस्तबलों के आस-पास घूमने और घोड़ों को देखते रहने में मुझे बड़ा आनंद आता था। खुद मेरा भी एक टट्टू था—बड़ा ही खूबसूरत और दूध की तरह सफेद। बहुत से लोगों ने इस जानवर की ऊंची कीमतें लगाईं, पर पिताजी उसके बेचने से इन्कार करते रहे। मैं भी उसे ज्यादा दिन अपने पास न रख सकी; क्योंकि एक दिन उसे सांप ने डस लिया और वह अपने अस्तबल में मरा हुआ पाया गया। मेरे लिए यह बड़ा भारी सदमा था, कारण कि मैं उसे बहुत चाहती थी और कई हफ्ते तक मैंने उसका शोक मनाया।

मेरे बचपन में अक्सर रिश्तेदार हमारे यहां बने रहते थे। कभी-कभी उनमें बच्चे भी हुआ करते थे और उनके साथ खेलने में मुझे बड़ा अच्छा लगता था। मुझे यह देखकर बड़ा अचम्भा होता था कि माताजी बीमार होते हुए भी अपने बिस्तर पर पड़े-पड़े इन सब लोगों का खयाल रखती थीं और पिताजी को इतना सारा काम रहते हुए भी वह इतना वक्त निकाल ही लेते थे कि हर एक के साथ कुछ मिनट बितायें और इस बात का इतमीनान कर लें कि सब आराम से हैं और खुश हैं। उनकी मिसाल उस चरवाहे की-सी थी जो जाहिर में तो बिलकुल बे-पर्वाह दिखाई देता है, पर जिसकी निगाह हरदम अपने पूरे गल्ले पर रहती है और पिताजी यह काम बड़ी ही खूबी से करते थे।

मेरी पैदाइश से कुछ साल पहले मेरी मां के एक लड़का हुआ था, जो जिन्दा नहीं रहा और जिसका गम माताजी कभी भूल न सकीं। जब मैं पैदा हुई तो माताजी को बड़ी ही निराशा हुई, पर पिताजी के लिए इसमें कुछ भी फर्क न था। मेरा बचपन अजीब किस्म के अकेलेपन में बीता। मेरे साथ खेलनेवाले बच्चे बहुत ही कम थे। और मुझे बहुत से नियमों का, जो मेरे लिए निश्चित् किये गये थे—पालन करना पड़ता था। सुबह उठने से लेकर रात को सोने के समय तक मेरे वक्त का एक-एक क्षण मुकर्रर किये हुए कामों में बीतता था। मुझे यह बात बड़ी ही नापसन्द थी, इसलिए कि मैं जानती थी कि दूसरे बच्चों को उनके मां-बाप ज्यादा आजादी देते थे और उनके लिए बंधे-बंधाये नियम बनानेवाली संरक्षिका नहीं होती थी। मेरी संरक्षिका मुझ पर जो हुकूमत चलाती थी उसे भी मैं नापसन्द करती थी और अक्सर मैं उसका हुक्म नहीं मानती थी, क्योंकि एक तो यह कि मैं जिद्दी लड़की थी, दूसरे मेरी तबियत में इतनी तेजी

और गुस्सा था कि अक्सर वह मुझपर गालिब रहता था। मुझे गुस्सा आने में देर नहीं लगती है, पर वह बच्चों की तरह दूर भी जल्दी हो जाता है। बहुत कम ऐसा होता है कि मेरा गुस्सा ज्यादा देर तक रहे। वैमनस्य उसमें नाम को भी नहीं होता, पर अक्सर उसकी वजह से मुझे फ़िजूल की परेशानियों का शिकार होना पड़ता है।

सजा पाना, अकेले बन्द कर दिया जाना या रात का खाना न मिलना, यह मेरे लिए अक्सर पेश आनेवाली बातें थीं, पर मेरी बहनको शायद ही कभी ऐसी सजा मिली हो। वह हमेशा आज्ञाकारिणी और नर्म तबियत की थी—शायद इसीलिए कि आज्ञा मान लेने में आज्ञा भंग करने से कम कष्ट है। पर अपनी नाराजी और नाफरमानी के होते हुए भी मैं अपनी उस्तानी को दिल में चाहती थी और मैं जानती थी कि वे भी मुझे बहुत चाहती थीं।

बचपन में मुझे अपने माता-पिता को देखने का बहुत कम मौका मिलता था। पिताजी हमेशा काम में लगे रहते थे और मुझे वह सुबह थोड़ी देर और फिर शाम को दिखाई देते थे। माताजी को मैं ज्यादा देखती थी; पर उनसे मेरा अधिक काम न रहता था। जब उनकी तबियत ठीक होती तो वे चुप बैठ नहीं सकती थीं और हर दम घर के किसी-न-किसी काम में लगी रहती थीं, यद्यपि उनका छोटे-से-छोटा हुक्म मानने के लिए नौकरों की पूरी फौज घर में मौजूद थी। मैं उन्हें बहुत प्यार करती थी और उनकी सुन्दरता को तो मैं पूजती थी, पर अक्सर यह भी होता कि मेरा बाल-हृदय इस विचार से दुखी होता कि वह मेरा उतना खयाल नहीं रखतीं, जितना मैं चाहती थी कि वे रखें।

मेरे भाई जवाहर उनकी आंख के तारे थे और वह इस बात को छिपाती भी न थीं कि उन्हें जवाहर से ज्यादा लगाव है। पिताजी को भी जवाहर से कुछ कम प्रेम या उन पर कुछ कम गर्व न था; बल्कि शायद माताजी से भी वह इस बारे में दो कदम आगे ही थे, पर इस बातको कम जाहिर होने देते थे; क्योंकि उन्हें न्याय और इंसाफ का बहुत खयाल रहता था और वे नहीं चाहते थे कि हममें से किसी को यह विचार हो कि कोई दूसरा उनका ज्यादा लाड़ला है। पिताजी इस बात में कामयाब भी होते थे। फिर भी हमेशा जवाहर की तारीफ सुनते-सुनते मुझे उनसे कुछ ईर्ष्या-सी होने लगी और मुझे इसका अफसोस न था कि वे घर से दूर हैं।

मेरी बहन स्वरूप बड़ी ही सुंदर थीं और हर किसी ने उन्हें बिगाड़ रखा था। फिर भी मुझे उनसे कभी भी ईर्ष्या नहीं हुई। मैंने इस बात को मान लिया था कि कोई भी, जो इतना सुंदर हो, जितनी वह हैं, स्वभावतः उसे सभी को लाड़-चाव करना चाहिए। और मैं खुद भी उनको बहुत ज्यादा चाहती थी।

मेरे बचपन में हर काम का समय घड़ी की तरह बंधा हुआ था। सुबह घोड़े की सवारी की जाती थी जिसमें मुझे बहुत लुत्फ आता था और अब भी आता है। पिताजी बड़े अच्छे घुड़सवार थे और उनका अस्तबल भी बहुत अच्छा था। हम तीनों ने यानी जवाहर, स्वरूप और मैंने बचपन ही से अर्थात् जब हमने चलना सीखा उन्हीं के साथ घुड़सवारी सीखी और हम सबको इसका बड़ा शौक था, हालांकि अब हमें इस सवारी का मौका कम ही मिलता है। घुड़सवारी के बाद अपने बड़े बाग के कोने में मैं अपनी उस्तानी से सबक लेती थी। खाने के वक्त तक का सुबह का सारा समय इस तरह गुजर जाता था। भोजन के बाद मुझे कुछ देर आराम करना पड़ता था और यह बड़ी ही चिढ़ाने वाली चीज थी। फिर पियानो बजाना सीखती थी। अनंतर कुछ और पढ़ लेनेके बाद पढ़ाई खत्म होती थी। शाम को हम गाड़ी पर सैर करने जाया करते थे, इस गाड़ी में दो बर्मी टट्टू जोते जाते थे जो मेरे पिताजी को बड़े ही पसंद थे। इसके अलावा शामका वक्त अक्सर बेलुत्फी से कटता था। उस जमानेमें सिनेमा का उतना रिवाज न था जितना अब है और मुझे बहुत कम सिनेमा देखने की इजाजत मिलती थी। कभी-कभी कोई सर्कस देख लेना या किसी मेले में चले जाना बहुत काफी समझा जाता था। अब मेरे दोनों लड़के, जिनमें से एक की उम्र सात साल और दूसरे की आठ साल की है, हिंदुस्तानी और अमरीकन फिल्मों के बारे में उससे बहुत ज्यादा जानते हैं, जितना मैं बारह सालकी उम्रमें इस बारे में जानती थी। कभी-कभी मुझे साथ खेलने के लिए कुछ दोस्त मिल जाते थे, पर हमेशा ऐसा नहीं होता था। इसलिए मैं अपने घर के बड़े अहाते में घूम-फिरकर अपना दिल बहलाती थी। जिंदगी पर मुझे बड़ी हैरत भी होती थी, पर मैं अपने विचार बस अपने ही तक रखती थी; क्योंकि मुझे बचपन ही में सिखाया गया था कि 'बच्चे इस लिए हैं कि लोग उन्हें देखें, इसलिए नहीं कि ज्यादा बातें करें और हर बात की खोज में रहना और बहुत ज्यादा सवाल करना बुरी आदतों की निशानी है।' ऐसी हालत में मुझे अपने विचार प्रकट

करने का कभी मौका ही नहीं मिला और मेरे दिमाग में सैंकड़ों ऐसे सवालात थे जिन्हें पूछने के लिए मैं बेकरार थी—फिर भी मुझे इसका मं.का ही नहीं मिलता था।

स्वरूप जब हमारे माता-पिता के साथ विलायत गई तो वह पांच साल की थी और वहीं पिताजी ने हमारी उस्तानी मिस हूपर को इस काम पर रखा। वह बड़ी भली थीं, उनकी तालीम भी अच्छी हुई थी और बड़े अच्छे खानदान की थीं। उनके खयालात पुराने थे और अनुशासन और पूरी तरह आज्ञापालन—इन बातों पर बहुत जोर देती थीं। स्वरूप से इस तरह पर काम लेना आसान था, पर मैं, जिसने न सिर्फ अपने पिताजी का, बल्कि और भी कई पूर्वजों का हठ विरासत में पाया था, उनके लिए एक बड़ी भारी समस्या थी। बड़ी-से-बड़ी सजा देकर भी मुझे दबाया नहीं जासकता था, पर मामूली-सी झिड़की भी इस बात के लिए काफी होती थी कि मैं पानी-पानी हो जाऊं और जो काम कहा गया हो वह शौक से करूं। बदनसीबी से झिड़कियां कम मिलतीं और सजा अक्सर मिला करती थी। इस तरह मैं एकाकी बच्ची से एक अजीब क़िस्म की लड़की बन गई जो चाहती थी कि लोग उससे प्यार करें, उसका दिल बढ़ाएं, जो ज्ञान की भूखी थी पर जिसे ये चीजें पुराने तरीके के सिवा किसी और तरीके से नहीं मिलती थीं। मेरे माता-पिता मेरे लिए कुछ अपरिचित ही-से थे और अपने भाई को तो मैं जानती ही न थी। मेरी बहन ही एक ऐसी थीं, जिनसे मैं रोज मिलती थी। उनके अलावा मेरी उस्तानी थीं, जिन्हें मैं कभी बहुत चाहने लगती थी और जिनसे कभी-कभी मुझे बड़ी नफरत भी हो जाती थी।

मेरे जीवन में सबसे पहली बड़ी घटना सन् १९१२ में मेरे भाई का विलायत से वापस आना था। मैं उनसे बिलकुल अपरिचित थी और यद्यपि उनके घर आने की खबर से मुझे कुछ खास खुशी नहीं हुई थी फिर भी मैं उन्हें देखने के लिए बड़ी उत्सुक थी। उनके आने से हफ्तों पहले मेरे माता-पिता अपने बेटे और वारिस के स्वागत की तय्यारियों में लगे हुए थे। माताजी अपनी खुशी छिपा नहीं सकती थीं और काम में बेहद मगन थीं। वह दिन भर इधर-से-उधर फिरती रहती थीं और इस इन्तजाम में लगी रहती थीं कि जब उनका प्यारा बेटा घर लौटे तो हर चीज दुरुस्त हो। मुझे याद है कि उन दिनों वह कितनी सुखी दिखाई देती थीं और उनके चेहरे पर वह

रौनक और तेज दिखाई देता जो इससे पहले मैंने कभी न देखा था। मेरे मन में कभी-कभी इस विचार से खासी उलझन होती थी कि मेरी माता अपने बेटे के लिए इतनी प्रेम-विह्वल हैं। आज मैं यह अच्छी तरह समझ सकती हूँ कि उस वक्त उनके मन की क्या हालत रही होगी। मेरी बहन भी घर भर में फुदकती फिरती थीं और ऐसा मालूम देता था कि उन्हें भी भाई का बड़ा इन्तजार है। यह चीज मेरे लिए और भी परेशान करने वाली थी। मैंने निश्चय किया कि मैं जवाहर को जरा भी न चाहूँगी।

आखिर वह शुभ दिन आ ही गया और घर भर में दबी हुई उत्तेजना का जो वायुमण्डल था उसने मुझ पर भी असर डाला। पर मुझ पर जो असर हुआ वह सिर्फ यह था कि मेरी उत्सुकता और बढ़ी। वह गर्मियों का मौसम था और हम सब मसूरी में थे। गाड़ी के आने का जो वक्त मुकर्रर था उस वक्त हमने सड़क पर घोड़े की टापों की आवाज सुनी और सभी दौड़कर जवाहर से मिलने आगे बढ़े। जब मैंने देखा कि एक सुंदर नौजवान, जिसकी शक्ल माताजी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है, घोड़े पर बैठकर हमारी तरफ आ रहा है तो मेरा दिल कुछ बैठ-सा गया। वह घोड़े से कूद पड़े और सबसे पहले मां के गले लगे, फिर एक के बाद एक सब लोगों से मिले। मैं कुछ दूर खड़ी थी और मन में सोच रही थी कि अपने इस नये भाई को, जो अचानक हममें आ गया था, चाहूं या न चाहूं। इधर मेरे मन में बहुत से विचार आ रहे थे—उधर जवाहर ने मुझे अपनी गोद में उठा लिया और उनके ये शब्द मेरे कानों में पड़े, "अच्छा, तो यह हैं छोटी बहन? अब तो यह काफी बड़ी हो गई हैं।" उन्होंने मुझे प्यार किया और जिस तरह मुझे अचानक गोद में उठा लिया था उसी तरह नीचे उतार दिया, और दूसरे ही क्षण मेरे बारे में सब कुछ भूल गए।

हमारी जान-पहचान के शुरू के कुछ महीने कतई खुशी के नहीं थे। जवाहर बड़े ही शरीर थे और दूसरों को छेड़ने में उन्हें मजा आता था। जब उन्हें कोई और काम न होता तो वह अपना वक्त मुझे छेड़ने में और तंग करने में खर्च करते थे। वे मुझसे ऐसे-ऐसे काम करवाते जो मुझे या तो पसंद न थे या जिनसे मैं डरती थी। जब मुझे जरा भी उम्मीद न होती, वह मुझ पर तोहफों की बारिश कर देते और इतने प्यार से पेश आते थे कि उनसे ज्यादा देर तक चिढ़े रहना संभव न रहता। फिर भी मैं उनसे कुछ दूर-दूर ही

रही और उनसे मेरा सम्पर्क ज्यादा बढ़ने न पाया।

प्रथम महायुद्ध ने मेरी शांत और नीरस जिंदगी पर कोई खास असर नहीं डाला। अपने घर में मैंने जो कुछ फर्क देखा वह सिर्फ यह था कि माताजी क्लबों में ज्यादा जाने लगीं और वहां बहुत-सी हिन्दुस्तानी और विदेशी औरतों के साथ बैठकर फौजियों के लिए चीजें बुनने लगीं। मैंने यह भी देखा कि अक्सर पिताजी और जवाहर लड़ाई की खबरों से बड़े परेशान हो जाया करते थे।

१९१६ में जवाहर की शादी हुई। महीनों पहले से इस शादी की तय्यारियां हो रही थीं; क्योंकि शादी बड़ी धूमधाम से होने वाली थी। हमारे घर में दिन भर जौहरियों, व्यापारियों और दर्जियों का तांता बंधा रहता था और बहुतसे गुमाश्ते इन्तजाम की तफसील तय करके तदनुरूप व्यवस्था करने में लगे रहते थे।

शादी दिल्ली में होने वाली थी, जहां दुलहन का मैका था। शादी के दिन से एक हफ्ते पहले शुभ मुहूर्त्त देखकर बरात इलाहाबाद से रवाना हुई। पिताजी ने कोई सौ-एक मेहमान अपने साथ लिये और हम सब एक स्पेशल ट्रेन से रवाना हुए जो खूब सजाई गई थी। दिल्ली में सैकड़ों और मेहमान बरात के साथ हो गए। हमारे सब मेहमान कई घरों में भी नहीं समा सकते थे, इसलिए पिताजी ने बहुत से खेमे लगवा लिये थे और हफ्ते भर में एक अच्छी खासी बस्ती उस जगह बस गई थी। इस जगह को 'नेहरू विवाह नगर' कहा जाता था।

उन दिनों दिल्ली में बड़ी सख्त सर्दी थी, पर मुझे यह मौसम बहुत पसंद था और बड़ा लुत्फ आता था। मेरे रिश्ते के बहुत से भाई-बहन जिन्हें मैंने पहले कभी न देखा था हिन्दुस्तान के अनेक हिस्सों से वहां आये थे और उनके साथ खेलने में मुझे बड़ा अच्छा लगता था। हर रोज कहीं-न-कहीं दावत होती थी। दस दिन बाद बरात इलाहाबाद वापस लौटी और वहां भी दावतों का यह सिलसिला जारी रहा।

जवाहर बड़े सुंदर और बांके दूल्हा थे और कमला इतनी सुंदर दुल्हन कि मैंने ऐसी दुलहनें कम ही देखी हैं। नवंबर १९१७ में उनकी एकलौती बेटी इंदिरा पैदा हुई।

१९१७ तक हमारे जीवन में कोई खास बात न थी। उस साल मेरी

उस्तानी की उनके एक अंग्रेज दोस्त के साथ मंगनी हो गई और उनकी इच्छा थी कि शादी भी जल्दी हो जाय। उनके तमाम रिश्तेदार विलायत में थे। इसलिए स्वभावतः गिर्जाघर में उन्हें वर को सौंपने का काम पिताजी ने किया। विवाहमें शामिल होने और दुलहनकी सखी बननेकी बात सोच-सोचकर मैं उत्साह से भर उठती थी। पर उसीके साथ मुझे यह दुख भी था कि मेरी उस्तानी मुझसे अलग होने वाली थीं। उनकी जो भी बातें मुझे पसंद न थीं वे सब मैं भूल गई। मुझे सिर्फ वह प्रेम और निगरानी याद रही जो वह इतने साल तक करती रहीं। उन्होंने पूरे बारह बरस हमारे साथ गुजारे थे और वे हमारे खान्दान की एक सदस्य ही समझी जाती थीं। हम सबको वह बहुत ही पसंद थीं और वह भी हमें बहुत चाहती थीं।

उनकी शादी का दिन आ गया। मैं बहुत दुखी हुई। हर चीज की सुन्दर व्यवस्था थी और पिताजी ने उनके लिए जो कुछ किया था उससे वह बहुत खुश थीं। शादी के बाद वह अपनी सुहागरात मनाने चली गईं और मैं कई दिनों तक शोकमग्न रही। मेरे छोटे जीवन में पहली बार मुझे इतना भारी सदमा हुआ जिससे मेरा दिल टूट गया था। पर बच्चे दुख भी जल्द ही भूल जाते हैं और मैं भी उनकी गैरहाजिरी की आदी हो गई। बहुत जल्द मुझे उस आजादी में आनन्द आने लगा जो मुझे अब मिली थी; क्योंकि अब मैं वह सब कुछ कर सकती थी जो करने को मेरा मन कहता था और अब अपने सारे काम मुझे अपनी मर्जी से करने की छूट मिल गई थी।

मेरी हमेशा से यह इच्छा रही थी कि मैं मदरसे जाऊं और दूसरे बच्चों के साथ पढ़ूं, पर मेरे पिता जी को यह विचार कभी पसंद न आया। वह समझते थे कि ठीक तरीका यही है कि अकेले में बड़ी शान के साथ उस्तानी से सबक पढ़ा जाय। उस जमाने में नौजवान लड़कियों के लिए जरूरी तालीम यह थी कि वह पियानो या कोई और बाजा बजाना सीखें और लोगों के साथ अच्छी तरह मिलना-जुलना और बात करना जानती हों। मेरी बहन कभी मदरसे नहीं गई थीं और उनकी सारी तालीम घर पर ही हुई थी। मेरा ख्याल है कि मदरसे जाने की उनकी इच्छा कभी हुई भी नहीं। जब हमारी उस्तानी की शादी हो गई तो मैंने इस बात की बड़ी कोशिश की कि पिताजी मुझे मदरसे जाने की इजाजत दे दें। पहले तो वे अपनी बात पर अड़े रहे और कहते रहे कि मेरे लिए दूसरी उस्तानी रख दी जाय। कई उस्तानियां आईं

पर खुशनसीबी से उनमें से एक भी टिकी नहीं। आखिर जैसे-तैसे अनिच्छा-पूर्वक पिताजी ने इजाजत दे दी और मैं मदरसे जाने लगी। मेरे लिए जो मदरसा पसंद किया गया वह सबसे अच्छा समझा जाता था—एक ऐसी जगह जिसमें छोटी लड़कियां और लड़के पढ़ते थे। इस स्कूल में मेरे जाने से पहले वहां ज्यादातर अंग्रेज बच्चे पढ़ा करते थे मगर बाद में बहुत-से हिंदुस्तानी बच्चे भी शामिल हो गए।

मेरे लिए यह एक नये जीवन की शुरुआत थी और मुझे उसके एक-एक क्षण में मजा आता था। खेलने और पढ़ाई में मेरा सारा समय कट जाता था और,मुझे कभी यह विचार भी नहीं आता था कि मैं अकेली हूं। जीवन बड़ा ही भला मालूम होता था और मेरे बचपन के सबसे ज्यादा सुखी दिन वही थे जो मैंने स्कूल में गुजारे। कुछ साल के बाद वह जमाना अचानक खत्म हो गया !

और इस तरह मैं सुख और शांति के वातावरण में एक ऐसे घर में बड़ी होती रही, जो मुझे बहुत पसंद था।

२

ओह ! तब और अब में इतना फर्क !

—कोलरिज

मेरी उस्तानी के चले जाने के बाद स्वरूप मेरी देख भाल करती रहीं, क्योंकि माता जी बहुत कमजोर थीं और यह काम उनसे हो नहीं सकता था। स्वरूप शायद ही कभी मुझसे सख्ती बरतती थीं और अक्सर यही होता था कि मेरा जो जी चाहता था मैं करती थी। इसमें उन्हें भी कम तकलीफ होती थी और मेरे लिए भी यही ठीक था। मुझे कविता बहुत पसंद थी और स्वरूप को भी। हम अक्सर शाम का सुहाना वक्त बाग में इस तरह गुजारतीं कि वह कोई कविता जोर से पढ़तीं और मैं ध्यान-मग्न होकर सुनती रहती। हम दोनों में ऐसा दोस्ती का सुन्दर रिश्ता था जो बहुत कम दिखाई देता है। मेरे बचपन के उन दिनों में स्वरूप पथप्रदर्शक, मेरी गुरु और मेरी मित्र—सभी कुछ थी।

सन् १९२१ में मेरी बहन की शादी हो गई। उनका विवाह बड़ी धूम-धाम से पूरे काश्मीरी तरीके से रचाया गया। हमारे यहां सैकड़ों मेहमान, दोस्त और रिश्तेदार ठहरे थे और कांग्रेस की पूरी वर्किंग कमेटी भी थी, जिस की बैठक उन्हीं दिनों इलाहाबाद में हो रही थी। वह दिन मेरे लिए बड़ी शान के थे; क्योंकि कोई मुझे पूछने वाला ही न था और न यह कहने वाला कि यह करो या यह न करो। बहन की जुदाई के खयाल से मुझे दुःख होता था, पर साथ में शादी के उत्सव से आनन्द भी था।

स्थानीय कांग्रेस कार्यकर्ता इस मौके पर एकत्र हुए बड़े-बड़े कांग्रेसी नेताओं की उपस्थिति से लाभ उठाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने एक जिला सम्मेलन का आयोजन किया था। आसपास के गांवों के किसान बड़ी संख्या

में इसमें शामिल होने और इलाहाबाद देखने के लिए आये, हालांकि आम-तौर पर शहर में कोई हलचल नहीं रहती, पर इस मौके पर चारों तरफ बड़ी रौनक और चहल-पहल दिखाई देती थी। इसका शहर में रहने वाले अंग्रेजों पर बड़ा अजीब असर पड़ा। वे देश की राजनैतिक जाग्रति से बड़े परेशान थे और उन्हें किसी हिंसात्मक विद्रोह की आशंका थी। उस वक्त हम उनकी आशंकाओं और उनके इस अनोखे रुख का मतलब नहीं समझ सकते थे। परन्तु बाद में हमें पता चला कि १० मई, जिस दिन मेरी बहन की शादी होनी थी, उसी दिन इत्तिफाक से १८५७ के स्वातंत्र्य-युद्ध की साल गिरह भी थी।

इन्हीं दिनों मैंने निश्चय किया कि मांस खाना छोड़ दूं। मुझे गोश्त बहुत पसंद था और एक रोज गांधी जी के सेक्रेटरी महादेवभाई देसाई ने मुझे खाना खाते देखा। उन्हें यह देखकर बड़ी परेशानी हुई कि मेरे सामने कई किस्म का पका हुआ गोश्त रखा था और उन्होंने वहीं मुझे शाकाहारी बनने का उपदेश दिया। मैं आसानी से माननेवाली न थी, पर उसके बाद भी कई दिन तक महादेवभाई से जहां कहीं मिलती वह यही उपदेश देते रहते। शादी की उन खुशियों में मैंने गोश्त छोड़ दिया, जिससे मेरी माता जी के सिवा घर के और सब लोगों और रिश्तेदारों को बड़ा दुःख हुआ। माता जी को मेरे निश्चय से बड़ी खुशी हुई। उन्हें गोश्त नापसंद था और वह अपनी खुशी से कभी भी उसे न छूती थीं। उनकी बीमारी के दिनों में उन्हें मजबूरी में गोश्त का शोरवा या और किसी शक्ल में गोश्त खिलाया जाता था। पूरे तीन साल मैंने गोश्त को हाथ नहीं लगाया, यद्यपि मेरा मन अक्सर खाने को चाहता था! फिर मैं बड़े दिनों के त्यौहार का एक हफ्ता अपने कुछ भाई-बहनों के साथ गुजारने गई। उन सबको गोश्त खाते देखकर भी न खाना बहुत मुश्किल था और आखिर मेरा निश्चय टूट ही गया!

स्वरूप के घर से चले जाने के बाद मैं अकेली रह गई और मेरा जी घबराने लगा। मेरी भाभी कमला, जिनकी उम्र स्वरूप के बराबर थी, अब हमारे घर थीं और उन्होंने कुछ हद तक स्वरूप की जगह ले ली थी। यही वह जमाना था जब मैं पिता जी से ज्यादा मिलने लगी और उन्हें अच्छी तरह पहचान सकी। उन्होंने भी यह देखकर कि स्वरूप की जुदाई मुझे अखर रही है, अपना ज्यादा समय मुझे देना शुरू किया। मैं उन्हें समझने और उनकी भक्ति करने लगी ही थी कि वह पहली बार गिरफ्तार हुए और हमारी

दोस्ती का यह छोटा-सा जमाना अचानक खत्म हो गया।

मैं गांधी जी से पहली बार सन् १९१९ के शुरू में मिली। वह पिता जी के बुलाने पर कुछ सलाह-मशविरा करने इलाहाबाद आये थे। मैंने गांधाजी के बारे में, जिन्हें "बापू" कहा जाता है, बहुत कुछ सुना था, पर मुझे वह कुछ ऐसे दिखाई दिये जैसे वे लोग, जिनके किस्से हम पुराणों में पढ़ते हैं। मैं उस वक्त बहुत छोटी थी और वह सब बातें नहीं समझ सकती थी, जो गांधी जी कहते और करते थे। उनके विचार कुछ खयाली मालूम होते थे। जब मैं उनसे पहली बार मिली तो मुझे वह दिलचस्प न मालूम हुए। मेरा विचार था कि मैं किसी लंबे कद और मजबूत शरीर के आदमी से मिलूंगी, जिसकी आंखों में चमक और जिसके कदम मजबूती से पड़ते होंगे। पर जब मैं उनसे मिली तो मैंने देखा कि वह एक दुबले-पतले और भूख से कमजोर जैसे आदमी नजर आये, जिन्होंने एक लंगोटी लगा रखी थी, जिनका शरीर कुछ झुका हुआ था, जो एक लकड़ी का सहारा लिये हुए थे। वह बड़े ही दीन और सीधे-सादे दिखाई देते थे। उन्हें देखकर मुझे बड़ी ही मायूसी हुई। मैं सोचने लगी कि क्या यह छोटा-सा आदमी वह है, जिससे बड़े-बड़े कामों की आशा रखी जाती है और जो हमारे देश को विदेशियों की गुलामी से आजाद कराने वाला है?

जलियांवाला बाग के अत्याचारों के बारे में मैंने बहुत कुछ सुना और पढ़ा भी था और यद्यपि मैं उम्र में छोटी थी फिर भी मैं उन अत्याचारों का बदला लेना चाहती थी, पर मेरी बदला लेने की कल्पना यह थी कि उसी तरह अत्याचार करके खून का बदला खून से लिया जाय। जब मैंने बापू के अहिंसा के विचार सुने तो मुझे वह सब खब्ती बातें मालूम हुईं और मैं सोचने लगी कि इन बातों पर तो कोई एक आदमी भी अमल नहीं कर सकता, फिर पूरे देश का तो कहना ही क्या! इसके अलावा मेरा स्वभाव भी कुछ विपरीत-सा है। जब मैंने यह देखा कि घर भर में करीब-करीब सभी बापू की पूजा करते हैं और उनकी छोटी-से-छोटी आज्ञा के पालन के लिए तैयार रहते हैं तो मैंने उनकी तरफ कुछ लापरवाही बरतनी शुरू की, जिससे मेरी माता जी को बहुत दुःख हुआ! दिल से मैं बापू को पसंद करती थी, परन्तु औरों की तरह मैंने उनको साधुपुरुष या महात्मा मानने से इन्कार कर दिया।

मैं उनको जितने करीब से देखती गई उनकी ओर उतनी ही ज्यादा झुकने लगी। कभी-कभी तो मुझे ऐसा मालूम देता था कि उनका किसी दूसरी ही दुनिया से सम्बन्ध है। फिर भी सत्य तो यह था कि वह इसी लोक के थे और ऐसी चीजों को समझ सकते थे और पसन्द कर सकते थे जो इसी भू-लोक की हैं। उन्होंने अपनी मीठी नजर और अपनी मन मोह लेने वाली मुसकराहट से मुझे भी इसी तरह जीत लिया, जिस तरह वह लाखों-करोड़ों इन्सानों को जीत चुके थे—केवल थोड़े समय ही के लिए नहीं, बल्कि जिन्दगी भर के लिए; क्योंकि बापू को जब कोई अपनी भक्ति एक बार सच्चे दिल से अर्पण करता है तो फिर उसे वापस ले ही नहीं सकता।

१६२० में गांधीजी ने सत्याग्रह का आन्दोलन शुरू किया और उसके शुरू होते ही न सिर्फ मेरा जीवन बल्कि हमारे पूरे खान्दान का जीवन और सैकड़ों और लोगों का जीवन पूरी तरह बदल गया। इस आन्दोलन का एक अंग अंग्रेजी स्कूलों का बहिष्कार था। मैं अपनी पढ़ाई और अपनी छोटी-सी दुनिया में इतनी डूबी हुई थी कि मुझे उस तूफान का पता भी न था जो बहुत जल्द आने वाला था और मैं उस परिवर्तन से भी बेखबर थी, जो खुद मेरे ही घर में हो रहा था। इसलिए जब एक दिन पिताजी ने मुझे बुला भेजा और तमाम बातें समझाकर मुझसे कहा कि अब मुझे स्कूल छोड़ देना चाहिए तो मुझे बड़ी हैरत हुई और मेरे दिल पर चोट-सी लगी। स्कूल में मेरा दिल लगा हुआ था और बहुत-से साथियों से मेरी दोस्ती भी हो गई थी। इस कारण यह जानते हुए भी कि अब स्कूल छोड़ देना ही ठीक होगा, स्कूल छोड़ने के विचार ने कुछ समय के लिए मुझे दुःखी बना दिया। उसी वक्त किसी दूसरे स्कूल में दाखिल होना भी ठीक न था। इसलिए पिताजी ने ऐसे शिक्षकों का प्रबन्ध कर दिया जो घर पर आकर मुझे पढ़ायें। कई हफ्ते मेरी तबियत उचाट-सी रही; क्योंकि मेरे पास काफी काम न था, पर उन दिनों समय जल्दी बीत जाता था और बहुत जल्द मैं भी उन घटनाओं के चक्कर में फंस गई जो हमारे देश का पूरा नक्शा बदलने वाली थीं।

रोजाना कोई-न-कोई नई बात होती थी जिससे मेरा नीरस और निश्चित कार्यक्रम से पूर्ण उदास जीवन नये रूप और नई जिन्दगी में बदल जाता था—ऐसी नई जिन्दगी में, जिसमें इस बात का पता ही न होता था कि अब आगे क्या होने वाला है। जवाहर गांधीजी के साथ हो जाना चाहते थे। पिताजी

चाहते थे कि वह इस मैदान में कूदने से पहले उसके तमाम पहलुओं पर अच्छी तरह सोच लें। जवाहर अपनी बाबत फैसला कर चुके थे और उन्होंने सत्याग्रह-आन्दोलन में शामिल होने का निश्चय कर लिया था। जवाहर ने यह फैसला काफी सोच-विचार और मानसिक द्वन्द्व के बिना नहीं किया था। जवाहर समझते थे कि गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह ही आज़ादी हासिल करने का एक रास्ता है। पर बापू (गांधीजी) के साथ शामिल होने के लिए पिताजी की पूरी रजामन्दी प्राप्त करना आसान न था। पिताजी को गांधीजी के विचार जल्द पसन्द नहीं आते थे और जिस आन्दोलन की बात हो रही थी उस पर उन्होंने काफी सोचा था। फिर भी सच तो यह है कि वह चीज उन्हें कुछ बहुत पसन्द न थी। उस समय उनकी समझ में यह बात न आती थी कि जेल जाने से क्या मतलब हासिल होगा और न वह यह पसन्द करते थे कि जवाहर अपने-आपको गिरफ्तारी के लिए पेश करें। अभी जेल-यात्रा शुरू नहीं हुई थी। पिताजी जवाहर को बहुत ज्यादा चाहते थे और केवल यह विचार ही कि उनका बेटा जेल जाय और तकलीफें सहे—उनके लिए काफी परेशान करनेवाला था।

बहुत दिनों तक पिताजी और जवाहर दोनों के दिलों में यह कशम-कश चलती रही। दोनों में बड़ी लम्बी बहसें होती थीं और कभी-कभी वह एक दूसरे से गरम बातें भी कर जाते थे। दोनों ने ये दिन और रातें काफी तकलीफ और मानसिक परेशानी में गुजारीं और हर एक अपने-अपने तरीके से दूसरे को समझाने और कायल करने की कोशिश करता रहा। जवाहर का बापू का साथ देने का निश्चय देखकर पिताजी व्याकुल होते थे। बाद में हमें पता चला कि वह जमीन पर सोने की कोशिश करते थे ताकि यह मालूम कर सकें कि इसमें क्या तकलीफ होती है; क्योंकि वह समझते थे कि जेल जाने पर जवाहर को जमीन पर सोना होगा। हम सबके लिए यह दिन बड़े ही दुःख और कष्ट के थे, खासकर माताजी और कमला के लिए, जो इस बात को बरदाश्त नहीं कर सकती थीं कि राजनीति और अंत न होने वाली बहसों से पिता पुत्र में रंजिश पैदा हो। घर का वातावरण बड़ा ही गम्भीर बन गया था और हममें से किसी को एक शब्द भी कहने की हिम्मत न होती थी; क्योंकि हरदम पिताजी के ख़फ़ा होने या जवाहर के चिढ़ जाने का डर लगा रहता था।

पंजाब की घटनाओं और जलियांवाला बाग के दर्दभरे किस्से ने पिताजी को बड़ी हद तक जवाहर के विचारों से सहमत बना दिया। उनके

पुत्र की सत्याग्रह पर अटूट श्रद्धा और अपने इकलौते बेटे पर उनका असाधारण प्रेम इन दोनों चीजों ने मिलकर पिताजी के निश्चय को मजबूत बना दिया उन्होंने जवाहर का साथ देने और गांधी जी के पीछे चलने का फैसला कर लिया। पर ऐसा करने से पहले उन्होंने अपनी भरी-पूरी वकालत छोड़ दी। इस चीज ने हमारे जीवन को, जो उस वक्त बड़े ही ऐश और आराम का जीवन था, बदलकर सादगी और कुछ कष्ट का जीवन बना दिया।

पिताजी ने लाखों रुपया पैदा किया था और खुले हाथों खर्च भी करते रहे थे। उन्होंने वक्त पड़ने पर खर्च के लिए कुछ भी नहीं रख छोड़ा था। जब उन्होंने वकालत बन्द कर दी तो हमें फौरन ही घर में कुछ तब्दीलियां करनी पड़ीं, क्योंकि नई आमदनी के बिना उस शान से रहना मुमकिन ही न था, जिस शान से हम अब तक रहते आए थे। पहला काम जो पिताजी ने किया वह अपने घोड़े और गाड़ियां बेच देना था। उनके लिए यह काम आसान न था, क्योंकि वे अपने घोड़ों को बहुत चाहते थे और उन्हें उन घोड़ों पर गर्व था। पर उन्हें यह काम करना ही पड़ा। फिर हमें अपने नौकरों की उस फौज में से, जो घर में थीं, बहुत-सों को अलहदा करना पड़ा और हर तरीके से खर्च घटाना पड़ा। अब शानदार दावतें बन्द हो गईं। दो-तीन बावरचियों की जगह एक बावरची रह गया और बेरे और खानसामे सब निकाल दिये गए। हमारे चीनी के कीमती बर्तन और दूसरा बहुत-सा कीमती और सुन्दर सामान बेच दिया गया और सिर्फ कुछ नौकरों और रोज के जीवन में ऐश-आराम के पहले से बहुत कम सामान से काम चलाना हमने सीख लिया। मैं उस समय इतनी छोटी थी कि मुझ पर इन बातों का ज्यादा असर नहीं पड़ा; पर घर के और लोगों, खासकर मेरे माता-पिता, को इससे जरूर कष्ट हुआ होगा।

हमारे जीवन में जब ये सब बातें हुईं, उसके कुछ ही दिन पहले एक अजीब बात पेश आई। हमारे मकान के पीछे और कई छोटी कोठरियां थीं, जिनमें कोयला, ईंधन और दूसरी चीजें भर कर रखी जाती थीं। इनमें से एक कोठरी में, जहां लकड़ी भरी रहती थी, एक बड़ा भारी काला नाग रहता था। मुझे जबसे बचपन की बातें याद हैं, यह नाग उसी जगह था। वह किसी को नहीं छेड़ता था और हमारे नौकर बड़ी रात को भी बिना खटके वहां चले जाते थे। अकसर यह भी देखा जाता था कि यह नाग बाग में या पीछे की कोठरियों के आस-पास फिर रहा है। उससे न तो कोई डरता था न किसी को उसकी

पर्वाह थी। लोगों का विश्वास था कि जब तक यह नाग मौजूद है और हमारे खानदान के हित की रक्षा कर रहा है उस वक्त तक हमारे घर पर कोई आफत न आयगी और हम लोग धन-दौलत और ऐश-आराम से खेलते रहेंगे।

सन् १९२० में एक बार पिताजी के वकालत बंद करने से कुछ पहले एक नए नौकर ने, जिसे यह पता नहीं था कि इस घर में नाग रहता है, एक दिन शाम के वक्त इस नाग को देखा। वह बहुत घबराया और कुछ और लोगों की मदद से उसने इस नाग को मार डाला। हमारे तमाम पुराने नौकर इस बात से डर गए और हमारी माताजी भी डरीं; पर जो होना था वह हो चुका था। उसके बाद ही अनेक परिवर्तन हुए। हमारा शानदार घर एक छोटे और सीधे-सादे घर के रूप में बदल गया और जवाहर और पिताजी जेल चले गए। हमारे नौकर-चाकर कहने लगे कि हम पर ये सब मुसीब (जिसे वे सब बड़ा दुर्भाग्य समझते थे) नाग की मौत से ही आई हैं।

पिताजी के लिए असहयोग का मतलब यह था कि अपने रहन-सहन का पुराना तरीका बिलकुल खतम कर दें और साठ साल की उम्र में एक नया तरीका अख्तियार करें। इसका मतलब सिर्फ पेशे के और राजनैतिक साथियों से ही संबंध तोड़ना नहीं था अपितु ज़िन्दगी-भर के ऐसे दोस्तों से भी संबंध तोड़ना था जो उनसे या बापू से सहमत नहीं हो सकते थे। इसका अर्थ था बहुत-से सुखों को तज देना। और वह तो हमेशा ऐश-आराम ही में रहे थे। पिताजी को जब इस बात का विश्वास हो गया कि यही सीधा और सच्चा रास्ता है तो वह पूरी तरह और मन से इस नए रास्ते पर जुट गए और पिछले बीते हुए समय का विचार भी कभी मन में न रहने दिया।

दिन-पर-दिन पिताजी और जवाहर दोनों राजनीति में और गहरे पड़ते जा रहे थे। हमारा घर, जहां जीवन पहले बहुत ही आसान था, अब उसमें बराबर गड़बड़ रहने लगी। देश के सब भागों से कांग्रेस-कार्यकर्ता हमारे यहां आने लगे, जो कुछ रोज ठहरकर काम की बातों पर बहस करते थे। करीब-करीब रोज ही सभाएं होतीं और आने-जाने वालों का एक तांता बंधा रहता था। मैं इस बात की आदी थी कि मेरे माता-पिता से मिलने के लिए बहुत-से लोग आएं, पर वे लोग दूसरी तरह के हुआ करते थे। वे बड़ी शानदार मोटरों या घोड़ागाड़ियों पर आते थे और उनमें से हर एक इस कोशिश में रहता था कि

दूसरे के मुकाबले में अपनी शान जताए। जब सत्याग्रह का आंदोलन शुरू हुआ तो हमारे बहुत-से अमीर दोस्तों ने हमारे घर आना बन्द कर दिया और जहां पहले मालदार और रईस लोग दिखाई देते थे वहां अब खादीधारी और सीधे-सादे गरीब स्त्री-पुरुष नजर आने लगे। इन आने वालों में से हर एक के दिल में इस बात का निश्चय होता था कि अपने देश की सेवा करे, उसे गुलामी से छुड़ाए और यदि जरूरत हो तो इस कार्य में अपनी जान तक दे दे।

सन् १९२१ में बात और आगे बढ़ी और ब्रिटिश सरकार ने आम गिरफ्तारियां शुरू कर दीं। हमारे देशवासी इसके लिए तैयार ही थे और वे हजारों की संख्या में इकट्ठे होने लगे। उस वक्त तक जेलखाना एक अच्छी तरह समझ न आने वाली और अपरिचित जगह थी, हालांकि बहुत जल्द उनमें से बहुतों के लिए जेलखाना उनका दूसरा घर ही बनने वाला था। इन्हीं दिनों प्रिंस आफ वेल्स, जो हिन्दुस्तान आए थे, इलाहाबाद आने वाले थे। उनके आने से कुछ रोज पहले पिताजी के नाम इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का एक खत आया, जिसमें उनसे कहा गया था कि अपनी जगह के इस्तेमाल की इजाजत दे दें अर्थात् दरवाजे निश्चित समय पर बन्द कर देने दिया करें। जो लोग वहां आवें उनके दाखले वगैरा के बारे में भी कुछ शर्तें थीं। पिताजी ने इस पत्र का यह जवाब दिया कि मजिस्ट्रेट को इसका कोई हक नहीं है कि इस बात में दखलंदाजी करें कि मैं अपनी जायदाद किस तरह इस्तेमाल करता हूँ। मैं उसका जो इस्तेमाल कानून से ठीक समझूंगा, करूंगा। पिताजी ने मजिस्ट्रेट को इस बात का विश्वास दिलाया कि एक असहयोगी की हैसियत से मैं कोशिश करूंगा कि प्रिंस आफ वेल्स को, जब वह इलाहाबाद में हों, किसी तरह का नुकसान न पहुँचे। इस विश्वास दिलाने का इनाम पिताजी को यह मिला कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। एक शाम हमने सुना कि आज गिरफ्तारियां होने वाली हैं और तमाम नेताओं को और बड़े-बड़े काम करने वालों को पकड़ लिया जायगा। वह ६ दिसम्बर १९२१ का दिन था। उसी दिन शाम को पिता जी और जवाहर की गिरफ्तारी के वारंट लेकर पुलिस पहली बार आनन्द-भवन आई। उसके बाद तो वह बराबर हमारे घर आती रही है, कभी तो हमारे घर के किसी आदमी को गिरफ्तार करने या कल्पित गैर कानूनी साहित्य की खोज में तलाशी लेने के लिए। अक्सर वह इसलिए भी आती थी कि हम पर जो जुरमाने किये जाते थे

उनकी वसूली में हमारी मोटरें व हमारा बहुत-सा फर्नीचर जब्त कर लें।

उस शाम पुलिस के आने से हमारे घर में अच्छी खासी हलचल मच गई। हमारे कुछ पुराने नौकर पुलिस के आने से बहुत खफा थे और कहते थे कि उन्हें पीटकर घर के अहाते के बाहर कर देना चाहिए। पर माताजी ने उन्हें ताकीद कर दी कि ऐसी बेवकूफी न करें। हम सब, पिताजी और जवाहर के सिवा बाकी सब, इन अचानक गिरफ्तारियों से बड़े दुखी हुए। यह विचार ही हमें परेशान कर रहा था कि जिनसे हमें प्रेम है उन्हें जेलखाने की शलाखों के पीछे डाला जा रहा है। हम नहीं जानते थे कि उन्हें वहां क्या-क्या तकलीफें उठानी होंगी। माताजी को सबसे ज्यादा दु:ख था; क्योंकि पिछले कुछ महीनों में बराबर जो तकलीफें हो रही थीं वह उनके लिए एक डरावने सपने की तरह थीं, जिनको वह ठीक से समझ भी न सकी थीं। पर वह एक बहादुर पत्नी और उससे भी ज्यादा एक बहादुर माता थीं। वह किसी तरह भी दूसरों पर यह जाहिर नहीं होने देती थीं कि उन्हें कितना दुःख हो रहा है। पिताजी और जवाहर ने तैयार होकर हम सबसे बिदा ली। उन्हें पुलिस की गाड़ी में डिस्ट्रिक्ट जेल पहुंचाया गया। माताजी और कमला जब अपने पतियों से जुदा हुई तो बहादुरी से मुस्कराई। यद्यपि उनकी मुस्कराहट बहादुरी की थी, तथापि उनके दिलों में रंज और अकेलापन था। जब पुलिस की गाड़ी नजरों से ओझल हो गई तो हम लोग घर में वापस लौटे। वही घर, जो कुछ समय पहले जीवन और आनन्द से ओत-प्रोत था, अब अचानक इतना सूना हो गया कि उसमें से सारी खुशी गायब होगई।

पिताजी, जवाहर और दूसरे साथियों पर ७ दिसंबर १९२१ को डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकील, जिन्होंने मुकदमे की कार्रवाई शुरू की, हिंदुस्तानी थे और पिताजी के पुराने दोस्त और साथी थे। उन्हें इतनी हिम्मत नहीं हुई कि पिताजी के मुकदमे की पैरवी करने से इन्कार करते या अपनी नौकरी से स्तीफा देते। पर मैंने कभी किसी आदमी को शर्म से इतना पानी-पानी होते हुए और परेशान नहीं देखा है, जितना इस मुकदमे के वक्त सरकारी वकील दिखाई दे रहे थे। पूरी कार्रवाई में उन्होंने अपनी नजर किसी और तरफ रखी और एक बार भी आंख उठाकर पिताजी की तरफ नहीं देखा। उन्होंने मुकदमे का सारा काम धीमी आवाज में किया और कभी-कभी तो उनकी आवाज ठीक सुनाई भी न देती थी। इससे पहले करीब-करीब हर रोज वह पिताजी से मिला करते थे, उनकी मेहमान-नवाजी में

शरीक रहते थे और उन सब बातों से फायदा उठाते थे, जिनसे एक मित्र फायदा उठाता है। पर जब पिताजी पकड़े गए तो यह सब बातें भुला दी गईं। पिताजी और जवाहर दोनों को छः-छः महीने की सादी कैद की सजा सुनाई गई। पिताजी ने सजा का हुक्म सुनकर अपने साथियों के नाम यह संदेश भेजा।

"जब तक मैं आप लोगों के बीच में रहा, मैंने अपनी योग्यता के अनुसार आपकी सेवा की। अब मुझे यह सौभाग्य और गौरव प्राप्त हुआ है कि अपने इकलौते बेटे के साथ जेल जाकर अपनी मातृभूमि की सेवा करूं। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि बहुत जल्द हम आजाद इन्सानों की तरह फिर एक दूसरे से मिलेंगे। मुझे आपसे जुदा होते वक्त केवल एक ही बात कहनी है—जब तक स्वराज्य प्राप्त न हो, अहिंसात्मक असहयोग का आंदोलन जारी रखिये। सैकड़ों और हजारों की संख्या में स्वयं-सेवक बनिये। हिंदुस्तान में इस समय आजादी के सिर्फ एक ही मंदिर यानी जेलखाने की यात्रा के लिए बराबर बिना किसी रोक-टोक के आगे बढ़ते रहिए। प्रतिदिन जेल-यात्रियों की यह लहर बढ़ती ही रहे—अलविदा।"

यह एक नए जीवन की शुरूआत थी -- अनिश्चितता, कुर्बानी, दिली दर्द और दुःख का जीवन। हम जिस मकसद के लिए लड़ रहे थे वह इतना बड़ा और बुलंद था कि उसकी खातिर सब कुछ कुर्बान करना भी मुनासिब मालूम होता था। हममें से हर एक को पिताजी और जवाहर की जुदाई नापसंद थी, फिर भी हमें गौरव था कि उन्होंने देश की जरूरत के मौके पर उसका साथ दिया और अपने कर्तव्य का पालन किया।

उनको गिरफ्तारी के बाद पुलिस अकसर हमारे घर आती रही। पुलिस की कुछ आदत-सी हो गई थी कि कुछ दिन बाद हमारे घर आए और पूरे घर की तलाशी ले। जब कभी वह आती, किसी-न-किसी जुर्माने के बदले में घर की कोई चीज जब्त कर लेती थी। उसे इस बात की परवाह न थी कि वह कौन-सी चीज ले जारही है। सिर्फ पांच सौ रुपये जुर्माने के बदले में वह एक कीमती कालीन उठाकर ले गई और इसकी उसके दिल पर ज़रा भी चोट नहीं लगी। शुरू-शुरू में मैं गुस्से और नफरत से खौलती थी। फिर मुझे इन बातों को बर्दाश्त करने की आदत हो गई।

पिताजी और जवाहर जेल ही में थे कि अहमदाबाद में कांग्रेस हुई। गांधीजी उस वक्त तक जेल से बाहर थे और उन्होंने माताजी और कमला

कहा कि वे कांग्रेस के जलसे में शरीक हों। इस पर हमने, यानी माताजी, कमला, उनकी छोटी बच्ची इंदिरा और मैं, सबने अहमदाबाद जाने का फैसला किया। हमारी कुछ रिश्ते की बहनें भी, जिनके पति जेलों में थे, हमारे साथ हो गईं। हमने पहली बार तीसरे दर्जे में सफर किया। यह एक अजीब तजुर्बा था, हालांकि आगे चलकर हमें इसकी भी आदत हो गई। यह सफर आरामदेह नहीं था और बहुत लंबा भी था। फिर भी था दिलचस्प। कम-से-कम मुझे तो इसमें बड़ा मजा आया। इस सफर में मैंने बहुत-कुछ सीखा और पहली बार मुझे अंदाजा हुआ कि आम जनता के दिल में गांधीजी और कांग्रेस के दूसरे नेताओं के लिए कितनी श्रद्धा और प्रेम है। हर स्टेशन पर, चाहे गाड़ी वहां रात को बड़ी देर बाद पहुंची हो चाहे सुबह बहुत जल्दी, लोगों के बड़े-बड़े जत्थे हमारे डिब्बे को घेर लेते थे। वे हमारे डिब्बे को फूलों और खाने-पीने की चीजों से भर देते थे और बीसियों छोटे-मोटे और सीधे-सादे तरीकों से इस बात को जाहिर करने की कोशिश करते कि आम जनता के लिए स्वराज्य हासिल करने के लिए उनके नेता जो कुर्बानियां कर रहे हैं उन्हें लोग कितना ज्यादा पसंद करते हैं। इन लोगों की श्रद्धा और अपने प्रति प्रेम को देखकर मुझे हैरत होती थी; क्योंकि उन्हें इस बात का निश्चय था कि हम उन्हें विदेशियों की गुलामी से छुड़ाने में सहायता दे रहे हैं। अपनी किस्मत का फैसला वे बे-खटके और बड़ी खुशी से एक छोटे-से व्यक्ति के हाथ में छोड़ने के लिए तय्यार थे। और यह व्यक्ति थे गांधीजी। आखिर एक ऐसे सफर के बाद, जिसे हम कभी न भूलेंगे, हम साबरमती आश्रम पहुंचे, जिसके बारे में हमने बहुत-कुछ सुना था, पर जिसका प्रत्यक्ष परिचय हमें जरा भी न था। गांधीजी ने बड़े ही प्रेम से हमारा स्वागत किया और पिताजी और जवाहर के स्वास्थ्य के बारे में पूछ-ताछ करने के बाद उन्होंने किसी से कहकर हमें अपने कमरों में भिजवा दिया। हम विद्यार्थियों के होस्टल जैसी जगह में ठहरे थे, जोकि बहुत ही सीधी-सादी, फर्नीचर से बिलकुल खाली और कुछ ज्यादा आराम देने वाली न थी। हम सबको एक साथ एक बड़े कमरे में सोना पड़ता था। सिर्फ माताजी के लिए एक अलग कमरा था। दिसंबर का महीना कड़ाके की सर्दी फिर भी हमें सवेरे ४ बजे प्रार्थना के लिए उठना पड़ता था। उसके बाद हम नहाते, खुद अपने कपड़े धोते। कुछ समय बापू के साथ गुजारते और फिर दिन-भर जो भी चाहते करते। शुरू के कुछ दिनों तक इतने सवेरे

उठने में बड़ी तकलीफ-सी मालूम होती थी, पर यह तकलीफ उठाने लायक थी; क्योंकि प्रार्थना साबरमती नदी के किनारे होती थी, जहां का दृश्य बड़ा ही प्यारा होता था मुझे एक दिन भी प्रार्थना से नागा करना अच्छा न मालूम होता था।

आश्रम में कई छोटी-छोटी झोंपड़ियां चारों ओर फैली हुई थीं। बीच की झोंपड़ी बापू की थी। दूसरी झोपड़ियों में महादेव देसाई, बापू के भतीजे और दूसरे काम करने वाले रहते थे। एक ही झोंपड़ी में कई-कई खानदान रहते थे। आम तौर पर हरेक जमीन पर सोता था। मुझे यह बात कुछ ज्यादा पसंद न थी, पर बहुत जल्द मुझे इसकी आदत ही हो गई। जो खाना हमें मिलता था वह बहुत ही सादा होता था—जरूरत से ज्यादा सादा। उसमें न तो मसाला होता था, न कोई और चीज, जो खाने को स्वादिष्ट बनाती। बस उबला हुआ खाना। शुरू-शुरू में हम सबको यह खाना खाने में बड़ी दिक्कत हुई। कम-से-कम मैं तो हमेशा ही भूखी रहती थी और इस इंतजार में थी कि घर जाकर पेट-भर खाना खा सकूं।

आश्रम में हमें अपने कपड़े अपने ही हाथ से धोने पड़ते थे। मोटी खादी धोना कोई मजाक न था और उन दिनों हम जो साड़ियां पहना करते थे वह बहुत ही मोटी होती थीं। माता जी को और मेरी एक रिश्ते की बड़ी उम्र की बहन को उनके कपड़े धोने के लिए एक लड़का दे दिया गया था, पर बाकी सब लोगों को यह काम खुद ही करना पड़ता था। शुरू में हमारी कोशिशें कुछ अधिक कामयाब नहीं रहीं; पर हमारे घर लौटने तक हमारी पार्टी के कुछ लोगों ने यह कपड़े धोने का काम खूब सीख लिया। हाँ, मैं उन लोगों में नहीं थी।

हम अहमदाबाद में पन्द्रह दिन रहकर फिर घर लौटे। वापसी के सफर में भी हमें करीब-करीब वही तजुरबा हुआ जो अहमदाबाद जाते वक्त हुआ था। आश्रम में रहना और बापू को करीब से देखना एक महान् अनुभव था और यह ऐसा तजुर्बा है जिसकी याद मेरे मन में हमेशा ताजी रहेगी। बहुत-से लोग बापू के पास आकर उनसे अपनी व्यक्तिगत समस्याएं बताते और उनका समाधान पूछते। उनके लिए ऐसा करना उचित न था और मेरी समझ में यह किसी तरह न आता था कि उनके निजी मामलों में मशविरा देने की जिम्मेदारी बापू अपने सिर पर क्यों लेते थे। अगर उनके काम उनके अंदाजे के मुताबिक

नहीं होते थे तो बेचारे बापू को दोष दिया जाता था।

पिताजी और जवाहर को पहली बार छः महीने की सजा हुई थी। हमारे अहमदाबाद से वापस आने के बाद ही जवाहर को अपनी सजा के तीन महीने काटने पर ही छोड़ दिया गया। पर वह ज्यादा दिनों तक आजाद न रह सके, क्योंकि छः हफ्ते के जरा-से अर्से के बाद उन्हें फिर जेल वापस जाना पड़ा। उस वक्त से जेल जाना और जेल से बाहर निकलना मेरे खानदान के अधिकांश लोगों की आदत-सी हो गई है।

दिन-प्रतिदिन, मास-प्रतिमास जीवन की यही गति रही। इस तरह जिंदगी के दिन और महीने बीतते रहे। मैं घर ही पर पढ़ती रही और जेल-खानों में मुलाकात के सिलसिले में जाने-आने के सिवा हमने कहीं का सफर नहीं किया। सन् १९२६ में सब राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गए। हमें खुशी थी कि पिताजी और जवाहर फिर घर आ गए और हमारा घर, जो इतने दिनों से सुनसान पड़ा हुआ था, फिर पिताजी की सबको हँसाने वाली हँसी से गूँजने लगा। फिर एक बार आनंद-भवन में शांत स्वाभाविक जीवन दिखाई देने लगा।

३

"बालकों की इच्छानुरूप उनका जगत होता है। अपनी बाल-शाला में आग-तापते हुए वह अपने ही चित्रों से खेलता है। दिये के प्रकाश में यह जगत् कितना बड़ा दीखता है। पर जब याददाश्त की आंखों से देखते हैं तो यह संसार कितना छोटा है!"

—चार्ल्स बॉडलेयर

जवाहर को सन् १९२३ के आखिर में नाभा रियासत में गिरफ्तार किया गया। वहां से छूटकर जब वे घर आए तो उसके कुछ ही दिनों बाद उन्हें टायफाइड हो गया और वे एक महीने से ज्यादा बहुत सख्त बीमार रहे। जब वे ठीक हो गए तो हम लोगों की जान-में जान आई।

अब जेल-निवास में कुछ कमी हुई थी और हम एक दूसरे को कुछ ज्यादा अच्छी तरह देख और समझ सके। गया में कांग्रेस का जलसा खतम होने पर पिताजी ने देशबंधु चितरंजनदास के साथ मिलकर स्वराज्य-पार्टी कायम करने का विचार किया। पार्टी की पहली सभा आनंद-भवन में हुई। चितरंजनदास इसके सदर हुए और पिताजी जनरल सेक्रेटरी।

जून १९२५ में चितरंजनदास का देहान्त हुआ और पिताजी स्वराज्य-पार्टी के सदर चुने गए। सी० आर० दास पिताजी के केवल एक विश्वासी साथी ही नहीं थे, बल्कि बड़े ही गम्भीर मित्र भी थे और उनकी मृत्यु से पिताजी को बहुत धक्का पहुँचा। पिताजी असेम्बली के काम में लगे हुए थे, जहां असेम्बली के विरोधी पक्ष के नेता और स्वराज्य-पार्टी के सदर की हैसियत से उनके पास बहुत काम था। मार्च १९२६ में असेम्बली की दिल्ली की बैठक में स्वराज्य-पार्टी ने पिताजी के नेतृत्व में असेम्बली का बहिष्कार किया, पर बहिष्कार कुछ सुधारों के बारे में सरकार के रवैये के खिलाफ आवाज उठाने के लिए किया गया था। पिताजी ने इस मौके पर जो तकरीर की वह बड़े ग़ज़ब की थी।

उन दिनों मैं अक्सर पिताजी से मिलने दिल्ली जाया करती थी और आठ-सात रोज उनके साथ रहती थी। उस वक्त मैं असेम्बली के जलसे भी देखने जाया करती थी। सफेद बुर्राक खादी पहने हुए पिताजी बड़े शानदार और रईस नजर आते थे और मुझे उन पर बहुत नाज़ था। वह बड़े-बड़े मुश्किल सवाल जिस तरह हल करते थे और असेम्बली में से उनसे पूछे जाने वाले सवालों का जिस तरह जवाब दिया करते थे यह मुझे बहुत पसंद आता था। उनकी पार्टी जब एक बार किसी बात का फैसला करती थी तो फिर उस सवाल पर झुकना वह जानते ही न थे। कभी-कभी वह अपने साथियों की किसी गलती पर या किसी जगह कमजोरी दिखाने पर बड़ी बे-रहमी से खबर लेते थे। इस स्वेच्छाचारी बर्ताव के बावजूद जो लोग उन्हें जानते थे और उनके स्वभाव से परिचित थे वे उनकी बड़ी इज्जत और कद्र किया करते थे। उनके दुश्मन उनसे डरते थे और उनसे दूर रहना ही पसंद करते थे।

जब कभी असेम्बली में कोई गर्मा-गर्म बहस होती थी तो मुझे उसकी बैठक देखने में अच्छा लगता था। कभी-कभी जब पिताजी दावतें देते और माताजी न होतीं तो पिताजी की तरफ से मेहमानों की आवभगत मैं ही किया करती थी। उनके साथ खड़े होकर मेहमानों का स्वागत करना मुझे कितना अच्छा लगता था।

मेरे पति के चाचा कस्तूरभाई लालभाई जो एक मशहूर मिल-मालिक हैं, उन दिनों असेम्बली के मेंबर थे और मेरे पति राजा कभी-कभी अपने चाचा के साथ आकर ठहरते थे। राजा का कहना है कि वहीं एक बार वह मुझसे मिले और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह मुझसे शादी करेंगे। दुर्भाग्य से मुझे इस मुलाकात की याद नहीं है और यह ऐसी बात है जिससे राजा अब भी चिढ़ते हैं। मुझे इसका अफसोस नहीं है कि राजा ने हमारी शादी से करीब आठ साल पहले ही यह निश्चय कर लिया था कि वे मुझसे शादी करेंगे।

सन् १९१४ के आखिर में कमला भाभी बहुत बीमार हो गईं। वह कई साल से बीमार थीं और इस कारण जवाहर और मेरे माता-पिता को बड़ी चिंता रहती थी। डाक्टरों ने मशविरा दिया कि उन्हें इलाज के लिए स्विटजरलैंड ले जाया जाय। मार्च १९१८ में जवाहर अपनी पत्नी कमला और अपनी बेटी इंदिरा के साथ यूरोप जाने के लिए रवाना हो गए। उन्हीं के साथ बहन स्वरूप और उनके पति रणजीत भी गए। वह छुट्टी मनाने जा रहे थे जिसका

इरादा उन्होंने बहुत पहले से कर रखा था।

पिताजी ने भी उसी साल जून के महीने में यूरोप जाने का इरादा किया था और मैं उनके साथ जाने वाली थी। उन्होंने कई साल से छुट्टी नहीं ली थी और उन दिनों वह इतना काम करते रहे कि उन्होंने महसूस किया कि उन्हें आराम और तफरीह की जरूरत है।

बदकिस्मती से बिलकुल आखिरी वक्त पर उन्हें अपना सफर रोक देना पड़ा; क्योंकि एक बड़ा भारी मुकदमा, जिसमें वह काम कर रहे थे, मुलतवी न हो सका। उन्होंने यह मुकदमा उस वक्त ले रखा था जब वह वकालत किया करते थे और हालांकि उन्हें अदालत में हाजिर होना बहुत नापसंद था फिर भी उन्हें अपने पुराने मुवक्किलों का काम करना ही पड़ा।

पिताजी ने वकालत बंद कर दी उसके बाद भी उनके पुराने मुवक्किल उनके पास आया करते थे और उनसे विनती करते कि वे और काम करें या न करें मगर उनका मुकदमा जरूर चलाएं; पर पिताजी ऐसा करनेसे हमेशा इन्कार करते थे। वे लोग फीसकी बड़ी-बड़ी रकमें पेश करते; लेकिन पिताजी कभी विचलित नहीं हुए। एक बार एक मुवक्किल ने उन्हें एक मुकदमा चलाने के लिए एक लाख रुपया फीस पेश की। पिताजीने उस रुपये की तरफ तिरस्कार भरी निगाह से देखा और फिर मेरी तरफ देखकर कहा—"कहो बेटी, तुम क्या समझती हो ? मेरे लिए मुनासिब होगा कि मैं यह मुकदमा ले लूं ?" मेरी समझ में न आया कि क्या जवाब दूं और मैं कुछ क्षण पशोपेश में रही। मैं जानती थी कि उस वक्त पिताजी के पास बहुत कम रुपया था और यह रकम बड़ी काम आती; पर मुझे यह बात ठीक न मालूम दी। मैंने कहा, "नहीं पिताजी, मैं समझती हूं, आप यह रुपया न लें" उन्होंने मेरा हाथ दबाया गोया उन्हें मेरे फैसले पर बड़ा नाज़ था। उन्होंने मुवक्किल की तरफ मुड़कर कहा, "मुझे अफसोस है। देखो तो मेरी बेटी को भी यह बात पसंद नहीं।" बाद में मुझे ऐसा मालूम हुआ कि पिताजी ने यह बात मुझसे सिर्फ इसलिए पूछी थी कि वह यह देखना चाहते थे कि मैं उनकी वैसी ही बेटी बनूंगी जैसा वह मुझे देखना चाहते थे या यह कि मैं रुपये के लालच में आकर उनके लिए नालायक साबित हूंगी।

मैं अपने खानदान के लोगों से अलग होकर कभी घरसे बाहर नहीं रही थी और न मैंने अकेले सफर किया था। इसलिए पिताजी की समझ में

नहीं आता था कि क्या किया जाय, मुझे अकेले यूरोप जाने दिया जाय या मेरा टिकट मनसूख कराया जाय। उन्होंने मुझसे इस बारे में बातें कीं और कहा कि मैं खुद जैसा चाहूँ तय कर लूँ। अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ी और दो तरह के विचार मुझे दोनों ओर खींचने लगे। मुझे अकेले जाने का विचार पसंद न था, इसलिये कि मैं बहुत दिनों से यह सोच रही थी कि मैं सफर पिताजी के साथ ही करूंगी। पर साथ ही मुझे कुछ ऐसा खयाल हुआ कि अगर मैं इस मौके से फायदा न उठाऊंगी तो मुझे शायद जल्द कोई और मौका ऐसा नहीं मिलेगा। इसीलिए मैंने जाने का फैसला किया और मैं समझती हूं कि यह अकलमंदी का फैसला था।

माताजी को इस बात से बड़ी तकलीफ हुई और वे पिताजी से नाराज़ हुईं कि ऐसी बात का फैसला उन्होंने केवल मेरी मर्जी पर छोड़ दिया। उनका खयाल था कि एक नौजवान औरत के लिए इस तरह परदेस का सफर अकेले करना मुनासिब नहीं। उन्होंने कोशिश की कि मैं इस सफर का खयाल छोड़ दूं। मैं उन्हें नाराज करना नहीं चाहती थी, पर मेरी जाने की इच्छा बहुत थी। बहुत काफी बहस के बाद मैं यूरप के सफर पर अकेली रवाना हुई। अपने जीवन में पहली बार मैं अकेली जा रही थी। मैं किसी कदर परेशान थी, किसी कदर खुश भी कि एक नई ज़िंदगी देखने जा रही हूं। शुरू के कुछ दिनों मैंने अकेलापन महसूस किया और दुखी रही, पर बहुत जल्द मैंने कुछ दोस्त बना लिए और जहाज पर वक्त बड़े मजे से कटने लगा। जहाज पर कुछ मित्र ऐसे थे, जिन्होंने मेरी निगरानी अपने जिम्मे ले ली, इसलिये कि मैं अकेली थी और मुझे देखने वाला कोई न था। हमारे जहाज पर कई नौजवान मुसाफिर भी थे और जब कभी मुझे उनमें से किसी से मिलने या बात करते देख पाते तो मेरे बुजुर्ग महज़ निगरान न होकर मुझे लेकचर सुनाते थे कि देखो, अजनबी लोगों के साथ दोस्ती करना बहुत खतरनाक है। वहां रात के दस बजे मुझे सो जाना पड़ता था। कुछ रोज तो मैंने इस नियम का पालन किया मगर बाद में उससे बगावत की। नतीजा यह हुआ कि मुझे और अधिक प्रवचन सुनने पड़े और क्रोधित निगाहों का सामना करना पड़ा, पर इन सब बातों के बावजूद मैं साफ बच निकली।

उस वक्त जवाहर जेनेवा में रहते थे और मुझसे ब्रिंडिसी में मिलनेवाले

थे। गाड़ी निकल जाने की वजह से वह वहाँ न आ सके। अब मुझे अकेलापन बहुत सताने लगा और अगर मेरे कुछ नए मित्र, जो मेरे साथ ही जहाज से उतर पड़े थे, वहां न होते तो मुझे बड़ी ही तकलीफ होती।

जवाहर मुझ से नेपिल्स में मिले। हम लोग सीधे जेनेवा न जाकर रास्ते में रोम, फ्लारेन्स और दूसरे शहर देखते हुए पहुंचे। मैंने जो कुछ देखा उसमें से बहुत कुछ मुझे पसंद आया। मैंने रोम, फ्लारेन्स और दूसरे शहरों के बारे में बहुत कुछ पढ़ रखा था। प्राचीन रोम का वैभव मुझ में सनसनाहट पैदा किये बिना न रहा था। इसी सफर में मैंने जवाहर को ज्यादा करीब से, अच्छी तरह, देखा और मुझे पता चला कि वह बड़े ही बढ़िया साथी और पथप्रदर्शक हैं। अब वे मेरे लिए केवल बड़े भाई न रहे, जिनसे मैं हरदम दुखी थी। वह एक प्रिय साथी थे और हमने जो थोड़े दिन सैरसपाटे में एक साथ गुजारे वे बड़े ही सुख के दिन थे।

जेनेवा में हम लोग एक फ्लैट में रहते थे। मैं इससे पहले कभी इतनी छोटी जगह में नहीं रही थी और इस नए तजुरबे में मुझे बड़ा आनन्द आया। मगर कुछ दिनों के बाद इस मकान से मेरी तबियत उकताने लगी और आनन्द-भवन के बड़े कमरे और खुले बाग मुझे याद आने लगे। मेरे आने के एक हफ्ते बाद जवाहर ने मुझे जेनेवा का एक नकशा, एक इंग्लिश-फ्रेंच शब्द-कोष और टिकटों की कॉपी दी। मुझसे कहा गया कि अपने आप घूमने फिरने के लिये मुझे बस इन्हीं चीजों की जरूरत पड़ सकती है और मैं जितनी जल्द अपना काम आप ही करना शुरू करूं, उतना ही अच्छा होगा। मुझसे यह भी कहा गया कि कमला बीमार हैं। इस वजह से घर का इन्तजाम मुझी को करना होगा। हालांकि शुरू में यह काम मेरे लिये आसान न था फिर भी उससे मुझे अच्छी शिक्षा मिली और बहुत जल्द मुझे उसकी आदत भी पड़ गई। उन दिनों मैं फ्रेन्च बहुत कम जानती थी और जो फ्रेन्च मैंने स्कूल में सीखी थी वह न सीखने के बराबर थी। मैं अपने भाई की चेतावनी से कुछ घबरा जरूर गई, पर मैं जानती थी कि उनसे दलील करना ठीक न था। इसलिये मैंने चुपचाप उनका हुकम मान लिया और जिस तरह भी बन पड़े यह काम करने लगी। मैंने सबसे पहला जो काम किया वह एक भली स्विस लड़की से फ्रेंच भाषा सीखना था। बाद में यह लड़की मेरी बड़ी अच्छी सहेली बन गई। हमारे घर की नौकरानी मार्गरी ने मुझे घर का कामकाज सिखाना शुरू किया

और हम दोनों की खूब गुजरने लगी। कभी-कभी कोई छोटी-मोटी बात हो जरूर जाती थी, पर जिंदगी उतनी मुश्किल न थी जितनी मैंने पहले समझी थी।

जेनेवा में एक इंटर नेशनल समर स्कूल था और दुनिया के हर हिस्से के लोग वहां जमा होते थे, खासकर वे विद्यार्थी जो अपनी गरमी की छुट्टियां गुजारने जेनेवा आते थे। इनमें हिन्दुस्तानी, चीनी, सिलोनी, अमरीकी, फ्रेन्च, जर्मन और दूसरे अनेक देशों के लोग होते थे। जवाहर इस स्कूल में दाखिल हो गये और कुछ दिनों के बाद मैं भी भरती हो गई। मेरी वहां बहुत से लोगों से दोस्ती हो गई। उस समय जेनेवा में लीग ऑफ नेशन्स के जलसे के लिये जो बड़े-बड़े मशहूर राजनीतिज्ञ वहां आये थे, वे इस स्कूल में लेकचर देते थे। इनमें ऑक्सफोर्ड, केम्ब्रिज और यूरप की दूसरे विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर और मशहूर लेखक भी होते थे। ये लेकचर बड़े दिलचस्प हुआ करते थे, पर इनका बड़ा फायदा यह था कि उनके कारण हमें दुनिया के सभी हिस्सों के हर प्रकार के लोगों से मिलने का मौका मिलता था।

शनिवार-इतवार को स्कूल की तरफ से किसी भी जगह सैर के लिये जाने का प्रबंध होता था और जब कभी कमला की तबियत ठीक रहती तो जवाहर और मैं इस सैर में शामिल हो जाते थे। ऐसे ही एक सफर में हमने कोल डि व्होजा नामक पहाड़ पर जाने का निश्चय किया। हमारी एक छोटी-सी पार्टी थी, जिसमें अमरीकन और स्विस ज्यादा थे। इस पार्टी में सिर्फ तीन हिन्दुस्तानी थे—जवाहर, एक सिंधी विद्यार्थी और मैं। हमारे सिन्धी दोस्त जरा बांके थे। हमेशा खूब भड़कदार कपड़े पहनते थे और उन्हें अपनी पोशाक की खूबी का खुद भी ख्याल रहता था। इस सफर में और सब लोग तो चुस्त पजामे और ऊनी पुल ओवर और मजबूत कीलोंवाले बूट पहनकर गये, पर हमारे सिन्धी दोस्त (जो अब हिन्दुस्तान में किसी जगह ऊँचे आई० सी०एस० अफसर हैं) भड़कीला सूट और शानदार जूता पहनकर आए। हम लोग पहले रेल से गए। फिर रस्से से चलने वाली गाड़ी से और इससे और आगे जाकर हमने उस जगह जाने के लिये, जहां हमें पहुंचाना था, पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। दो घंटे की थका देनेवाली चढ़ाई के बाद हमें बारिश, पाला और बर्फ का सामना करना पड़ा और हम खूब अच्छी तरह भीग गए। हमारे सिंधी दोस्त को बड़ी ही परेशानी हुई; क्योंकि उनके जूते पहाड़ की चढ़ाई के लिये ठीक न थे और बार-बार फिसलते थे। जवाहर की आदत है कि जब

कभी ऐसे सफर पर जाते हैं, पट्टियां, आयोडिन तथा दूसरा जरूरी सामान अपने साथ रखते हैं। हमारे दोस्त की यह हालत देखकर जवाहर ने झसे रस्सी के तलोंवाले जूते निकालकर उनको दिये, जिससे हमारे मित्र की मुश्किल किसी कदर कम हुई।

सिर से पैर तक भीगे हुए एक घंटे और चलने के बाद हम सूर्य की किरणों में चमकते हुए पहाड़ के एक टुकड़े के पास पहुंचे जो कि ताजा बरफ से ढका हुआ था। हालांकि हम लोग थक कर चूर हो गए थे फिर भी ताजा बर्फ का नज्जारा हम में से कुछ लोगों का जी लुभाये बिना न रहा। जवाहर भी इन्हीं लोगों में से थे। दो-दो और तीन-तीन की टोलियां बनाकर एक दूसरे के पीछे बैठकर उन्होंने इस बर्फ पर से फिसलना शुरू किया। मैं बहुत ज्यादा थक गई थी। इसलिये मैं एक तरफ बैठकर यह तमाशा देखती रही। जवाहर फिर एक बार फिसलने की तैयारी कर रहे थे कि एक विद्यार्थी ने जो उनके पीछे बैठना चाहता था उन्हें हलका-सा धक्का दिया और जवाहर फिस-लनेकी तैयारी करने से पहले ही अकेले नीचे की तरफ फिसलने लगे। उस ढलाव के सिरे पर एक बड़ी भारी चट्टान की दीवार थी और जवाहर अपने आपको संभालने से पहले ही उस दीवार की तरफ लुढ़कने लगे। इस दशा से हम सांस रोके रहे और इस बीच में तो लाखों मौत मर चुकी थी। जवाहर जानते थे कि वह उस किनारे के पास पहुंचते जा रहे हैं; पर उन्होंने अपने होश दुरुस्त रखने की कोशिश की। बड़ी भारी कोशिश से उन्होंने पलटा खाने का प्रयत्न किया और उसमें कामयाब भी हो गए। बर्फ के बाहर निकले हुए पहाड़ के पथरीले हिस्से पर जाकर वह रुके। इसीसे उनकी जान बची। फिर भी उनके चेहरे और हाथों पर खूब खराश आई। यह सब कुछ ही मिनटों में हुआ, पर उसके कई घंटे बाद भी मेरा हाल यह था कि मेरे घुटनों में कमजोरी मालूम होती थी।

इस घटना के बाद हम चुपचाप करीब की झोंपड़ी में गए, जहां आग जल रही थी और आग के चारों ओर बैठ गए। हमारे सिंधी दोस्त ने और लोगों के साथ-साथ अपने शानदार जूते भी आग के किनारे सूखने के लिये रख दिये। थोड़ी देर बाद जब वह अपने जूते लेने गए तो उन्होंने देखा कि जूता सूखकर ऐसा सिकुड़ गया है कि पहना नहीं जा सकता। उनको अपने जूतों का यह हाल देखकर बड़ा ही दुःख हुआ, खासकर इस वजह से भी कि हम

लोगों के मोटे बूट आग से सूखकर ठीक हो गए थे। यह जगह एक बुड्ढे पति-पत्नी की थी। उन्होंने हमें खूब अच्छा खाना खिलाया और चूंकि हम उस रात वापस नहीं जा सकते थे। इसलिये करीब की उनकी झोंपड़ी में रात भर ठहरे। मर्द नीचे जमीन पर सोए और दो लड़कियां एक बिस्तरे में सोईं; क्योंकि सबके लिये काफी बिस्तरे नहीं थे। सर्दी बहुत तेज थी। इसलिये मेरे साथ सोने वाली माली नाम की लड़की ने मुझसे कहा कि अगर मैं बिस्तरे के कपड़े ठीक से पकड़ रखूं तो वह अंदर की तरफ जलती हुई बत्ती घुमाकर बिस्तर को अंदर से गर्म कर लेगी। मैं इसपर राजी हो गई और कंबल पकड़े रही, माली अंदर से बत्ती आगे पीछे घुमाने लगी, ताकि बिस्तर गर्म हो जाय। थोड़ी देर बाद हमें किसी चीज के जलने की बू आई और पता चला कि हमारी चादर जल रही है। हमने बत्ती गुल कर दी और बिस्तरे में लेट गए। खैरियत हुई कि हमारी इस हरकत से पूरी झोंपड़ी में आग न लग गई। दूसरे दिन हम अपने घर रवाना हुए। हम थके-मांदे थे, पर खुश भी थे कि घर वापस जा रहे हैं।

कभी-कभी मैं अपने भाई के साथ रोमांरोलां से मिलने जाती। रोमांरोला जैनेवा के करीब ही व्हिलान्यूव में रहते थे। मैं और भी बहुत से प्रसिद्ध लेखकों, संगीतज्ञों और वैज्ञानिकों से मिली। इनमें से जिनकी याद मेरे मनमें विशेष कर आती है वह आइन्स्टाइन और अर्न्स्ट टोलर हैं। आइन्स्टाइन से मेरी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई, पर वह एक जगह जहां सर जगदीशचन्द्र बसु का भाषण हो रहा था मौजूद थे। इस भाषण को सुनने मैं भी गई थी। मंच पर और लोगों के पीछे वह छुपकर बैठे थे और किसी को पता भी न था कि वह इस सभा में मौजूद हैं। एक अमरीकन विद्यार्थी ने उन्हें पहचान लिया और उसने सबके पास यह खबर पहुँचा दी। अब लोगों ने शोर मचाना शुरू किया। सभी लोग उन्हें अच्छी तरह देखना चाहते थे। बहुत समझाने-बुझाने के बाद वे इस बात पर राजी हुए कि मंच पर सामने आकर सबको दर्शन दें। वह आगे आए और शरमाते हुए उन्होंने सबका अभिवादन किया। ऐसा मालूम होता था कि अपने प्रति लोगों का यह प्रेम देखकर वह कुछ घबरा गए हैं। वे सिर्फ थोड़ी देर ही मंच पर खड़े रहे और फिर वहीं पीछे जा बैठे।

टालर से मैं ब्रुसेल्स में मिली। देखने में वह ज्यादा आकर्षक नहीं थे, पर उनकी आंखें बड़ी अजीब थीं और ऐसा मालूम होता था कि उनकी आंखें

आपके दिल के अन्दरूनी विचार पढ़ रही हों। उनसे बातचीत करना बड़ा अच्छा लगता था। अक्सर उनके चेहरे पर बेहद उदासी छा जाती थी और उनकी आंखों से ऐसा मालूम होता था जैसे वह किसी खोई हुई चीज की तलाश में हैं।

नात्सी राज के शिकार टोलर को अपना देश त्याग करना पड़ा और दूसरे देशों में शरण लेनी पड़ी। वे महान् कवि थे। सत्य और स्वतंत्रता के लिए मर-मिटना यही उनकी लालसा थी। मैं जिन लोगों से मिली हूँ उनमें सबसे ज्यादा निडर लोगों में टालर भी एक थे। अगर किसी बात पर उनको विश्वास होता और उनकी आत्मा उनसे कहती कि यही काम ठीक है तो उस काम को करने से उन्हें कोई चीज नहीं रोक सकती थी। उनके सपने टूट गये थे और वे अपनी जन्म-भूमि से निकाले जा चुके थे। ऐसी हालत में उन्होंने आत्म-हत्या करली और इस तरह एक दीप्तमान जीवन का अंत हो गया। उनकी मृत्यु से दुनिया का बड़ा भारी नुकसान हुआ है; पर न तो उनका कार्य मर सकता है, न खुद टॉलर मर सकता है। वे दोनों अनादि काल तक अमर रहेंगे।

जेनेवा में कुछ महीने रहने के बाद हम मोंटाना नाम की पहाड़ी पर गए। यह जगह छोटी थी, करीब-करीब देहात की सी, पर बड़ी ही सुंदर। मैंने बर्फ पर चलना और खास किस्म के जूते पहनकर बर्फ पर दौड़ना भी यहीं सीखा। पहले खेल में मुझे बड़ा मजा आता था और मैं उसमें घंटों खुशी से निकाल देती थी। हम यहां कई महीने ठहरे और मैंने यहां पहली बार सर्दी के खेलों में हिस्सा लिया।

जब हम लोग मोंटाना में थे तो जवाहर और मैं अक्सर पैरिस, बेल्जियम, जर्मनी और कभी-कभी इंग्लैण्ड भी जाया करते थे। मुझे इंग्लैंड कभी पसंद नहीं आया। पर फ्रान्स और खासकर पैरिस मुझे बहुत ही पसंद था। हम या तो किसी सम्मेलन के लिये या महज सैर-सपाटे के लिये जाते थे। पहले जवाहर अकेले जाया करते थे। बाद में उन्होंने मुझसे कहा कि अगर मैं उनके कुछ काम आ सकूं और उनके सेक्रेटरी का काम कर सकूं तो मुझे भी वह अपने साथ ले चलेंगे। मुझे जवाहर के साथ जाने के खयाल से बड़ी खुशी हुई; पर सेक्रेटरी के काम की बात सुनकर मैं जरा झिझकी, क्योंकि मैं जानती थी कि जवाहर बहुत काम लेने वाले आदमी हैं और ठीक काम न करने वाला उन्हें पसंद नहीं है। फिर भी जवाहर ने जो बात कही थी वह बड़ी ही लुभाने वाली

थी। इसलिये मैंने फौरन उनका टाइपरायटर ले लिया और अपने आपको भविष्य के लिये तैयार करने लगी। उसके बाद करीब-करीब हर सफर में मैं जवाहर के साथ होती थी। इस तरह मुझे बहुत कुछ सीखने का मौका मिलता था, पर इस काम में मैं समझती थी उतना मजा न था; क्योंकि जवाहर कभी मुझे कम काम नहीं देते थे। वह समझते थे कि बहुत ज्यादा काम करने से हमेशा आदमी का भला ही होता है और मेरे बारे में उनका यह खयाल था कि मैंने इससे पहले कुछ भी काम न किया था। वह कहते कि मैं बहुत ही आराम से दिन गुजारती रही हूँ। इसलिए जरा कड़ी मेहनत करने से मैं बहुत सुधर जाऊंगी। मेरा विश्वास है कि ऐसा ही हुआ भी।

जब कभी जवाहर को बहुत ज्यादा काम न होता तो वे मुझे अजायबघर, चित्रशालाएं आदि दिखाने ले जाते थे। कभी-कभी हम दिन भर पैदल घूमते रहते। अगर कभी मैं थक जाती और कहती कि अब बाकी जगहें आराम से टैक्सी पर चलकर देखेंगे तो जवाहर इस शर्त पर राजी होते कि हम रात को थिएटर देखने न जाएं। उनके विचार में एक साथ बहुत ज्यादा ऐश आराम आदमी के लिये बहुत खराब है। नतीजा यह होता था कि शाम को थिएटर न जाने की बात मुझे पसंद न आती और उदास होकर मैं उनके साथ पैदल ही घिसटती-रगड़ती थी। मुझे मानना पड़ेगा कि यह मेरे लिये बड़ी अच्छी शिक्षा थी और ऐसा अनुभव मैं हिंदुस्तान में कभी भी हासिल न कर सकती थी। कभी-कभी इस विचार से कि मेरे भाई फिजूल ही मुझपर इतनी मुसीबतें डालते हैं मैं उनसे नफरत-सी करने लग जाती।

मैं जहां कहीं जाती, नए-नए लोगों से मेरी दोस्ती हो जाती। इनमें सब जातियोंके लोग होते,जिनमें अधिकतर विद्यार्थी और कलाकार पाये जाते थे। मैं पूरी आजादी के वातावरण में पली थी और मुझे यह सिखाया गया कि लड़कों और लड़कियों में कुछ फर्क न करूं। सच तो यह है कि मैं खुद भी बहुत कुछ लड़कों की तरह रहती थी और इस पर मेरी माताजी को मुझे अकसर रोकना पड़ता था। यूरप में लड़के और लड़कियां जिस आजादी से आपस में मिलते थे, इसमें मेरे लिये कोई नई या अनोखी बात न थी और जिन लोगों से मैं मिलती थी उनसे मिलने में मुझे किसी तरह की शरम या झिझक नहीं होती थी। इस सफर में कुछ लोगों से मेरी बहुत अच्छी दोस्ती हो गई और बाद के

बरसों में हममें बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा और यह सिलसिला हाल की लड़ाई शुरू होने के सालभर बाद तक जारी रहा। इसके बाद एक-एक करके मेरा अपने इन मित्रों के साथ संबंध टूटता गया; क्योंकि नात्सी सेना उनके देशों को रौंदती चली गई। मैं अकसर यह सोचती रहती हूं कि अब मेरे वे मित्र कहां होंगे! आया नजर-बंद होंगे या बेबस और बेघरबार लोगोंकी तरह जगह जगह भटकते फिर रहे होंगे। मेरे इन मित्रां में कितनी जिन्दगी थी, कितना जोश था, वे भविष्य का सामना कितनी निडरता से करते थे और उनमें इस बात की कितनी बड़ी आशा थी कि वे दुनिया को ऐसी दुनिया बनायेंगे जिसमें बहादुर लोग सुख और शान्ति से जीवन बिता सकें। पर यह सब कुछ न हो सका। उनके ये सपने बुरी तरह तोड़ दिये गये। और कौन जानता है कि वे फिर ये सपने देख भी सकेंगे या नहीं।

मैंने सबसे ज्यादा खुशी में जो समय गुजारा वह स्विटजरलैंड और पेरिस में। अकसर मेरे मन में यह इच्छा पैदा होती है कि फिर एक बार वही दिन लौट आएं जब जीवन बेफिक्री और आनंद से गुजरता था और फिर एक बार उन्हीं पुराने मित्रों से मुलाकात हो सके। हलांकि बार-बार इसकी तैयारी की गई। पर वह कभी भी पूरी नहीं हुई और मैं फिर कभी यूरप न जा सकी।

१९२७ के शुरू में साम्राज्यवाद विरोधी संघ का जलसा ब्रुसेल्स में हुआ और जवाहर को इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से उसमें शरीक होने का निमंत्रण मिला। मैं भी उनके साथ हमेशा की तरह गई। इस जलसे में दुनिया के हर हिस्से से लोग आये थे। चीन, जावा, सीरिया, फिलस्तीन, और अमेरिका जैसे दूर-दूर के देशों से और दुनिया के दूसरे मुल्कों से भी लोग आए थे। अमेरिका और अफ्रीका के हबशी प्रतिनिधियों ने बड़ी जोश भरी तकरीरें कीं।

इस सभा में मैं पहली बार सरोजिनी नायडू के भाई वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय से मिली। आमतौर पर लोग उन्हें 'चचा चट्टो' पुकारा करते थे। कई साल से वह अपनी मातृ-भूमि से जुदे हो चुके थे। उनका न तो कहीं घर था, न उनके पास पैसा था और ऐसी हालत में बड़ी मुसीबत से जिन्दगी के दिन गुजारते अनेक देशों की खाक छानते फिरते थे। पर ऐसी हालत में भी उनके मन में कटुता पैदा नहीं हुई थी जैसे कि इस प्रकार की मुसीबत उठाने

वाले और लोगों में पैदा हुई थी। इसके खिलाफ उनके चेहरे पर हमेशा एक प्रकार की मुस्कराहट रहती थी और वह हर किसी से ऐसी बातें करते थे जिनसे उसका दिल बढ़े। वह बहुत ही बुद्धिमान और आकर्षक थे और मैं जिन लोगों से मिल चुकी हूं उनमें से वह ऐसे लोगों में थे जिनको आदमी दिल से चाहने लगता है। मुझे उनसे बड़ी मुहब्बत हो गई और वह भी मुझसे काफी हिल-मिल गए मैंने उन्हें जितना अधिक देखा उतनी ही मेरे मन में उनके लिये श्रद्धा और भक्ति बढ़ती गई। ऐसे वक्त पर भी जब उनपर फाकों की नौबत गुजरती थी वह कभी हिम्मत नहीं हारते थे। बहुत से मौकों पर उनके पास दोपहर के खाने के लिए केवल दो सेब से अधिक कुछ न होता था तो भी वे इस बात पर जोर देते थे कि कोई दूसरा गरीब हिंदुस्तानी विद्यार्थी उनके इस खाने में शरीक हो। जब हम अक्टूबर १९२७ में बर्लिन गए तो हम चट्टो से फिर मिले और अब की हमने उन्हें और ज्यादा करीब से देखा। हम सबको उनसे बड़ा प्रेम हो गया और वह भी हम सबको बहुत चाहने लगे। शायद इसका कारण यह रहा हो कि बरसों के बाद वे ऐसे लोगों से मिले थे जो उनको यह विश्वास दिला सके कि वह उन्हीं के खानदान के हैं और गैर या पराए नहीं हैं।

जिस शाम को हम बर्लिन से रवाना हुए वह हमसे मिलने आए। अकेले रहने और जगह-जगह भटकते रहने की उन्हें बरसों से आदत पड़ गई थी। फिर भी हम लोगों से जुदा होते हुए उन्हें बड़ी तकलीफ हुई। जब वह रेलवे प्लेटफार्म पर खड़े होकर मुझे बिदा कर रहे थे तो उनकी आंखों में आंसू भर आए। कहने लगे,"कृष्ण, न मालूम यह हमारी आखिरी मुलाकात है या हम फिर भी कभी मिलेंगे! मुझे आशा है कि मैं तुमसे फिर मिलूंगा! कौन जाने मैं हिंदुस्तान ही आ जाऊं और वहीं तुम लोगों की एक झलक देख लूं।" मुझ पर इन शब्दों का बड़ा असर हुआ और मैं रो पड़ने ही वाली थी। कारण कि मेरे मन में यह विचार पैदा हो रहा था कि मैं उनसे फिर कभी न मिल सकूंगी। जब ट्रेन चलने लगी तो मैं हाथ हिलाकर उस वक्त तक उनकी ओर देखती रही जब तक कि वह मेरी नजरों से ओझल नहीं हुए। उनके ओठों की आखिरी कांपती हुई मुस्कराहट मुझे खूब याद है। उन्होंने उसे छुपाने की बहुत कोशिश की, पर छुपा न सके, और इस तरह हम एक दूसरे से जुदा हुए। उन्हें उस प्लेटफार्म पर अकेला

छोड़कर हम अपने घर जा रहे थे, सुख-चैन और आराम की जिन्दगी गुजारने के लिए और उनके लिए अब भी वही तकलीफ, अकेलेपन और मुसीबत की जिन्दगी थी। उसके बाद कभी-कभी जवाहर को और मुझे 'चचा चट्टो' की खबर मिलती रही और फिर खबरें आना बंद हो गईं। उनके बारे में अजब-अजब तरह की अफवाहें भी सुनी गईं। एक खबर यह थी कि वह जिन्दा हैं, पर बड़ी मुसीबत और तकलीफ से दिन गुजार रहे हैं। दूसरी खबर यह थी कि उन्हें रूस में गिरफ्तार करके गोली मार दी गई। कोई नहीं जानता कि सच्ची बात क्या है। वह जिंदा हैं या मर गए, यह अभी तक एक राज़ है।

बर्लिन और दूसरे शहरों में हम और भी बहुत से क्रांतिकारियों से मिले। उनके साथ बैठकर उनके किस्से सुनने में मुझे बड़ा मजा आता था और उनकी हिम्मत और बहादुरी का हाल सुनकर मेरे मन में उनके लिए अटूट श्रद्धा हो गई। उन्होंने बहुत कुछ कुर्बानियां की थीं और बड़ी तकलीफें उठाई थीं। इस पर रुपये पैसे की निरन्तर तकलीफ उनके लिए बड़ा भारी सवाल था। मगर इस पर भी वह जितने खुश रह सकते थे रहने की कोशिश करते और उन मुसीबतों की पर्वाह नहीं करते थे जो उनके रास्ते में थीं। ये बेवतन लोग दुनिया भर में जगह-जगह फैले हुए हैं। बड़े ही अच्छे और बहादुर लोग हैं, इतने बहादुर कि हमें उनकी बहादुरी का ठीक अंदाजा भी नहीं और फिर भी हमारे देश में कितने लोग हैं जो उनके विषय में कुछ जानते हों या जानने पर जिन्हें उनका खयाल आता हो।

एक और ऐसे ही अच्छे और दिलचस्प व्यक्ति, जिनकी याद मेरे मन में बस गई है, धनगोपाल मुकर्जी हैं। वे एक नौजवान बंगाली लेखक थे जो अपने वतन हिंदुस्तान से भाग गये थे और काफी दिलचस्प और रोमांचकारी जीवन गुजारने के बाद अमेरिका पहुंचे और वहीं बस गए। उन्होंने कालेज में तालीम इस तरह हासिल की थी कि अपने फुर्सत के समय में काम करते थे और इससे जो आमदनी होती थी उसी से कालेज की फीस अदा करते थे। कालेज से निकलने के बाद उन्होंने किताबें लिखना शुरू किया। दुर्भाग्य से हिन्दुस्तान में उनकी रचनाओं के बारे में लोगों को बहुत कम मालूम है। उनकी किताबें 'दी फ्रेस ऑव साइलेंस', 'कास्ट एण्ड आउटकास्ट' और 'माई ब्रदर्स फ़ेस' उन बेहतरीन किताबों में से हैं, जो मैंने पढ़ी हैं। उन्होंने बच्चों के लिए भी

चंद बड़ी अच्छी किताबें लिखी हैं जैसे 'गेय नैक', 'करी, दी ऐलीफ़ैंट' वगैरा।

हम लोग जब जेनेवा में थे तो हमारे पास धनगोपाल का एक खत पहुंचा। यह खत भाई के नाम था, पर वे उस समय इंग्लैंड में थे इस लिये वह खत कमला ने खोला। धनगोपाल हमसे मिलना चाहते थे। कमला ने उन्हें जवाब दिया कि जवाहर बाहर गए हैं, पर वह जब चाहें हमसे आकर मिल सकते हैं। दो दिन बाद शाम के पांच बजे हमारे घर की घंटी बजी। उस दिन हमारी नौकरानी की छुट्टी थी। इसलिए मैंने दरवाजा खोला तो देखा कि एक नौजवान बाहर खड़ा है। मैंने उनसे दर्याफ्त किया कि आप क्या चाहते हैं? उन्होंने जवाब दिया कि मैं मिसेस नेहरू और मिस नेहरू से मिलने आया हूं। मैंने कुछ शक भरी नजर से उनकी तरफ देखा और पूछा, "आप कौन हैं?" उन्होंने जवाब दिया, "मैं धनगोपाल मुकर्जी हूं।" मैं यह जवाब सुनकर करीब-करीब गिर पड़ी, क्योंकि न मालूम क्यों, कमला ने और मैंने भी यह खयाल कर रखा था कि धनगोपाल मुकर्जी कोई बूढ़े आदमी होंगे, जिनके दाढ़ी होगी और ढीले-ढाले कपड़े पहने हुए होंगे। पर उसकी बजाय मेरे सामने एक खूबसूरत नौजवान खड़ा था, जिसका लहजा अमरीकी था और जिसकी आंखों में मित्रता की झलक थी। अपने आश्चर्य को छुपाने की कोशिश में मैंने उन्हें घर में अन्दर आने को कहा और कमला को उनके आने की खबर देने गई। कुछ मिनट बाद जब हम उस कमरे में आए जहां मैंने उन्हें बिठाया था तो हमने देखा कि वह अपने घुटनों के बल बैठे हैं और अंगीठी की आग को जो बुझ गई थी फिर जलाने की कोशिश कर रहे हैं। ज्यों ही हम दोनों उस कमरे में आईं, धनगोपाल उठ खड़े हुए और कहने लगे, "मुझे आशा है कि अगर मैं कमरे को जरा गरमाऊं तो आपको ऐतराज न होगा।" यह कहते हुए वह हँस पड़े और अपनी उस हंसी से उन्होंने मेरा और कमला का दिल उसी तरह मोह लिया जिस तरह वह अकसर लोगों का दिल अपनी हँसी से मोह लिया करते थे। उसके बाद से जहां तक धनगोपाल का संबंध था जिंदगी हमारे लिए एक आश्चर्य बन गई। कभी तो वह फूल और फल ले आते और कभी सब्जियां लाते और फिर इस बात पर अड़ जाते कि खुद ही बंगाली तरीके से भाजी पकाएंगे, पर जब वह पक जातीं तो बंगाली तरीके की न होती थी। वह मुझे अकसर अपने साथ घूमने ले जाया करते और जब उन्हें गर्मी मालूम होती

वह अपना कोट और बंडी उतारकर उसे बगल में दबा लेते और फिर चलने लगते। वह कहीं भी हों यही करते और मैं उनकी यह हरकत देखकर हैरान रह जाती। वह हमेशा मुझसे कहते थे कि मुझमें इतनी बेकरारी है जो किसी हिंदुस्तानी के लिए ठीक नहीं और मुझे हर रोज सुबह आध घंटा एक जगह बैठकर ध्यान करना चाहिए ताकि मुझमें शान्ति पैदा हो। उनमें अजीब खब्ती-पन था। फिर भी मैं जितने लोगों से मिली हूं उन सब में वे ज्यादा प्रिय और खुशदिल थे। हम में कई साल पत्र-व्यवहार जारी रहा। १९३२ में धनगोपाल कुछ दिन के लिए हिंदुस्तान आए। उनकी नौजवानी का चुलबुलापन और खुश-मिज़ाजी कुछ कम हो गई थी। उनके लिए जीवन निराशा पैदा करनेवाला साबित हुआ था। लेखक की हैसियत से वह कामयाब नहीं थे और इसीने उन्हें नाउम्मीद कर दिया था। धनगोपाल ने एक अमेरिकन औरत से शादी की थी और उनके गोपाल नाम का एक छोटा लड़का था, जिसकी उम्र अब कोई पच्चीस साल की होगी। उनकी पत्नी उम्र में उनसे बहुत बड़ी थी और न्यू-यार्क में लड़कियों के एक बड़े कालेज की प्रिंसिपल थी। वह बड़ी ही अच्छी, होशियार और अपने काम में माहिर थी। इस खानदान में वही नियमित तौर से पैसा कमाती थी और मैं समझती हूं कि धनगोपाल को इस विचार से बड़ी तकलीफ होती थी कि वह अपनी पत्नी की आमदनी पर गुजारा कर रहे हैं। १९३२ के बाद से धनगोपाल के पत्रों में पहले से भी ज्यादा निराशा झलकने लगी। फिर खत बंद हो गए और १९३५ में हमने सुना कि उन्होंने अपने गले में फांसी लगाकर आत्म-हत्या कर ली।

धनगोपाल हमारे बड़े प्रिय मित्र थे। उनकी मृत्यु की खबर से जवाहर, कमला और मुझको बड़ा दुख हुआ। हमने एक सच्चा मित्र खोया और हिंदुस्तान ने अपना एक यशस्वी लेकिन अज्ञात पुत्र।

सन् १९२७ की गरमियों में पिताजी यूरप आए। मुझे इससे बड़ी खुशी हुई और जवाहर को भी, इसलिए कि हम जानते थे कि पिताजी को केवल पूरे आराम ही की नहीं, बल्कि पूरी तरह वातावरण की तबदीली की भी जरूरत थी। हमें डर था कि कहीं आखरी वक्त पर फिर कोई ऐसी बात होगी, जिससे उन्हें अपना विचार मुल्तवी करना होगा और वह यूरप न आ सकेंगे। खुश-किस्मती से कोई ऐसी बात नहीं हुई और उन्होंने हमें लिखा कि उन्होंने अपनी जगह रिजर्व करा ली है। सफर पर रवाना होने से पहले उन्होंने मेरे नाम अपने

खत में लिखा था, "तुम और भाई (जवाहर) बराबर जोर दे रहे हो कि मैं छुट्टी लेकर यूरप आऊं, इधर स्वरूप और रणजीत भी यही कह रहे हैं और आखिर मेरे लिए यह मुमकिन हुआ है कि बहुत जल्द वहां चला आऊं। पिछले सात सालों से मैं जो सार्वजनिक काम कर रहा हूँ उसकी वजह से मैं कुछ थक सा गया हूं और इस लम्बी मुद्दत के अन्त में इस विचार से परेशानी होती है कि देश को आजादी की ओर आगे बढ़ाने में मैं नाकामयाब रहा। इसीलिये मैंने अब यह फैसला किया है कि छुट्टी ले लूं और अब ज्यादा दिन तुम सबसे दूर न रहूं।" मैंने उनके नाम अपने खत में ब्रुसेल्स की कान्फ्रेन्स के बारे में कुछ लिखा था। उसीका हवाला देकर अपने इसी खत में पिताजी ने लिखा: "ब्रुसेल्स कान्फ्रेन्स का जो हाल तुमने लिखा था वह मुझे मिला और मैंने उसपर तुम्हारी अपनी राय बड़ी खुशी से पढ़ी। तुम तो अच्छी-खासी राजनीति जानने वाली मालूम देती हो। पर यह न समझो कि लड़की होना तुम्हारे रास्ते में कोई रुकावट पैदा करेगा। बहुत सी स्त्रियों ने अपने देश के उद्धार में उतना ही बड़ा काम किया है जितना उन देशों के पुरुषों ने, बल्कि कुछ औरतें तो इस काम में मर्दों से भी बाजी ले गई हैं। सारा सवाल यह होता है कि अपने देश के प्रति हमारे अंदर कैसी भावना है और उसकी उन्नति के लिये हम कितनी मेहनत करने के लिए तैयार होते हैं। पुरुष या स्त्री का इसमें कोई सवाल नहीं है, बल्कि सच तो यह है कि स्त्री अगर दृढ़ हो तो वह मर्द से भी ज्यादा असर डाल सकती है। गर्ज़ेकि तुम्हारे लिये काम का पूरा मौका है। तुम्हें याद रखना चाहिये कि सच्ची देश-भक्ति और वतनपरस्ती तुम्हारे खूनमें मौजूद है और अगर तुम जान-बूझकर उसे दबाने की कोशिश न करो तो जल्द या देर से उसका उभरना निश्चित है।"

पिताजी सितम्बर १९२७ में यूरप पहुंचे। उन्हें अपने साथ पाकर हमें बड़ा आनन्द हुआ और उन्हें भी साल भर की जुदाई के बाद अपने बच्चों से मिलकर बड़ी खुशी हुई। अब तक जवाहर के साथ मैं अपना समय पढ़ने-लिखने, उनके सेक्रेटरी का काम करने और आम तौर पर हर तरह से उनकी मदद करने और उनके लिए सहायक बनने में बिताती रही थी। अब इसके बाद के महीने मैंने पिताजी के साथ आराम और ऐश से गुजारे। मैं मानती हूं कि मैंने खूब मजे किये और मुझे इस जीवन में बड़ा लुत्फ आया। फिर भी मैं खुश हूं कि यह भी मेरे लिए जरूरत से ज्यादा न हुआ।

हम सब साथ ही लंदन गये और एक होटल में ठहरे जहां बहुत बरसों पहले पिताजी उस वक्त ठहरे थे जब वह जवाहर को हैरो के स्कूल में दाखिल कराने ले गये थे। वहां पहुंचने के बाद मैं दर्बान के पास गई और उससे पूछा, "क्या हमारे लिये कोई खत है?" "आपका नाम ?" दर्बान ने सवाल किया और जब मैंने जवाब में 'नेहरू' कहा तो वह 'नेहरू' 'नेहरू' गुनगुनाता हुआ खतों की अलमारी में खत तलाश करता रहा। फिर अचानक मेरी तरफ मुड़ा और कहने लगा, "श्रीमतीजी,कई साल पहले मैं एक नेहरू को जानता था। वह बड़े मालदार और बड़े शरीफ आदमी थे। उनकी बीवी भी बड़ी अच्छी थी। उनका जवान बेटा हैरो के स्कूल में जाया करता था? तुम्हारा उस नेहरू से कुछ रिश्ता तो नहीं है? मैं उसकी बातें सुनकर चौंक पड़ी और उसकी तरफ देखकर हंसते हुये मैंने कहा कि जिस नेहरू का वह जिक्र कर रहा था वह मेरे पिताजी थे जो इस होटल में बहुत बरसों पहले रह चुके थे और अब जरा गंजे सिर वाले जो साहब मेरे साथ थे वह वही जवान साहबजादे थे जो हैरो के स्कूल में जाया करते थे। बूढ़ा दर्बान यह सुनकर बहुत खुश हुआ और इसके बाद से वह हमारी बहुत ज्यादा खबरगीरी करने लगा। यह कमाल की बात है कि इतने बरसों के बाद भी उसे हमारा नाम याद रहा और मुझे यह जानकर आश्चर्य और आनंद भी हुआ।

पिताजी के साथ हम जहां कहीं भी रहे बहुत ठाट से रहे। ज्योंही हम किसी होटल में पहुंचते मैनेजर अपने सलाम के साथ हमारे लिये फूल भेजता। इसके बाद वह खुद यह दर्याफ्त करने आता कि हमें हर तरह का आराम हासिल है या नहीं। हर कोई हमारे इर्दगिर्द रहता और कुछ देर के लिये यह सब मुझे पसन्द आया।

एक बार ऐसा हुआ कि पिताजी अकेले लंदन जा रहे थे और हम सब लोग पेरिस ही में रहने वाले थे। पिताजीने मुझसे पूछा कि लंदन से तुम्हारे लिये क्या लाऊं? मैंने कहा कि मुझे बहुत दिनों से चमड़े के एक कोट की जरूरत है। जवाहर इसकी जरूरत नहीं समझते थे। इसलिये मुझे अबतक यह चीज नहीं मिली थी। पिताजी ने मुझसे वायदा किया कि कोट ले आयेंगे,लेकिन वह मेरा नाप लेना भूल गए। जब वह लंदन पहुंचे तो सेल्फ्रीजीस की दूकान पर जाकर उन्होंने मैनेजर से मिलना चाहा। मैनेजर से जब आया तो पिताजी ने उससे कहा कि मैं अपनी बेटी के लिये एक चमड़े का कोट खरीदना चाहता हूं,

पर मेरे पास उसका ठीक नाप नहीं है इसलिए क्या आप यह कर सकते हैं कि अपनी दूकान में काम करने वाली लड़कियों में कुछ ऐसी लड़कियों को जिनकी ऊंचाई ५ फुट २ इंच के करीब हो एक कतार में खड़ा करा दें, ताकि उनको कोट पहना कर देखा जाए कि वह मेरी लड़की के जिसम पर ठीक आएगा या नहीं। इस गैर मामूली दरख्वास्त से मैनेजर पहले तो कुछ झिझका, पर जब पिताजी ने ज्यादा जोर दिया तो उसने उनकी इच्छा पूरी की। पिताजी मेरे लिये ठीक नाप का एक नफीस कोट ले आए और जिस तरह से उन्होंने कोट पसंद किया उससे उन्हें कुछ भी बहस न थी। वह उसे गलत या असाधारण चीज भी नहीं समझते थे। जब उन्होंने यह किस्सा हमें सुनाया तो कमला को और मुझे वह बड़ा दिलचस्प मालूम हुआ, पर जवाहर इसे सुनकर बिगड़ गए। उनका खयाल था कि पिताजी का केवल इसलिए कि वह ऐसा कर सकते थे और कोई उनसे पूछने वाला न था इस तरह की हरकत करना बड़ा ही गलत था।

नवंबर १९२७ में हम कुछ दिनों के लिये बर्लिन आए थे। जवाहर चाहते थे कि रूसी इन्किलाब की दसवीं सालगिरह के मौके पर मास्को जाएं। उनके और पिताजी के नाम इसका निमंत्रण भी आया था। मुझे भी वहां जाने का बड़ा शौक था और कमला को भी। पहले पिताजी का यह खयाल था कि यह सफर बिलकुल गैरजरूरी है; क्योंकि हमारे पास रूस में बिताने के लिए सिर्फ एक हफ्ते का वक्त था और हमें अपना जहाज पकड़ने के लिए जल्द मार्सेल्स आना था। जवाहर की बड़ी इच्छा थी और इसीलिये पिताजी भी राजी हो गये। हम सब के सब मॉस्को गए। यह एक थका देने वाला सफर था, जिसमें बहुत कम आराम मिला और कभी-कभी तो पिताजी इस सफर में बहुत बिगड़ जाते थे।

मॉस्को में उदासी और खामोशी नजर आई। फिर भी वहां हम जिन मोटे और सादा कपड़े पहने हुए मर्दों और औरतों से मिले उनमें कोई बात जरूर थी, अंदर से निकलने वाली कोई रोशनी जो उन्हें दिलचस्प और खुश बनाती थी। उन्होंने इस बात का पक्का इरादा कर लिया था कि अपने देश को दुनिया का सबसे अच्छा और सबसे बड़ा देश बनाने के लिए हर किसम की तकलीफें बर्दाश्त करेंगे और कुर्बानियां देंगे।

हम लोग ग्रॅांड होटल में ठहरे। यह एक बड़ी इमारत थी, जिसमें बड़े-बड़े कमरे थे। ज़ार के जमाने का तमाम फर्नीचर मोटे कपड़े से ढंक दिया गया

था। इसलिये वहां के वातावरण में किसी प्रकार का अमीरी ठाट न था। मॉस्को में बड़ी सख्त सर्दी थी। जब मैंने सुबह घंटी बजाकर नौकरानी से नहाने के लिए गरम पानी लाने के लिए कहा तो वह अजब तरह से मेरी तरफ देखने लगी। बहुत से इशारों से उसने मुझे यह समझाया कि मुझे नहाने के लिए इतना पानी नहीं मिल सकता और आखिर मैं अपने आपको क्या समझती हूँ जो नहाना चाहती हूँ। मुझे आधा जग पानी मिल सकता है, जिससे मैं अपने हाथ-मुंह धो सकती हूं। मुझे और मेरे साथियों को इसी आधा-आधा जग पानी से काम चलाना पड़ा, पर पिताजी इसके लिये तय्यार न थे। सर्दी हो या गर्मी, वह बिना नहाए नहीं रह सकते थे और चाहे वह रूस में हों चाहे कहीं और, वह अपनी रोजाना गुसल की आदत बदलना नहीं चाहते थे। इससे होटल के कर्मचारियों को बड़ी परेशानी हुई फिर भी वे गुसल करने पर अड़े रहे।

मास्को में कुछ और लोगों के अलावा पिताजी चिचेरिन से भी मिलने वाले थे, जो रूस का परराष्ट्रीय मंत्री था। चिचेरिन बहुत ही होशियार आदमी था और कई भाषाएं जानता था। उनके साथ मुलाकात तय हुई और एक नौजवान रूसी पिताजी को यह खबर देने आया कि वह चिचेरिन से कल सुबह चार बजे मिल सकते हैं; क्योंकि उन्हें रात भर और बहुत से काम हैं। पिताजी को इस बात का विश्वास न आया और उन्होंने पैगाम लाने वाले रूसी की तरफ आश्चर्य से देखकर उसकी बात को दोहराया। रूसी ने सिर हिलाकर कहा कि आपने ठीक समझा है। आपकी मुलाकात सुबह चार बजे होगी। पिताजी को बड़ी परेशानी हुई, वे यह मालूम करना चाहते थे कि आखिर सुबह चार बजे तक वे क्या करेंगे? वे उस वक्त मुलाकात के लिये जानेपर तय्यार न थे। इसलिये रात के एक बजे के करीब का वक्त ठहराया गया।

उत्सव बड़ा भारी और खूब नुमाइशी था। हमें बताया गया कि लाल फौज की परेड देखने के काबिल थी। हम यह परेड न देख सके, क्योंकि हम एक दिन देर से मास्को पहुंचे। लाल चौक में लेनिन की समाधि थी, जहां लेनिन का शरीर मसाला भरकर शीशे की अलमारी में रखा गया था। दिन के कुछ नियत घंटों में लोगों को इसकी इजाजत थी कि वे वहां आकर लेनिन को श्रद्धांजलि अर्पित करें। लोग सैंकड़ों की संख्या में लंबी कतारों में नंगे सिर और चुपचाप खड़े होकर लेनिन को श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। बाहर की तरफ दो हथि-

यारबंद सिपाही खड़े पहरा देते थे और अंदर भी सिपाही होते थे। हमने भी भी यहां जाकर यह समाधि देखी। लेनिन बिलकुल जिंदा मालूम देते थे और ऐसा खयाल होता था कि अभी उठकर बातें करने लगेंगे।

एक रोज रूसी सरकार के तमाम मेहमानों की बड़ी सरकारी दावत थी। मैं इस दावत में दो रूसी अफसरों के बीच में बैठी थी। इन दोनों की बड़ी शानदार दाढ़ियां थीं और वे काफी रोबदार दिखाई देते थे। वे दोनों खूब अच्छी अंग्रेजी और फ्रेंच बोलते थे। खाना बहुत देर तक चलता रहा। मुझे प्यास लगी थी, पर आस-पास पीने की कोई चीज दिखाई नहीं देती थी। मैं उन अफसरों से पूछना नहीं चाहती थी। इसलिये मैं खामोश रही और इधर-उधर देखती रही कि पीने की कोई चीज मिल जाए। मैंने देखा कि हर प्लेट के पास एक छोटा-सा गिलास रखा हुआ है और मेज पर बीच-बीच में छोटी-छोटी सुराहियां रखी हैं। इन सुराहियों में सादा पानी दिखाई देता था। मैंने यह पानी लेने के लिये अपना हाथ बढ़ाया मगर मुझसे पहले एक रूसी अफसर ने एक सुराही उठाकर मेरा छोटा गिलास और अपना गिलास भी भर दिया। मैंने देखा कि वह रूसी अफसर पूरा गिलास पी गया। मैं बहुत प्यासी थी। इसलिये मैंने भी यही किया, पर मैंने दो-तीन घूंट में मुश्किल से आधा गिलास पिया होगा कि मेरा हलक जलने लगा। मेरी आंखों में आंसू आ गए। मैंने चुपके से गिलास नीचे रख दिया और मेरे सामने के खाने में से कई निवाले खाए। काफी देर के बाद मुझे जरा अच्छा मालूम हुआ और फिर मुझे पता चला कि मैंने जो चीज पी थी वह सादा पानी नहीं था, बल्कि मशहूर रूसी वादका शराब थी।

हमने मॉस्को में बहुत सी चीजें देखीं। रूस में हमने सिर्फ मॉस्को का ही शहर देखा। ज्यादातर गिरजाघर, अजायबघर बना दिए गए थे। फिर भी कभी-कभी यह दृश्य दिखाई देता था कि किसी गिरजाघर के पास से गुजरते हुए बूढ़े मर्द और औरतें रास्तों में खड़ी होकर अपने सीने पर क्रास का निशान बनाकर प्रार्थना करते थे। रास्तों में हर जगह बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए थे, जिन पर लिखा था—"मजहब लोगों के लिये अफयून है।" फिर भी ईश्वर का खयाल लोगों के दिल और दिमाग से पूरी तरह दूर नहीं था।

मुझ पर जिस चीज का सबसे ज्यादा असर हुआ वह एक रूसी जेलखाना था जो हमने देखा। मैंने सन् १९२० में बहुत से जेलखाने देखे थे और

मुझे यह मालूम करने का शौक था कि सोवियत रूस में राजनैतिक और दूसरे कैदियों के साथ कैसा सलूक किया जाता है। हिंदुस्तान में जेलखानों के बाहर के बड़े दरवाजों पर हथियारबंद पहरेदार खड़े होते हैं। जेलखाने के अंदर भी वार्डरों के पास डंडे और कभी-कभी और भी हथियार होते हैं। जब हम सोवियत जेलखाने में पहुंचे तो हमने देखा कि बाहर के दरवाजे पर एक आदमी बंदूक लिये पहरा दे रहा है। अंदर जो पहरेदार थे उनके पास कोई हथियार न था। उनके पास न तो बंदूक थी, न डंडे। हम सीधे अंदर चले गये। जेलखाने के गवर्नर ने हमसे कहा कि हम जो भी कोठरी देखना चाहें देख सकते हैं। मुझे नहीं मालूम कि यह बात खास तौर पर उस वक्त दर्शकों को खुश करने के लिये की गई थी या हमेशा यही किया जाता है ! हमने कुछ कोठरियां देखनी चाहीं और वह हमें दिखाई गईं। ज्यादातर कैदियों की अपनी अलग कोठरियां थीं। हर कोठरी के दरवाजे खुले पड़े थे और कैदी जब चाहते थे उनमें आ-जा सकते थे। बाहर के बरामदों में पहरा था मगर पहरेदार किसी तरह से कैदियों के काम में दबाव नहीं देते थे। कुछ कैदी अपने रेडियो सुन रहे थे जो खुद उन्हीं ने लगाए थे। कुछ गाने वाले थे जो अपने बाजों पर गाने-बजाने की मशक कर रहे थे। कैदियों की अपनी संगीत-मंडली थी और हफ्ते में एक बार उनका गाने-बजाने का प्रोग्राम हुआ करता था। कुछ लोग अपने कमरों में बैठे हुए संगीत बना रहे थे और कुछ लोग बाहर आंगन में या कारखाने में काम कर रहे थे। इन लोगों में हिन्दुस्तान के जेलखानों के कैदियों से ज्यादा इन्सानियत नजर आती थी हिन्दुस्तान के जो कैदी मैंने देखे हैं,उनके चेहरों पर एक किसम का खौफ हर वक्त छाया रहता है और उन्हें जंगली जानवरों की तरह रखा जाता है। हालांकि यह रूसी जेल जो हमने देखी बहुत अच्छी थी फिर भी रूसी जेलखानों के बारे में हमने जो कुछ पढ़ा और सुना है उसकी बुनियाद पर यह नहीं कहा जा सकता कि हर सोवियत जेल ऐसी ही अच्छी होगी।

मास्को में मेरे साथ एक और भी दिलचस्प बात हुई। एक रोज मैं एक जलसे में बैठी थी। मैं ढाका-साड़ी पहने हुए थी और मेरे शरीर पर किसी तरह का गहना नहीं था। उन दिनों जेवर और गहने नापसंद किये जाते थे। एक कम्युनिस्ट लड़की जो कुछ देर से मेरे पास बैठी थी मेरी तरफ झुकी और मेरे माथे पर जो लाल कुंकुम लगा था उसे छूकर कहने लगी, "तुमने यह क्यों लगा रखा है ? मुझे आशा है कि यह कोई मजहबी चिन्ह न होगा,क्योंकि रूस

में हम लोग मजहब पसंद नहीं करते।" मैं यह सुनकर चकरा-सी गई। मैंने इस बात पर पहले कभी सोचा भी न था। मैं कुंकुम हमेशा की आदत के अनुसार लगाती थी। जब मुझसे यह सवाल किया गया तो मैंने सच बात बता दी, पर उस लड़की को विश्वास न हुआ। वह कहने लगी—"अगर यह कोई धार्मिक रसम नहीं है तो फिर यह श्रृङ्गार के तौर पर तुमने लगाया होगा। क्या यह सचमुच श्रृङ्गार के लिये है? हम कम्युनिस्ट इसे पसंद नहीं करते कि अमीरी की तरह श्रृङ्गार की चीजें इस्तैमाल करके अपनी खूबसूरती को बढ़ाने की कोशिश की जाए।" मैंने उससे कहा कि मैं अभी कम्युनिस्ट नहीं हूं, पर हो सकता है कि कभी हो भी जाऊं। फिर भी मुझे रूसी लोग बहुत पसंद आए। उस लड़की को कुछ तो तसल्ली हुई। फिर भी वह मेरी तरफ कुछ इस तरह शक भरी नजरों से देखती रहीं कि गोया मेरा उद्धार मुमकिन नहीं। यह बात सचमुच बड़ी ही अजीब थी कि उन दिनों रूस में अच्छे कपड़े पहनने से आदमी कितना अनोखा मालूम होता था और कैसी शर्म आती थी। मामूली-से-मामूली साड़ी भी वहां बड़ी भारी और बढ़िया मालूम होती थी। फिर भी मुझे इस बात पर आश्चर्य होता था कि क्या आम लोगों की हालत बेहतर बनाने का निश्चय करने के साथ यह भी जरूरी है कि कला और खूबसूरती के तमाम विचार छोड़ दिये जाएं! हो सकता है कि मैं किसी ऐसी औरत से मिली होऊँ जो इन बातों को समझ ही नहीं सकती हो!

एक हफ्ते बाद हम बर्लिन वापस लौटे। मास्को में हम बहुत कम रहे, पर हमारा अनुभव बहुत कीमती था। बहुत से काम वहां अभी शुरुआत की अवस्था में थे। मुझ पर जिस चीज का असर हुआ वह यह थी कि हम जिस किसी से भी मिले उसमें एक नया जोश, नया निश्चय और नई उम्मीद पाई। ऐसा जोश और निश्चय मुसीबतों के पहाड़ पर भी विजय पा सकता है। मेरी हार्दिक आशा थी कि ये लोग आखिर एक ऐसा सुखी समाज पैदा करने में कामयाब होंगे जो सारी दुनिया में मानव-जाति की हालत बेहतर बनाने में मदद दे सकेगा।

पिताजी के लिये नए रूस को और रूस के सामुदायिक काम के खयाल को समझना मुश्किल हुआ। उनकी तबियत और उनका मिज़ाज भिन्न था और उनके लिये यह आसान न था कि ऐसे इन्किलाबी विचारों को आसानी से समझकर उनसे सहमत हो जाएं। फिर भी उन्हें खुशी हुई कि वे रूस गए।

जो कुछ थोड़ा-बहुत उन्होंने वहां देखा वह सचमुच देखने लायक था। वह एक नया देश था जो अभी बन रहा था और हम सब पर उसका बड़ा गहरा असर पड़ा। हम वहां सिर्फ गिनती के कुछ दिन रहे, पर हमने जो कुछ देखा उसे हम कभी न भूलेंगे।

४

"क्या हम उन बीते सुखमय दिनों की याद में आँसू बहावेंगे?
उन दिनों की याद करके लाज से सर झुकावेंगे?
हमारे पूर्वजों ने अपना जो खून बहाया था वह इस धरती में
समा गया है। हे, धरती माता! उन मृत स्पार्टन वीरों में से कुछ
हमें तू वापस देदे। उन तीनसौ में से केवल तीन ही कि जिनसे
हम एक नई थर्मोपली बना सकें।"

—बायरन

मॉस्को से हम बर्लिन फोर्ट और वहां से पेरिस आए। कुछ हफ्तों बाद हम मारसेल्स रवाना हुए और वहां से वापस घर।

हालांकि मैं घर लौटने और माताजी से,जिनसे मैंकभी इतने दिन अलग नहीं रही थी, मिलने के लिए बहुत बेचैन थी फिर भी जिस दिन हम पेरिस छोड़ रहे थे मुझे बड़ा रंज हुआ और मेरी तबियत परेशान रही। मैंने वहां बड़े अच्छे दिन गुजारे थे और उस खूबसूरत और खुशनुमा शहर से मुझे कुछ प्रेम-सा हो गया था। हमारे वहां से चलने का समय बिलकुल करीब आने तक मैं यह महसूस न कर सकी थी कि पेरिस का आकर्षण कितना गहरा और लुभावना है। हमारी गाड़ी जब धीरे-धीरे स्टेशन से बाहर निकलने लगी तो मैं अपने मनमें सोचती थी कि न मालूम फिर पेरिस कब आऊंगी। बहरहाल मेरे मन में यह बात न मालूम क्यों आ गई थी कि या तो मैं पेरिस फिर कभी देख ही न सकूंगी या अगर देखूंगी तो वह बहुत कुछ बदला हुआ होगा। उस समय मेरे मन में इस बात की शंका भी पैदा नहीं हुई कि वही पेरिस जिससे मुझे मुहब्बत है कुछ बरसों बाद नात्सियों के हाथों में होगा और वह उल्लास, संगीत और कला जिसके लिए पेरिस दुनियाभर में मशहूर है, उससे रुखसत हो चुके होंगे।

पिताजी ने फैसला किया था कि वे कुछ महीने और यूरप में रहेंगे। जवाहर, कमला, उनकी बेटी इंदिरा और मैं दिसंबर १६२७ में कोलंबो होते हुए हिंदुस्तान लौटे। उस साल सर्दियों में कांग्रेस मद्रास में हो रही थी। उसमें उपस्थित होने के लिये हम मद्रास में उतर पड़े। दस दिन मद्रास में रह कर हम इलाहाबाद लौट आये।

घरपर फिर एक बार उसी वायुमंडल में आकर जो मुझे दिल से भाता था मुझे कुछ अजीब बेचैनी सी होने लगी। यूरप से वापसी के बाद शुरू के कुछ महीने मैं सुख और इतमीनान से महरूम रही। यूरप में जीवन बड़ाही व्यस्त सा रहा था। घर पर मैं कुछ बेकारी सी महसूस करती थी और मेरी समझ में न आता था कि बहुत कुछ पढ़ने के अलावा अपना समय किस तरह बिताऊं। मेरा जी घबराने लगता था और मैं अपने पुराने तरीके के जीवन को फिर किसी तरह शुरू नहीं कर पाती थी। इन्हीं दिनों मैंने सुना कि अलाहाबाद में मान्टेसरी पद्धति का एक स्कूल खुलने वाला है। मुझे छोटे बच्चों से हमेशा बड़ी दिलचस्पी रही थी और मान्टेसरी पद्धति से भी, जिसका मुझे अच्छा खासा ज्ञान था। इसलिए मैंने फैसला किया कि इस स्कूल में अपने लिए जगह हासिल करूँ। जगह मिलना तो आसान था, पर मैं यह भूल गई थी कि इस बारे में मुझे अपने पिताजी का सामना करना होगा। इन्हीं दिनों मेरी बहन अपने पति के साथ फिर यूरप गई। अपनी छोटी लड़कियां चंद्रलेखा और नयनतारा को माताजी के पास छोड़ गईं। उस जमाने में माताजी बहुत बीमार थीं। इसलिए उन बच्चियों की देखभाल मुझी को करनी पड़ती थी। मुझे उनसे बड़ी मुहब्बत थी, फिर भी उनकी देखरेख का काम कुछ आसान न था।

पिताजी अभी-अभी यूरप से लौटे थे और एक दिन जब वह जरा खुशी में थे तो मैंने धीरे से उस स्कूल में काम करने की बात छेड़ी। मैंने उनसे कहा कि मेरी तबियत अकुलाती है और मैं कोई ऐसा काम चाहती हूं जिसमें रोजाना मेरे पांच घंटे खर्च हों और काम ऐसा हो जो मुझे पसंद भी हो। पिताजी इस विचार से सहमत हुए और पूछने लगे कि क्या तुम्हारे खयाल में कोई ऐसा काम है ? उन्होंने कहा कि मैं उनकी या जवाहर की सेक्रेटरी का काम करूं। यह बात अगर होती तो बड़ी ही अच्छी होती, पर मैं जानती थी कि यह हो नहीं सकेगा। इस काम का वक्त मुकर्रर नहीं होगा और काम का ठीक से कोई ढंग भी न होगा। मैंने उनसे कहा कि मेरे मन में यह बात न थी। मैंने उनसे स्कूल का

जिक्र किया और कहा कि मैं उसमें पढ़ाने का काम करना चाहती हूं। पहले तो पिताजी को मेरी बात का विश्वास ही न आया, पर जब उन्होंने देखा कि मैं सचमुच यही चाहती हूं तो उन्होंने उस पर सोचने से भी साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं छोटे बच्चों के साथ रोजाना इतना वक्त गुजार कर खुश न रह सकूंगी। अगर मुझे तजुरबा ही करना हो तो रोज एक-दो घंटे वहां जाकर वक्त गुजार सकती हूं। मैंने उनसे कहा कि आप मेरा मतलब नहीं समझे और फिर बड़ी हिम्मत से काम लेकर (और अब मैं जो कुछ कहने वाली थी उसे पिताजी से कहने के लिए सचमुच हिम्मत की ही जरूरत थी) मैंने चुपके से उनसे कहा कि मैंने इस काम के लिए दरख्वास्त दे दी है और मेरी दरख्वास्त मंजूर भी हो गई है। मैं अब सिर्फ उनकी इजाजत चाहती हूं। मैंने उनसे यह भी कहा कि मैं मुफ्त काम नहीं करूंगी। मैं अपनी बात पूरी तरह खतम भी नहीं कर पाई थी कि पिताजी मुझ पर बरस पड़े। मैं जानती थी कि यही होगा पिताजी को इस पर एतराज नहीं था कि मैं काम करूं, पर वह चाहते थे कि मैं काम मुफ्त करूं। हमने इस बारे में बड़ी लम्बी बहस की, पर मैं अपनी बात पर अड़ी रही और पिताजी भी नहीं झुके। गर्जेकि मेरे श्रमजीवी लड़की बनने के सपने पर पानी फिर गया। मुझे पिताजी से इतना अधिक प्रेम था कि मैं उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम करही नहीं सकती थी। पर सच यह है कि जिंदगी में पहली बार उनकी सत्ता मुझे बहुत बुरी मालूम हुई। मैंने सब्र किया और ऐसे प्रयत्नों में लगी रही कि कोई ऐसा रास्ता निकाला जाए, जिससे पिताजी के इस बारे में विचार बदलें। पर यह कोई आसान काम न था। मैंने माताजी की मदद लेने की कोशिश की। उन्होंने भी इससे इन्कार किया। उन्होंने इसके जो कारण बताए वे और थे। वह चाहती थीं कि मैं शादी करके घर बसाऊं। मैंने अगर नौकरी कर ली तो मेरी शादी करना और भी मुश्किल हो जायगा। मैं जवाहर के पास गई और मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि वह सिर्फ इससे सहमत ही न हुए कि मैं यह काम करूं, बल्कि उसका महनताना भी जरूर लूं। उन्होंने वायदा किया कि वह पिताजी को इस बातपर राजी कर लेंगे कि वे मुझे इजाजत दें। जवाहर को फैसले से बड़ी खुशी हुई। इससे मेरे दिलका बोझ बहुत कुछ कम हुआ और मैंने इस मामले को जवाहर पर छोड़ दिया। पिताजी में और जवाहर में इस सवाल पर बड़ी बहसें रहीं, पर अंत में पिताजी ने इजाजत दे दी और मैं उस

स्कूल में पढ़ाने लगी। मैंने यह काम कोई एक डेढ़ साल किया और इससे मुझे बड़ा संतोष हुआ। बादमें मैंने स्तीफा दे दिया; क्योंकि मैं राजनैतिक आंदोलन में भाग लेना चाहती थी और दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते थे। राजनैतिक काम पूरे वक्त का काम है। सत्याग्रह आंदोलन शुरू हो गया था और मैं अपना पूरा वक्त उसी में देना चाहती थी।

१९२८ में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ और उसके सदर पिताजी बने। इलाहाबाद से हम लोग एक बड़े दल के साथ रेल में लगे हुए खास तौर पर अलहदा डिब्बों में बैठकर कलकत्ता पहुंचे। कलकत्ते में हम कांग्रेस के मेहमान की हैसियत से एक शानदार मकान में ठहराये गए, जिसमें पताकाएं, राष्ट्रीय झंडे और फूल पत्तों की सजावट राष्ट्रपति के सम्मान में की गई थी। दरवाजे के बाहर छोटे लड़के वर्दी पहन कर घोड़े पर चढ़े हुए पहरा दिया करते थे। वे बड़े चुस्त और मेहरबान थे। जब कभी पिताजी घर के बाहर मोटर में निकलते तब सब से पहले ये सधे और तने हुए घुड़सवार उन्हें बड़ी शानोशौकत के साथ ले जाते और ऐसा नज़र आता था कि ये घुड़सवार अपनी अहमियत को अच्छी तरह समझ रहे हैं। इसके बाद स्वयंसेवकों की वर्दी में सुभाष बोस रास्ता दिखाने वाली गाड़ी में सब के साथ रहते और इन सबके बाद पिताजी की मोटर होती। यह नज़ारा देखने लायक होता। कुछ दिनों बाद इस ठाठ-बाट से पिताजी कुछ ऊब से गए और उन्होंने अधिकारियों से कहा कि वे नहीं समझते कि उनकी ज़िंदगी खतरे में है इसलिए वे उन्हें बिना किसी पहरे के आने जाने दिया करें।

इसी अधिवेशन में पिताजी और जवाहर के बीच का मतभेद सामने आया। अक्सर आपस में उन लोगों में बहस-मुबाहसा हुआ करता था और कभी भी वे एकमत न हो पाते थे। पर मतभेद इस हद तक कभी कभी नहीं पहुंचा था। पिताजी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि औपनिवेशिक स्वराज्य का समर्थन सर्वदल सम्मेलन करे क्योंकि यह सम्मेलन पूर्ण स्वाधीनता की मांग का समर्थन नहीं करना चाहता था। जवाहर इस समझौते के लिए राजी नहीं थे। पिता और पुत्र का यह मानसिक संघर्ष चलता रहा और घर और बाहर के वातावरण में दिन प्रति दिन तनाव बढ़ता ही गया। खुले अधिवेशन में औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में प्रस्ताव पास हो गया मगर जवाहर ने उसका विरोध किया था।

अगले साल हिंदुस्तान के कोने-कोने में बहुत जागृति नज़र आई। जनता में राजनैतिक चेतना दिन पर दिन बढ़ती गई और ऐसा लगता था कि लोग एक नये उत्साह, साहस और निश्चय के साथ आगे बढ़ रहे हैं। चारों ओर एक हरकत दिखाई देने लगी जो धीरे धीरे बढ़ती जा रही थी। ऐसा मालूम होता था कि कोई बहुत बड़ी बात होने वाली है—कोई ऐसी बात जिसे दुनिया की कोई ताकत रोक न सकेगी और यह बात खासकर युक्त प्रान्त के किसानों में ज्यादा नज़र आती थी, जिनमें उन दिनों बड़ी भारी बेचैनी फैली हुई थी। नौजवानों का आंदोलन भी तेजी से बढ़ रहा था और बहुत थोड़ी मुद्दत में हिंदुस्तान भर में नौजवानों की सभाएं कायम हो गई थीं। नौजवान सभाएं करते और प्रतिज्ञा करते कि हिंदुस्तान की आजादी के लिए काम करेंगे। इन सभाओं में काम करने वाले जवान लड़के और लड़कियां देहातों में जाते और कुछ मुद्दत तक वहां के लोगों में रहकर काम करते। एक नौजवान बंगाली विद्यार्थी के साथ मैं इलाहाबाद की यूथ लीग की जॉइंट सेक्रेटरी थी और जवाहर हमारे साथ थे। मेरे बंगाली साथी एक अच्छे बहादुर नौजवान थे, जिनमें बड़ा जोश और उत्साह था। पर दो साल के बाद वे कांग्रेस के प्रति वफादारी की अपनी प्रतिज्ञा भूल गए और अपने विचार बदल कर उन्होंने अपने कार्य का क्षेत्र भी बदल डाला। फिर पता भी न चला कि वे कहां हैं। उन दिनों के मेरे बहुत से साथी अलग-अलग दलों में चले गए हैं। उनमें से कई एक कम्युनिस्ट बन गए हैं। अब अगर कभी उनसे मेरी मुलाकात होती है तो ऐसा मालूम होता है कि अपने उन पुराने साथियों से नहीं मिल रही हूं, जिनके साथ इतने दिनों काम किया था, एक साथ लाठियां खाई थीं और दूसरी तकलीफें उठाई थीं, बल्कि ऐसे लोगों से मिल रही हूं जिनसे गोया कभी जान-पहचान भी न थी।

दूसरे साल जवाहर कांग्रेस के सदर चुने गए जिसका अधिवेशन लाहौर में हुआ। कांग्रेस के पूरे इतिहास में इससे पहले कभी यह बात नहीं हुई थी कि बाप के बाद बेटे को सदारत मिली हो और शायद दुनिया भर में कांग्रेस जैसी बड़ी संस्थाओं के इतिहास में भी ऐसी बात शायद ही हुई हो। पिता के लिए यह मौका बड़ा ही भारी और शानदार था। बड़ी खुशी और गर्व से उन्होंने कांग्रेस की सदारत जवाहर को सौंपी, जो न सिर्फ उनकी धन-दौलत के उत्तराधिकारी थे; बल्कि राजनैतिक दुनिया में कांग्रेस की गद्दी पर उनकी जगह ले रहे

थे और यह सब में बड़ा आदर था जो हमारा देश अपने किसी पुत्र को दे सकता था।

कांग्रेस का यह अधिवेशन कई कारणों से स्मरणीय रहा। दिसंबर की एक सुबह को जब कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, हजारों बल्कि लाखों आदमी रावी नदी के किनारे जमा हुए और उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रताकी प्रतिज्ञा की। उस प्रस्ताव के साथ हमारे देश के इतिहास में एक नया जमाना शुरू हुआ। उस मौके पर मर्द, औरतें और बच्चे वहां इकट्ठे हुए थे। उन्हें सर्दी की जरा भी परवा न थी। साफ नीले आकाश के नीचे खड़े होकर उन्होंने बड़े भक्ति-भाव से अपने देश की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने का निश्चय किया। जवाहर ने यह प्रस्ताव पढ़ा और उस पूरे जन-समूह ने उसको उनके साथ-साथ दोहराया।

इस तरह हमारे देश ने आजादी हासिल करने का निश्चय कर लिया और १९२९ की उन सर्दियों से अबतक उसके कुछ बच्चों ने भले उसे छोड़ दिया हो, पर हजारों बल्कि लाखों हिन्दुस्तानी अपने उस फैसले पर मजबूती से जमे हुए हैं और हर तरह की मुसीबतें उठाकर स्वराज्य हासिल करने का प्रयत्न कर रहे हैं जिसके बिना हिन्दुस्तान को चैन नहीं मिल सकता। कांग्रेस का अधिवेशन खतम होते ही हम लोग इलाहाबाद लौटे ; पर भविष्य कुछ रोशन दिखाई नहीं देता था। यह तो साफ जाहिर था कि मुसीबतें परेशानियां और तकलीफें हमारे सामने हैं। पर फिर भी इन बातों से हमारे दिल बैठते नहीं थे। बल्कि हम अपने अंदर एक प्रकार का जोश और उत्साह पाते थे जो हमें इस बात के लिए तैयार करता था कि बिना झिझक के आगे बढ़ें और जो कुछ हमारी किस्मत में हो उसे बहादुरी से सहें।

कांग्रेस के अधिवेशन से कुछ महीने पहले पिताजी ने हमारा पुराना मकान देश को दान दे दिया। एक मुद्दत से उनका यह विचार था और उसे पूरा करते समय उन्हें बड़ी खुशी हुई। इसके बाद हम उस नए घर में रहने गए जो उन्होंने जवाहर और उनके खानदान के लिए बनवाया था। यह नया मकान बड़ाही सुन्दर था और पिताजी को उसपर बड़ा गर्व था। जब हम लोग यूरप में थे तो इस नए मकान के लिए बिजली की और दूसरी चीजें खरीदने में मैंने पिताजी के साथ घंटों सफर किया थे। पिताजी ऐसे काम से कभी थकते नहीं थे और वे इस काम में जो रस लेते थे उसे देखने में भी बड़ा मजा आता था।

इस नए मकान का नाम भी आनंद भवन रखा गया; क्योंकि पिताजी

कपड़े की दूकानों पर धरना देने, स्वयंसेवकों की कवायद, जलूस निकालने और ऐसे ही और कामों में जो कांग्रेस के नेता मुझे सौंपते थे मैं अपना वक्त बिताने लगी। पिताजी को यह बात पसंद न थी कि कमला, मेरी बहन स्वरूप और मैं दिन भर झुलसा देनेवाली गर्मी में मारे मारे फिरें, पर उन्होंने इस बारे में कभी हमसे सख्ती से बहस नहीं की और न हमें इस बातपर मजबूर किया कि हम जो काम कर रहे थे उसे छोड़ दें। उनकी सेहत ठीक नहीं थी और वह चाहते थे कि उनके बच्चे उनके पास रहें। जवाहर जेल में थे और पिताजी नहीं चाहते थे कि हममें से कोई जेल जाएं। सेहत की खराबी के बावजूद वे आंदोलन चलाने के काम को रोक नहीं सकते थे; पर आराम के बिना सुबह से लेकर शामतक काम करते रहने का बोझ ऐसा नहीं था जो वे उठा सकते। डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी कि वे आराम करें। पर हुकूमत ने डाक्टरों से भी पहले ३० जून १९३० को उन्हें गिरफ्तार कर लिया। नतीजा यह हुआ कि वे पहाड़ पर जाने की बजाय गंगा के उस पार जाकर नैनी जेल में दाखिल हो गए।

पिताजी ने जेल में जो दस हफ्ते गुजारे उनमें उनकी तबियत खराब होती ही गई। जब उनकी हालत इतनी खराब हो गई कि वह अस्थिपंजर रह गए तब जाकर ब्रिटिश हुकूमत को उन्हें छोड़ने का खयाल आया। उनके बाहर आते ही हम सब मसूरी गए जहां पहाड़ी हवा और घर के आराम से उनकी हालत कुछ संभली और उनके कमजोर और थके हुए जिस्म में कुछ ताकत आई। जवाहर भी इन्हीं दिनों छोड़ दिए गए थे। वे इलाहाबाद ही रहते और कभी कभी हमसे मिलने मसूरी आते थे। उनके आने से पिताजी को बड़ी मदद और राहत मिलती थी।

पर जवाहर ज्यादा दिन आजाद नहीं रह सकते थे और बहुत जल्द उनके फिर एक बार पकड़े जाने की अफवाहें फैलने लगीं। पिताजी ने फैसला किया कि जिस-कदर जल्द मुमकिन हो इलाहाबाद वापस जाएं। उन्होंने डाक्टरों का मशविरा भी नहीं माना। १८ अक्तूबर को हम सब मसूरी से रवाना हुए। जवाहर और कमला हमसे मिलने स्टेशन आए, पर गाड़ी देर में आ रही थी इसलिए जवाहर ज्यादा ठहर नहीं सके। उन्हें एक जलसे में जाना था। हजारों किसान आसपास के देहातों से इस सभा के लिए आए थे। सभा के बाद जब जवाहर और कमला घर आ रहे थे तो उनकी गाड़ी

हमारे घर के करीब ही रोक दी गई और जवाहर को गिरफ्तार करके फिर एक बार नैनी जेल भेज दिया गया। जवाहर अपने उस बीमार बाप से, जो उनकी वापसी की राह देख रहे थे, मिल भी न सके।

जवाहर को गिरफ्तारी अचानक नहीं थी; फिर भी पिताजी को इससे बड़ा धक्का पहुँचा। उन्हें आशा थी कि वह जवाहर से मिलकर राजनैतिक और खानदान के बारेमें भी कुछ बातें कर सकेंगे। पर ऐसा न हो सका। पिताजी कुछ देर तो रंज के मारे अपना सिर झुकाकर बैठे रहे, पर उनका शेरों जैसा बहादुर दिल ज्यादा देर किसी कमजोरी को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उन्होंने अपना सिर उठाकर एलान किया कि मैं अब काम शुरू करूंगा और डाक्टर मुझे बीमार समझकर काम से न रोकें। यह बात बड़ी ही अजीब थी कि केवल अपनी आत्म-शक्ति से काम लेकर उन्होंने उस खौफनाक बीमारी को कैसे दबा दिया जो उन पर कब्जा कर चुकी थी। यह सब थोड़े समय के लिए ही था। बिना किसी झिझक के पिताजी ने काम शुरू कर दिया और कानून भंग के आंदोलन में फिर एक बार नई जान डाल दी। धीरे-धीरे उनकी हालत और खराब होती गई। जवाहर ने उन्हें इस बात पर राजी किया कि वे आराम करें और समुद्र-यात्रा पर जाएं। मैं उनके साथ जानेवाली थी, पर जब हम कलकत्ते पहुंचे तो उनकी हालत ज्यादा खराब हो गई और सफर का इरादा छोड़ देना पड़ा। मैं कुछ हफ्ते पिताजी के साथ कलकत्ते में रही। ये कुछ हफ्ते बड़े ही दिल तोड़ने वाले थे। पिताजी को यह पता चल चुका था कि अब वे ठीक न होंगे और अब कोई इलाज काम नहीं दे सकता। फिर भी वे मायूस नहीं थे, बल्कि अपनी बीमारी का मजाक उड़ाते थे, पर अपने दिल में वे जानते थे कि अब मामला कुछ ही महीनों का है। उनका साहस आखिर वक्त तक कमाल का था।

एक रोज यह खबर आई कि कमला गिरफ्तार हो गईं। इससे पिताजी को बड़ी तकलीफ हुई;क्योंकि कमला की सेहत ठीक न थी। अब पिताजी चाहते थे कि उसी वक्त इलाहाबाद चले जाएं। पर डाक्टरों ने उन्हें कुछ दिन और वहीं रहने पर राजी किया। उन्होंने मुझे फौरन इलाहाबाद भेजा और कुछ दिनों बाद खानदान के और लोगों के साथ खुद भी चले आए। मेरी कलकत्ते से वापसी के बाद एक अजीब घटना हुई। मेरे बहुत से दोस्त और साथी रोज गिरफ्तार हो रहे थे और उनके मुकदमे जेल ही में चलते थे। इसमें

से जो लोग इस मौके पर हाजिर रहना चाहते थे उन्हें डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से इजाजत लेनी पड़ती थी। यह डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट बड़े ही तकलीफ देनेवाले और धाधंलीबाज आदमी थे। एक रोज मैं उनके पास इजाजत लेने गई; क्योंकि उस दिन यूथ लीग की एक पूरी टोली पर मुकदमा चलने वाला था। शायद मुझे देखते ही उन्हें गुस्सा आ गया। कहने लगे, "क्या तुम फिर आ गई ? तुम लोग अपना काम क्यों नहीं करते और मुझे अपना काम क्यों नहीं करने देते ?" मैंने खामोशी से जवाब दिया कि मैं यूथ लीग की सेक्रेटरी हूं। इसलिए इन लोगों के मुकदमे के वक्त हाजिर रहना मेरा काम है। पहले तो उन्होंने इजाजत देने से इन्कार किया। मैंने उनसे कहा कि जब तक आप इजाजत न देंगे मैं ठहरी रहूंगी, चाहे मुझे दिन भर ही क्यों न ठहरना पड़े। इस जवाब ने उन्हें लाजवाब कर दिया। उन्होंने एक परचे पर इजाजत लिख दी और वह परचा मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, "अब खुदा के लिए यहां न आना। तुम लोग मुझे पागल बना दोगे।"

मैं मुकदमा सुनने गई। मुझे जरा भी खयाल न था कि हमारे दोस्त डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब मुझे धोखा देंगे, पर उन्होंने धोखा दिया। जब मैं अपने दोस्तों से रुखसत होने लगी और अपनी एक बहन के साथ बाहर जाने लगी तो हम दोनों को एक हफ्ता पहले किसी गैर कानूनी जमाअत में शामिल होने के इलजाम में गिरफ्तारी का वारंट बताकर पकड़ लिया गया। हम पहले तो कुछ झिझके, पर इसका कुछ भी इलाज न था। मेरी चचेरी बहन श्यामकुमारी नेहरू सियासी कामों में सक्रिय भाग नहीं लेती थीं। वह वकील थीं और केवल एक वकील की हैसियत से मुकदमा देखने आई थीं। पर उन दिनों किसी का नेहरू खानदान से होना ही उसकी गिरफ्तारी के लिए काफी था। हमें एक महीने की जेल या १००) रुपया जुर्माने की सजा दी गई।

मुझे सिर्फ एक बात की वजह से दुख था। पिताजी बहुत बीमार थे और उन्होंने बार-बार मुझसे कहा था कि मैं उस वक्त जेल न जाऊं। मैं नहीं चाहती थी कि वे यह समझें कि मैंने जान-बूझकर उनकी मर्जी के खिलाफ ऐसा किया है, पर मैं यह उन्हें समझा भी किस तरह सकती थी। जाड़े का मौसम था। जेल में हमारी कोठरी बड़ी ही ठंडी और गंदी थी और उसमें कीड़े-मकोड़े चारों तरफ फिर रहे थे। श्यामकुमारी ने और मैंने थोड़ी देर एक दूसरे का दिल बहलाने की कोशिश की और फिर हम खामोश हो रहे।

मुझे पिताजी के खयाल से बड़ा दुख हो रहा था और मैं यही आशा करती थी कि सही बात वे समझेंगे। आखिर मैं सो गई और कई घंटों के बाद जंजीरों की झंकार और दरवाजे खुलने की आवाज से मेरी आंख खुली। वह आवाजें और रोशनी करीब आती गईं और हमने देखा कि वे हमारी तरफ आ रही हैं। हमारी कोठरी का दरवाजा खुला और जेल की मेट्रन, जेलर और दो वार्डर अंदर दाखिल हुए। मेट्रन ने हमसे कहा कि हम छोड़ दिये गए हैं; क्योंकि हमारा जुर्माना अदा कर दिया गया है। मैं इसपर मुश्किल से विश्वास कर सकी, क्योंकि मैं जानती थी कि पिता जी किसी हालत में भी जुर्माना न देंगे। बहरहाल हमें छोड़ दिया गया था। इसलिए हमने अपने बिस्तर बांधे और बाहर निकले। दफ्तर में हमने देखा कि हमारे एक वकील दोस्त हमें घर ले जाने के लिए बैठे हुए हैं। हमने उनसे पूछा कि हमारा जुर्माना किसने अदा किया, पर उन्होंने जवाब दिया कि मैं बता नहीं सकता। जुर्माना मेरे पिताजी ने या श्यामकुमारी के पिताजी ने नहीं दिया था, बल्कि एक दोस्त ने दिया था जो अपना नाम जाहिर नहीं करना चाहते थे। उस वक्त आधी रात गुजर चुकी थी और हमने कुल मिलाकर कोई बारह घंटे जेल में गुजारे थे।

मैं घर पहुंची तो देखा कि हर तरफ अंधेरा है, क्योंकि किसी को भी मेरे छूटने की खबर न थी। सिर्फ मेरी माताजी जाग रही थीं और बैठी रामायण पढ़ रही थीं। दूसरे दिन सुबह मैं पिताजी के कमरे में गई। मुझे देखकर उन्हें माताजी से भी ज्यादा आश्चर्य हुआ। खुशी भी हुई, पर साथ ही इस बात से तकलीफ भी कि मेरा जुर्माना अदा किया गया था। दूसरे दिन सुबह मैंने अखबारों में उनका बयान पढ़ा जो उन्होंने पहले दिन मेरी गिरफ्तारी पर दिया था। दोस्तों ने उनसे दर्याफ्त किया था कि अगर आप जुर्माना अदा करना नहीं चाहते तो क्या हम जुर्माना दे दें। पिताजी इस पर बहुत बिगड़े और उन्होंने कहा कि यह मामला उसूल का है और अगर किसी ने यह जुर्माना अदा किया तो मुझे बड़ी तकलीफ होगी और मैं उसे अपने साथ दोस्ती नहीं, बल्कि दुश्मनी समझूंगा। फिर भी पिताजी उस समय बहुत बीमार थे, इसलिए हमारे एक दोस्त ने यह फैसला किया कि वे इस बदनामी को अपने सिर लेंगे और कई साल गुजर जाने के बाद हमें पता चला कि यह जुर्माना किसने दिया था। जेल से बाहर आने के बाद मैं यूथ लीग की तरफ से करीब के देहातों के संक्षिप्त दौरे पर गई और जब वापस लौटी तो मुझे जवाहर का एक छोटा-सा

खत मिला जो पिताजी के नाम खत के साथ आया था। उसमें जवाहर ने लिखा था, "मैं सुनता हूं कि तुम्हें जगह-जगह मानपत्र मिल रहे हैं। आखिर यह किन बड़े कामों के लिए दिये जा रहे हैं? जेल में कुछ घंटे गुजारने पर तो मान-पत्र नहीं होने चाहिएं? बहर हाल इससे कहीं तुम्हारा दिमाग चढ़ न जाए! लेकिन शायद हिम्मत न होने से तो चढ़ा हुआ दिमाग ही अच्छा है।"

पिताजी की सेहत दिन पर दिन खराब होती गई, हालांकि वे यह समझते रहे कि वे अच्छे हो रहे हैं। उनका विचार मनमें आते ही अच्छी सेहत का खयाल हमारे दिलों में आता था और उन्हें झुका हुआ, कमजोर, बीमार और उनके चेहरे की सूजन देखकर हमें ऐसी तकलीफ होती थी जो बर्दाश्त नहीं की जा सकती थी। आखिर वे बिस्तर पर ही लेट गए। फिर भी मैं यह न समझी कि वे मृत्यु के इतने करीब पहुंच चुके हैं। यह बात किसी तरह मेरी समझ ही में नहीं आती थी कि मृत्यु उन्हें हम से जुदा कर सकती है। उन्होंने हमेशा मुसीबतों का मुकाबला किया था और उन पर फतह पाई थी और मुझे पूरा विश्वास था कि वह फिर एक बार फतह पाएंगे, भले ही उन्हें मौत ही से क्यों न मुकाबला करना पड़े। पर यह बात होने वाली न थी।

५

महापुरुष ऊंचे शैल शिखरों के समान होते हैं। हवा उन पर जोर से प्रहार करती है, मेघ उनको ढक देता है; परंतु वहीं हम अधिक खुले तौर से व जोर से सांस ले सकते हैं।

—रोमां रोलां

२६ जनवरी १६३१ को स्वतंत्रता दिवस के मौके पर जवाहर और मेरे बहनोई रणजीत को बिना शर्त छोड़ दिया गया; क्योंकि पिताजी की हालत बहुत नाजुक हो गई थी। इस बात को पूरे बारह साल बीत गए, फिर भी उस दिन की याद मेरे मन में ताजा है और मुझे दुःख दे रही है। जवाहर आनंद-भवन में आए और सीधे पिताजी के कमरे में चले गए। कमरे की दहलीज पर वह एक पल भर के लिए ठिठके, इसलिए कि पिताजी का बिलकुल बदला हुआ रूप और सूजा हुआ चेहरा देखकर उन्हें सख्त चोट पहुंची। पिताजी से गले मिलने आगे बढ़े और पिता पुत्र बिना बात किए एक दूसरे से लिपट गये। जवाहर जब पिताजी की बाहों से अलग हुए और बिस्तर पर बैठ गए तो उनकी आंखों में आंसू छलक रहे थे, जिन्हें दबाने की वह नाकाम कोशिश कर रहे थे। मैं नहीं समझती कि जो चमक जवाहर से मिलने पर पिताजी की आंखों में आगई थी या जो खुशी उनके चेहरे पर दिखाई दे रही थी, उसे मैं कभी भी न भूल सकूंगी। और न मैं कभी उस दर्द और तकलीफको ही भूलूंगी जो अपने स्नेह-भाजन पिता के करीब जाते हुए जवाहर की आंखों में दिखाई दे रही थी। उस पिता के करीब जाते हुए जो हममें से हर एक के लिए केवल पिता ही नहीं, बल्कि सबसे अच्छे दोस्त भी थे।

पिताजी की बीमारी के वे महीने केवल तकलीफ और चिंता के दिन ही न थे, बल्कि मेरे लिए जिंदगी में पहली बार दुःख का तजुरबा भी वही था। पिताजी की हालत दिन पर दिन खराब होती जाती थी, फिर भी मुझे किसी

तरह इस बात का विश्वास ही नहीं आता था कि उनकी मौत इतनी करीब है। उस वक्त तक मौत हमारे छोटे से खानदान से दूर रही थी और मुझे तो उसका जरा भी अनुभव न था।

जिस दिन जवाहर रिहा हुए उसी दिन हिंदुस्तान भर में और भी बहुत से लोग छूटे। गांधीजी सबसे पहले छूटने वाले लोगों में थे और पिताजी की बीमारी का हाल सुनकर वे पूना की जेल से सीधे इलाहाबाद आ गए। पिताजी उन्हें देखकर बहुत खुश हुए और ऐसा मालूम हुआ कि गांधीजी की मौजूदगी से पिताजी के मन को शांति मिल रही है। बहुत से और दोस्त भी, जो उन्हीं दिनों छूटे थे, आनंद-भवन पिताजी को देखने पहुंचे हुए थे, और शायद इसलिए भी कि उन्हें आखरी बार श्रद्धांजलि अर्पित करें। हमारा घर मेहमानों से भरा हुआ था लेकिन हर तरफ जहां पहले हंसी-खुशी का दौर रहता; था अब खामोशी और गम की छाया छाई हुई थी। लोग घर में चुपके-चुपके फिरते रहते थे। कुछ लोग तो काम में लगे रहते और कुछ बिना मतलब इधर-उधर घूमते रहते थे। सारे वातावरण में तनाव और दुःख था।

हम सब यानी माताजी, जवाहर, कमला, स्वरूप और मैं हर वक्त पिताजी के आस-पास रहते थे। रात को हम बारी-बारी उनके पास सोते थे ताकि उन्हें जरूरत हो तो हम पास ही मौजूद रहें। बहुत से मौकों पर जब मैं उनके पास होती थी और वह पानी पीना चाहते थे तो वह इस तरह नर्मी से पानी मांगते थे जिससे पता चलता था कि वह मुझे इसको भी तकलीफ देना नहीं चाहते। मुझे इस बात से बड़ा दुःख होता था क्योंकि वह औरों का इतना खयाल रखते थे कि मौत के मुंह में होते हुए भी उन्हें अपने आराम का नहीं; बल्कि दूसरों का खयाल रहता था। दिन पर दिन हम देख रहे थे कि उनकी शक्ति घटती जा रही है और हम इस बात को रोकने के लिए कुछ नहीं कर सकते थे। आखिर दम तक पिताजी ने अपने हंस-मुख मिजाज को नहीं खोया। अक्सर गांधीजी से हंसी-मजाक की बातें किया करते थे या माताजी को यह कह कर छेड़ते कि मैं तुमसे पहले दूसरी दुनिया में जा रहा हूं और वहां तुम्हारा इंतजार करूंगा। पर वे कभी भी इस बात से परेशान नहीं दिखाई दिये, जिसके बारे में वह जानते थे कि होकर ही रहेगी। पिताजी अपनी सारी उम्र लड़ाइयां लड़ते रहे थे और ज्यादातर उनकी जीत ही हुई थी। वे मौत के सामने भी बिना लड़े हथियार डालने वाले नहीं थे और कई दिन और

कई रातें वे अपनी क्षीण शक्ति से उसका मुकाबला करते रहे और यह कोशिश करते रहे कि अभी कुछ साल और जीयें, इसलिए नहीं कि दुनिया के और सुख भोगें; बल्कि इसलिए कि उस काम का जिसके लिए उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया था कुछ अच्छा नतीजा निकलते देखें। पर उनकी सारी हिम्मत और बहादुरी कुछ काम न आ सकी और आखिर मौत ने फतह हासिल कर ही ली।

एक दिन बापू से बातें करते हुए पिताजी ने यह इच्छा जाहिर की कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक स्वराज्य भवन में की जाए; क्योंकि ज्यादा-तर सदस्य वहां मौजूद ही थे। उनके आखरी शब्द थे—"हिंदुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य भवन में कीजिए। यह फैसला मेरी मौजूदगी में कीजिए और अपनी मातृभूमि की किस्मत के आखरी सम्मानपूर्ण फैसले में मुझे जब मरना ही है तो शरीक होने दीजियेगा। आजाद हिंद की गोद में मरने दीजिए। मुझे अपनी आखरी नींद एक गुलाम देश में नहीं; बल्कि एक आजाद देश में सोने दीजिये।"

जब पिताजी की हालत और ज्यादा खराब हुई तो डाक्टरों ने सोचा कि अच्छी तरह एक्सरे लेने के लिए उन्हें लखनऊ ले जाएं, पर पिताजी जाना नहीं चाहते थे। वे इस बात को डाक्टरों से भी अच्छी तरह जानते थे कि उनका आखरी वक्त आ चुका है और वे उसी आनन्द भवन में मरना चाहते थे जिसे उन्होंने बड़े परिश्रम से बनवाया था और जिसे वह बहुत पसंद करते थे। पर डाक्टरों ने अपनी बात पर जोर दिया और गांधीजी भी उनसे सहमत हो गए। पिताजी इतने कमजोर हो गए थे कि वह अब जोर से विरोध भी नहीं कर सकते थे। ४ फर्वरी १९३१ को उन्हें मोटर से लखनऊ ले जाया गया। इतने लंबे सफर के बाद भी दूसरे दिन उनकी हालत कुछ ठीक मालूम हुई, पर शाम होते-होते हालत फिर बिगड़ गई। वह साँस भी नहीं ले सकते थे और उन्हें आक्सिजन दिया जा रहा था। अतएव वे होश में थे और उन्हें इस बात का पता था कि क्या हो रहा है। शाम को पांच बजे के करीब डॉक्टर विधानचंद्र राय ने जो डॉक्टर अन्सारी और डॉक्टर जीवराज मेहता के साथ पिताजी का इलाज कर रहे थे मुझे पिताजी के कमरे में बुलाया और कहा कि उनके पीछे बैठकर उन्हें सहारा दूं। मैंने वैसा ही किया और डाक्टर हमें छोड़ कर कमरे से निकल गए। मुझे कभी इस बात का पता नहीं चला कि पिताजी ने मुझे बुला भेजा

था या डाक्टरों ने अपनी तरफ से ही ऐसा किया था। कुछ मिनट बाद मुझे ऐसा मालूम हुआ कि पिताजी कोई चीज ढूंढ़ रहे हैं। मैं आगे की तरफ झुकी और उनसे पूछा कि क्या चाहते हैं। वे मुश्किल से ही बात कर सकते थे। पर उन्होंने बड़ी कोशिश से मेरा मुंह अपने सूखे हुए हाथ में ले लिया और अपने उन होठों से, जो इतने सूज गए थे कि पहचाने भी नहीं जाते थे, उन्होंने मेरे चेहरे को खूब चूमा। कुछ ऐसा मालूम हो रहा था कि वे मुझसे अंतिम बिदा ले रहे हैं। मैंने अपने दांत भींच लिए और बेहद कोशिश की कि मेरे आंसू, जिनसे मेरी आंखें डबडबा रही थीं, उनके हाथों पर न गिरें और न मेरे मुंह से चीख निकले। जब मैं अपने आप पर काबू न पा सकी तो मैंने उनकी पकड़ से निकलने की कोशिश की। चतुर और भावुक पिताजी ने महसूस किया होगा कि मुझ पर क्या गुजर रही थी। अब भी मुझे उसी तरह पकड़े हुए उन्होंने लड़खड़ाती हुई आवाज में कहा, "मेरी बेटी को बहादुर होना चाहिए।" मैं इस चीज को और ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। इसलिए मैं उनके कमरे से निकल भागी और बाहर जाकर दिल खोल कर रोई। ज्यों-ज्यों शाम होती गई उनकी हालत और भी खराब होने लगी। मुझे फिर उनके कमरे में जाने की हिम्मत न हुई। इसलिए कुछ और लोगों के साथ मैं रात-भर कमरे के बाहर ही बैठी रही। दुःख और थकान से चूर सुबह के होते-होते मैं सो गई और इसी तरह मेरी बहन, कमला और दूसरे कई रिश्तेदार भी जो-जो उस वक्त वहां थे सो गए। हम मुश्किल से घंटा भर सोए होंगे कि हमारी चाची ने आकर हमें जगाया और खबर दी कि पिताजी का अंत हो गया। उनकी आखरी घड़ी में सिर्फ जवाहर, माताजी और डाक्टर लोग उनके कमरे में थे।

एक के बाद एक हम लोग पिताजी के कमरे में दाखिल हुए। वे अपने बिस्तरे पर लेटे थे और ऐसा मालूम होता था कि सो रहे हों। उनके चेहरे पर शांति थी और वे अपनी जीवित अवस्था से भी ज्यादा शानदार मालूम होते थे। मेरा मन इस बात को किसी तरह मानता ही न था कि मेरे पूज्य पिता का अंत हो गया है। जवाहर उनके पीछे बैठे थे, उनका हाथ पिताजी के सिर पर था गोया वह उनका सिर सहला रहे हों। जवाहर की आंखों में आंसू भरे हुए थे। मेरे आंसू निकल ही नहीं रहे थे, क्योंकि जो कुछ हो चुका था उस पर मुझे विश्वास ही नहीं आ रहा था। फिर गांधीजी ने कमरे में प्रवेश किया और

पिताजी के बिस्तरे के पास गये। अपना सिर झुकाकर और आंखें बंद करके वे कुछ देर तक खड़े रहे। ऐसा मालूम दे रहा था कि वे प्रार्थना कर रहे हैं और बिदा हो रहे हों। हम सब उनके आसपास खड़े थे। फिर वे माताजी के पास गए, जिन्होंने पहली चीख के बाद फिर आवाज नहीं निकाली थी और दुःख से भरी हुई चुपचाप एक कोने में बैठी थीं। गांधीजी उनके करीब बैठ गये और उनके कंधे पर अपना हाथ रखकर बोले—"मोतीलाल जी मरे नहीं हैं। वे बहुत दिन जिंदा रहेंगे।" गांधीजी के इन शब्दों ने मुझे महसूस करा दिया कि क्या बात हुई है और मेरे आंसू बहने लगे।

पिताजी की मृत्यु की खबर बिजली की तरह देश भर में फैल गई। लखनऊ में खबर आम हो गई और हजारों आदमी अपने नेता के आखरी दर्शन के लिए कालाकांकर महल पहुंचे, जहां हम लोग ठहरे हुए थे।

पिताजी की लाश फूलों से लदी हुई थी। देखने वालों, दोस्तों, और रिश्तेदारों का एक ऐसा तांता बंध गया था जो खतम ही नहीं होता था। हर शख्स उनको आखरी श्रद्धांजलि अर्पित करता था। गांधीजी उनके बिस्तरे के करीब चुपचाप बैठे थे। उनके करीब ही मेरी माताजी थीं जो दुःख और गम की प्रतिमा बनी हुई अपने उस पति की लाश के करीब बैठी थीं, जिनके साथ उन्होंने पूरी जिंदगी इज्जत, आबरू, सुख और दुःख के साथ गुजारी थी। करीब ही थके हुए और मुर्झाए हुए जवाहर खड़े थे, जो ऐसा मालूम होता था कि एक रात में ही बहुत बूढ़े हो गए हैं। फिर भी इस महान् दुःख में उनका चेहरा शांत था।

मकान के बाहर मजमा बराबर बढ़ता जाता था। हर शख्स के चेहरे पर दुःख और गम की छाया थी और कोई आंख न थी जो आंसू न बहा रही हो। चारों तरफ एक अजीब खामोशी छाई हुई थी और हम सब को जो दुःख और सदमा हुआ वह शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

पिताजी को मोटर से इलाहाबाद लाया गया। उनकी लाश तिरंगे कौमी झंडे में लिपटी हुई थी। जवाहर उनके पास बैठे थे। कमला, स्वरूप और मैं मोटर से पहले ही रवाना हुए थे, इसलिए कि और लोगों से पहले घर पहुंचे। लखनऊ में हमारे घर के बाहर बड़ी भारी भीड़ थी। जब हम इलाहाबाद के करीब पहुंचे तो हमने देखा कि मीलों तक हजारों आदमी जमा हैं और ज्यों-ज्यों हम अपने घर के करीब पहुंचते गये लोगों की तादाद और भी बढ़ती गई।

आनंद-भवन से चार मील के फासले पर मजमा बहुत ज्यादा था और ज्यों-ज्यों हमारी गाड़ी आगे बढ़ी, मजमा बढ़ता ही दिखाई दिया। जब हमारी गाड़ी लोगों के बीच से गुजरती थी तो उनके हमदर्दी के शब्द हमारे कानों में पड़ते थे। जब हमने देखा कि लोग इतनी बड़ी तादाद में मीलों के फासले से पिताजी को अपनी आखरी श्रद्धांजलि अर्पित करने आए हैं तो हम और ज्यादा दुखी हुए। आखिर हम अपने घर पहुंचे, उसी घर में जो फिर कभी पहले की तरह न हो सकेगा, वही घर जिसने एक ऐसी बड़ी चीज खोई थी, जो फिर मिल नहीं सकती थी। हमारे घर का पूरा अहाता भीड़ से खचाखच भरा था। वह तिरंगा कौमी झंडा जो वहां हमेशा बड़े शान से लहराया करता था अब झुका दिया गया था। शहर में और जगह भी झंडे नीचे कर दिये गये थे। आखिर एक बार एक बड़ी दुःखभरी आवाज सुनाई दी, जिसमें उन हजारों बल्कि लाखों आदमियों का, जो वहां जमा थे, दुख-दर्द शामिल था और इसी आवाज के साथ पिताजी की गाड़ी धीरे-धीरे आनंद-भवन के लोहे के दरवाजों में से आखरी बार अंदर दाखिल हुई।

लखनऊ से सब लोग आ चुके थे और आखरी क्रिया-कर्म के लिए हर चीज तय्यार थी, पर जिस गाड़ी में गांधीजी और माताजी थे वह अभी तक नहीं आई थी। उनके न आने से काफी परेशानी हुई और उनकी तलाश में दूसरी गाड़ियां भेजी गईं। एक घंटे बाद वे आए और पता चला कि रास्ते में दुर्घटना हो गई थी। लखनऊ और इलाहाबाद के बीच की सड़क बहुत खराब थी और चूंकि हमारा ड्राइवर रो रहा था इस वजह से रास्ते के बीच की एक खाई उसे दिखाई न पड़ी। हमारी डिलाज नाम की बड़ी गाड़ी थी। वह जब इस खाई पर से गुजरी तो उलट गई। चमत्कार यह हुआ कि धक्के से गाड़ी का दरवाजा खुल गया और माताजी और गांधीजी दोनों बाहर गिर पड़े और किसी के भी चोट न आई। ड्राइवर के मामूली चोट आई, पर गाड़ी का कुछ नुकसान न हुआ।

माताजी के घर पर आते ही आखरी क्रिया-कर्म हो गया और पिताजी की अर्थी बड़े भारी जुलूस के साथ गंगा किनारे पहुंच गई। उनकी अर्थी फूलों से लदी हुई थी और खूब सजाई गई थी। हमारे दुखी दिलों को यह देखकर कुछ शान्ति जरूर हुई कि पिताजी से लोगों को कितना प्रेम था; क्योंकि उस भारी मजमे में एक शख्स भी ऐसा न था जो न रो रहा हो और न कोई दिल

हीं ऐसा था जो उस व्यक्ति की मौत पर शोक न कर रहा हो, जिसकी मिसाल इन्सानों में शेर से दी जा सकती थी। जब हमने देखा कि पिताजी को हमसे दूर ले जाया जा रहा है और वे अब कभी वापस न होंगे तो हमने भी अपने इस प्यारे पिता को आखरी प्रणाम किया। उस रात जब मैं आनंद भवन के बाग में अकेली टहल रही थी तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वहां की कोई चीज बदली नहीं है। आकाश साफ था और तारे हमेशा की तरह चमकदार और सुंदर थे। पर मेरे लिए सारी दुनिया तबाह हो चुकी थी।

इलाहाबाद के इतिहास में कभी किसी का इतनी धूमधाम से दाह-कर्म होते न देखा था। गांव के किनारे संगम पर आखिरी क्रिया-कर्म के लिए कोई एक लाख मर्द औरतें और बच्चे जमा थे। जहां तक नजर पहुंचती थी सिरों का एक समुद्र दिखाई देता था। सब लोग नंगे सिर थे और खामोश खड़े हुए थे। आसपास के देहातों से सैकड़ों किसान इस जलूस में शामिल होने आए थे।

जब आखिरी क्रिया-कर्म हो चुका तो गांधीजी और पंडित मदन-मोहन मालवीय ने उस जन-समूह के सामने तकरीरें कीं। जब बापू बोलने के लिए खड़े हुए तो पूरे मजमे से एक दुःखभरी आवाज उठी मगर बहुत जल्द लोग बिलकुल खामोश हो गए और चारों ओर सन्नाटा छा गया। उन्होंने कहा, "हमारे देश के इस बहादुर वीर के शव के सामने खड़े होकर गंगा और जमुना के किनारे हममें से हर पुरुष और स्त्री को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जबतक हिन्दुस्तान आजाद न होगा वह चैन नहीं लेंगे, इसलिए कि यही वह काम है जो मोतीलालजी दिल से चाहते थे। इसीकी खातिर उन्होंने अपनी जान दे दी।" गांधीजी कुछ देर और बोले। उनकी आवाज भर्राई हुई थी और सुनने वालों की आंखों से आंसू बह रहे थे।

पंडित मदनमोहन मालवीय ने लोगों से अपील की कि अपने आपस के झगड़े दफन करदें और अपने इस महान नेता की कुर्बानियों से सबक लेकर लोग एक हो जाएं और हिन्दुस्तान की आजादी हासिल करें।

दो दिन तक सारे देश में शोक मनाया गया। शहर-शहर, गांव-गांव में हड़तालें हुईं। स्कूल और कालेज बंद कर दिए गए और सारा कारोबार बंद रहा। दुनिया भर से हजारों की संख्या में हमारे पास हमदर्दी के पैगाम आए।

पिताजी की मृत्यु के बाद गांधीजी ने एक संदेश दिया जिसमें उन्होंने कहा, "मेरी हालत विधवा स्त्री से भी बुरी है। एक विधवा अपने पति की मृत्यु के बाद वफादारी से जीवन बिताकर अपने पति के अच्छे कामों का फल पा सकती है। मैं कुछ भी नहीं पा सकता। मोतीलाल जी की मृत्यु से मैंने जो कुछ खोया है वह मेरा सदा के लिये नुकसान है।"

पिताजी मजबूत शरीर के और दरम्यानी लंबाई के आदमी थे, पर उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता था कि वे बहुत लंबे हैं। उनके चेहरे से जहानत टपकती थी। उनकी आंखों से ऐसा मालूम होता था कि दूसरों के मन के विचार पढ़ रहे हों। उनका सिर बड़ा शानदार था और उनका व्यक्तित्व बहुत ही लुभाने वाला। जब मैं पैदा हुई थी तब ही उनके बाल पकने शुरू हुए थे, पर जब मेरी उम्र पंद्रह साल की हुई तो उनका पूरा सिर सफेद हो चुका था और बर्फ की तरह सफेद बाल उन्हें बड़ी शोभा देते थे। चेहरे से वह सख्त मिजाज मालूम होते थे और अक्सर लोग उनसे बहुत डरते थे, पर उन्हें इस बात का पता न था कि इस जाहिरी सख्ती और रुखाई के नीचे एक सोने का दिल था—बड़ाही नर्म, दूसरों की बात समझने वाला और ऐसा कि आसानी से काबू में किया जा सकता था, अगर कोई उसका तरीका जानता हो तो। वे छोटे बच्चों से बहुत प्यार करते थे और छोटे बच्चे उनकी बड़ी कद्र करते थे। मैं किसी ऐसे बच्चे को नहीं जानती जो फौरन उन्हें चाहने न लगा हो और जिससे उनकी दोस्ती न हो गई हो। वे अपने बच्चों से तो बहुत मुहब्बत करते थे, पर उन पर भी वे यह बात कभी नुमाइशी तरीके से जाहिर नहीं करते थे। एक बच्चे की हैसियत से मैं अपने पिताजी से बहुत डरती थी। पर मुझे उनसे बड़ा प्रेम भी था। जब मैं बड़ी हुई और उन्हें ज्यादा अच्छे तरीके से समझने लगी तो मेरे मन से उनका डर बिलकुल निकल गया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया हम एक दूसरे के बड़े दोस्त बनते गए और वे मेरे सबसे अच्छे दोस्त थे। पिताजी का एक जबर्दस्त व्यक्तित्व था, जो दूसरों पर बड़ा असर डालता था और उनमें कुछ ऐसी शाहीशान थी कि वे जिस किसी मजमे में जाते थे, सब लोगों से अलग ही नज़र आते थे। हमारे लिए जो उनके बच्चे थे और उन सब लोगों के लिए जिनकी वे परवरिश करते थे वह एक बड़ा सहारा थे और हमने इस बात से पूरा फायदा उठाया।

पिताजी सबसे ज्यादा खुश उस वक्त होते थे जब अपने खानदानके

लोगों में घिरे हुए होते थे। पर ऐसा शायद ही कभी होता था कि हम लोग अकेले हों। हमारे दोस्त और रिश्तेदार शाम को हमारे घर पर आया करते थे, क्योंकि वही एक ऐसा वक्त होता था जब पिताजी जरा फुर्सत से होते थे और उनसे बातचीत कर सकते थे। दिन भर और कभी-कभी रात को भी बड़ी देर तक वे काम किया करते थे। मुझे अब भी वे मौके याद आते हैं जब दिन भर के थका देने वाले काम के बाद पिताजी रात का खाना खाने बैठते थे। वे मेज के सिरे पर उन लोगों में बैठे होते थे जिनसे उन्हें गहरी मोहब्बत थी। बारी-बारी से हममें से हर एक पर वह ध्यान देते थे, हंसते थे और मजाक करते, औरों को छेड़ते थे और इस वक्त वे उस सख्त मिजाज के आदमी जैसा कि बाहर के लोग उन्हें समझते थे बिलकुल न रहते। हमारी बाबत छोटी से छोटी बात भी उनकी नजरों में आ जाती थी। किसी ने नए तरीके से पोशाक पहनी हो या किसी ने नए तरीके से बाल बांधे हों तो उस पर उनकी नजर जरूर पड़ती थी। उनमें एक अजीब बात यह थी कि उन्हें न मालूम किस तरह यह पता चल जाता था कि दूसरा आदमी अपने मनमें क्या सोच रहा है। कभी-कभी और ऐसा बहुत कम होता था कि वह हम में से किसी की तारीफ करते थे; क्योंकि वह किसी को लाड़ नहीं दिखाते थे। मुझे यह भी खूब याद है कि जब पिताजी किसी बातपर माताजी की तारीफ करते तो वह कैसी शरमाती थीं। या कोई पुराना किस्सा सुनाते हुए वह इस बात को भूल जाते थे कि बच्चे पास बैठे हैं और अपनी बीवी से पुरानी बातें दोहराते थे। ये ऐसी बातें हैं जो कभी भूली नहीं जा सकतीं और मैं उन्हें बड़े प्रेम से याद रखती हूं। मेरे लिये दुनिया में इससे ज्यादा सुन्दर दृश्य और कोई नहीं है कि दो ऐसे व्यक्ति देखे जायं जिनके बाल सफेद हो चुके हों, जिन्होंने जिन्दगी के मजे साथ ही लूटे हों और दुःख भी साथ ही सहे हों और फिर भी जो सही-सलामत रहे हों।

दिन भर का काम खत्म करने के बाद शाम को पिताजी की तबियत बहार पर रहती थी। रात के खाने से पहले दो-एक घंटे वे आराम करते थे और फिर दूसरा काम शुरू करते थे। शाम को छः साढ़े छः के करीब पिताजी के दोस्त एक के बाद एक आने शुरू होते थे और उनकी तादाद दो दर्जन तक पहुंच जाती थी। बाग में घास पर मेज और कुर्सियां लगाई जाती थीं और वहां अपने दोस्तों के साथ वे रोज छोटा सा दरबार लगाते थे, जहां हंसी-

मजाक और लुत्फ की बातों में सबका वक्त कटता था। इन बैठकों में पिताजी सबसे आगे रहते थे और कोई पुराना किस्सा या ताजा वाकया बयान करके सबका ध्यान अपनी ओर खींचते थे। और लोग भी मौके-मौके से इसमें हिस्सा लिया करते थे।

पिताजी को बहुत कम लोग ठीक तौर पर समझ पाते थे। जो लोग उनसे पहली बार मिलते थे वे समझते थे कि वे बड़े ही सख्त मिजाज, जरा भी न झुकने वाले और अक्खड़ आदमी हैं। कभी-कभी वे सचमुच ऐसे बन भी जाते थे, पर जो लोग उन्हें अच्छी तरह जानते थे उन्हें मालूम है कि वे सच-मुच कितने नर्म-दिल और कितने अच्छे थे। उनकी शखसियत बड़ी भारी थी और उनमें बड़ी खूबियां थीं और चाहे कैसे ही मजमे में वे क्यों न हों सब लोग उन्हीं की तरफ खिंचते थे। दावतों वगैरा में भी वह लोगों का दिल मोह लेते थे और इस बात पर उनसे कम उमर के बहुत से लोगों को निराशा होती थी। वे किसी कदर खुद मुख्तार जरूर थे,उनकी तबियत में हुकूमत थी,कुछ गरूर भी, पर उसी के साथ कुछ ऐसी शान भी उनमें थी कि जो कोई भी उन्हें जानता था वह उनकी इज्जत करने पर मजबूर हो जाता था। उनमें न तो छोटे-पन की कोई बात थी और न कमजोरी। शरीर और मन दोनों से वह मजबूत थे और मेरे लिए तो कुछ अजीब चीज थे। मैं काफी सफर कर चुकी हूं और बहुत से पुरुषों और स्त्रियों से मिली हूं जिनमें बहुतसी खूबियां थीं और मैंने उन्हें पसंद भी किया है। पर मैं अभी तक किसी ऐसे आदमी से नहीं मिली हूं जिसमें वह सब खूबियां हों जो मैं अपने पिताजी में पाती थी। हो सकता है कि मैं उस मोहब्बत की वजह से जो मुझे उनसे थी और उनके लिए मेरे मन में जो आदर था उसके कारण मैं उनके बारे में पक्षपात से काम ले रही हूं।

उनका एक ही दोष उनका गुस्सा था। पर यह वह दोष था जो उन्हें बाप-दादा से मिला था और हममें से कोई भी इससे खाली नहीं है। शायद उनकी एक ही कमजोरी उनका अपने बच्चों से अटूट प्रेम था। अकसर लोग समझते थे कि पिता की हैसियत से वह बहुत रूखे और सख्त आदमी थे। पर उनकी इस जाहिरी रुखाई और सख्ती के नीचे एक ऐसा दिल छुपा हुआ था जो अपने खानदान की मोहब्बत से भरा हुआ था। खानदान के काम का सारा बोझ उन्हीं के कंधों पर पड़ा; क्योंकि इस काम में जवाहर ने कभी कोई

दिलचस्पी ली ही नहीं। हमें बहुत कम पता होता कि उन्हें क्या-क्या दिक्कतें और परेशानियां रहती हैं; क्योंकि वे कभी हमसे इन बातों का जिक्र करते ही न थे। जब तक वे जिंदा रहे हमने बड़े ही सुख और बेफिकरी की जिंदगी गुजारी; क्योंकि हम जानते थे हमारी रक्षा करने के लिए वे मौजूद हैं। उनके प्रेम की ढाल में हम इतने सुरक्षित थे कि हमें पता ही न था कि तकलीफ और परेशानी क्या होती है। उनका विचार ही हमारे लिए एक अजीब सुख था। वे हमारे लिए शक्ति के एक भारी स्तंभ थे और ऐसी पनाहगार जिसमें हम हर किसम की क्षुद्रताओं और तकलीफों से बचे रह सकते थे। उनकी मृत्यु के बाद हममें से हर एक ने यह महसूस किया कि हमारा सहारा छूट गया है और उनके बिना हम अपने जीवन को ठीक से नहीं चला सकते।

देश के लिए भी उनकी मृत्यु एक बड़ा भारी नुकसान था। अपने इतिहास के बहुत ही नाजुक मौके पर देश ने अपने बड़े भारी सिपाही और राजनेता को खोया था। पिताजी की पहुंच, सूझ और जानकारी आश्चर्य पैदा करने वाली थी और उस मौके पर उनका नेतृत्व देश के लिए बहुत कीमती साबित होता। हमारे नेताओं में से एक ने पिताजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा था, "उनकी आत्म त्याग की भावना मामूली आदमी से कहीं ज्यादा थी। हमारे आजादी के आंदोलन में एक पर एक बलिदान करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था और उनके आत्म-बलिदान की कोई सीमा थी ही नहीं। उन्होंने हिंदुस्तान के काम को अपना काम बना लिया था और उनका जीवन हिंदुस्तान की आजादी के लिए ही था। आजाद हिंदुस्तान जब अपने नेताओं और शहीदों के लिए स्मृति-मंदिर बनाएगा तो उसमें आधुनिक हिंदुस्तान के संस्थापक महात्मा गांधी के करीब ही मोतीलाल जी को ऊंची जगह मिलेगी।"

६

कदो गेसू में कैसो कोहकन की आजमाइश है।
जहां हम हैं वहां दारो रसन की आजमाइश है॥

बाहरी दुनिया में सुंदरता और प्रेम की आजमाइश है। लेकिन जहां हम हैं वहा फांसी के रस्से और जेल की जंजीरों की आजमाइश है।

—गालिब

पिताजी की मृत्यु के बाद जवाहर को गांधीजी के साथ मशविरे के लिए दिल्ली जाना पड़ा, जहां गांधीजी की वायसराय लार्ड इर्विन से मुलाकातें हो रही थीं। हमारे खानदान के बारे में कई बातें ऐसी थीं जिनका जवाहर को इन्तजाम करना था, पर उनकी गैरहाजरी की वजह से यह सब काम रुके रहे। दिल्ली के कामों में भी वे इस बात को भूल न सके कि अब वे हमारे छोटे से खानदान के मुखिया हैं। उस समय हम सबको और खासकर माताजी को जो गम से टूट चुकी थीं जवाहर के हमारे साथ रहने की जरूरत थी। दिन पर दिन गुजरते गए और फिर भी जब वे घर न आ सके तो उन्होंने मुझे लिखा—

"मुझे आशा थी कि मैं पूरा एक हफ्ता इलाहाबाद में रहकर खानदान के और लोगों के मशविरे से अपने घर के काम-काज का फैसला कर सकूंगा, पर अब ऐसा मालूम होता है कि न जाने कब तक मुझे यहीं रहना पड़े। अबतक घर के सारे कामों का बोझ पिताजी पर था और उनकी मोहब्बत भरी निगरानी और दूरंदेशी की वजह से हम सब बहुत-सी मुसीबतों से बचे हुए थे। अपने बच्चों पर उनका अटूट प्रेम हमें उनकी छत्रछाया में छुपाये रखता था। हमारी रक्षा करता था और हम उन फिक्रों और तकलीफों से आजाद रहते थे जो अकसर लोगों को उठाना पड़ती हैं। जिंदगी की कोई भी मुसीबत जब हमारे सामने आती थी तो केवल उनका विचार ही हमें सुख देता था। अब हमें बिना

उनके अपना काम चलाना है और हरेक दिन के गुजरने के साथ मुझे उनकी कमी महसूस होती है और तकलीफ देनेवाली तनहाई परेशान करती है, पर हम अपने बहादुर बाप के बच्चे हैं और उनकी शक्ति और हिम्मत का कुछ हिस्सा हम में भी मौजूद है और चाहे हमारे रास्ते में कितनी ही दुश्वारियां और कठिनाइयां पैदा हों हम दृढ़ निश्चय के साथ उनका मुकाबला करेंगे और हिम्मत से काम लेकर उन पर काबू पाएंगे।''

इस खत से पता चलता है कि जवाहर को पिताजी की मौत से कितना सदमा हुआ था और इस सदमे में हम सब उनके साथ बराबरी से शरीक थे। पिताजी के बिना हम सब खोए-खोए से रहते थे और हमारी समझ में नहीं आता था कि उनकी निगरानी और नेतृत्व के बिना हम अपना काम किस तरह चलायेंगे। अब हमारे छोटे से खानदान का पूरा बोझ जवाहर के कंधे पर पड़ा और उन्होंने यह बोझ बहादुरी और बाहोशी से उठाया। बहुत जल्द उन्होंने पिताजी की जगह ले ली और हर छोटी-मोटी बात के लिए हम लोग उन्हीं की तरफ देखने लगे। हम अब भी यही करते हैं।

जवाहर का खत मेरे जखमी दिल के लिए मरहम साबित हुआ। इस खत ने मेरे दिल का जखम भरने में और सब चीजों से ज्यादा काम किया। जवाहर इस बात को नहीं जानते, पर यह सच है कि बेशुमार ऐसे मौकों पर जब मैं किसी बात से निराश हुई हूं या मेरा दिल बैठ गया है तो इस खत ने जो अब से बारह बरस पहले लिखा गया था मुझे जिंदगी की समस्याओं का मुकाबला करने की हिम्मत और शक्ति दी है।

इंडियन नेशनल कांग्रेस की बैठक उस साल कराचीमें हुई और माताजी, मैं, और जवाहर उनकी बीवी के साथ वहां गए। जवाहर की सेहत उन दिनों ठीक न थी। अपनी रिहाई से पहले जेल में उनकी तबियत अच्छी नहीं थी और पिताजी की बीमारी और मौत के सदमे का बोझ उनके उस शरीर को भी, जिसे वह 'फौलादी' कहा करते हैं, ऐसा साबित हुआ जिसे वे आसानी से उठा नहीं सकते थे। डाक्टरों ने उन्हें लंबी छुट्टी लेने और पूरी तरह आराम करने का मशविरा दिया। इसलिए जवाहर, कमला, और इंदिरा तीन हफ्तों के लिए लंका गए। जवाहर लंका देखकर बहुत खुश हुए और वहां के लोगों ने उनके प्रति जो प्रेम जाहिर किया और जिस मेहरबानी से पेश आए उसका बड़ा असर पड़ा। अपने वापसी के सफर में जवाहर ने जहाज पर से मेरे नाम

खत में लिखा, "हम जहां कहीं भी गए हमारा बहुत ही शानदार स्वागत किया गया और जब मैं एक बड़े मजमे से दूसरे बड़े मजमे में जाता था और उन बेशुमार लोगों में से गुजरता था जो घंटों तक रास्तों पर हमारे इंतजार में खड़े रहते थे तो मुझे इस चमत्कार पर हैरत होती थी और मैं उसका अर्थ समझने की कोशिश करता था। मैं समझ गया कि इस चीज के पीछे कोई बात जरूर है, कोई ऐसी बात जो इससे ज्यादा गहरी है कि लोग किसी एक व्यक्ति को पसंद करते हों। और इस तरह विचार करते करते अचानक यह बात मेरी समझ में आ गई कि ये लोग जिस चीज की इतनी इज्जत कर रहे हैं वह हिंदुस्तान की शान और आजादी के लिए हिंदुस्तान की लड़ाई है और हम लोग तो उसी शान के मामूली चिन्ह हैं। अभी ज्यादा दिन नहीं गुजरे कि बाहर के देशों में हिंदुस्तानी को अपना सर शर्म से नीचे झुकाना पड़ता था, पर कोई बात हुई जरूर है और अब वह शर्म पुराने जमाने की बात मालूम होती है, एक ऐसा तकलीफदेह सपना तो गुजर चुका। अब तो हिंदुस्तानी होना बड़े फख्र की बात है और खासकर ऐसा हिंदुस्तानी होना जिसने इस लड़ाई का कुछ बोझ खुद भी उठाया हो। और हममें से कोई भी कहीं जाए उसके साथ नए हिंदुस्तान की शान चलती है।" जवाहर ने उस वक्त यह समझा और अब भी वे यही समझते हैं कि उन्हें जो भी इज्जत दी जाती है या उनके प्रति जो भी प्रेम जाहिर किया जाता है वह व्यक्तिगत तौर पर उनके लिए नहीं होता, बल्कि वह एक तरह का तोहफा होता है जो उन्हें इसलिए दिया जाता है कि वे हिंदुस्तान की उन सन्तानों में से एक हैं जो इसके लिए लड़ते हैं और ऐसे पुत्र हैं जिसने अपना सब कुछ देश को दे दिया है और अगर देश को जरूरत हो तो उसकी खातिर अपनी जान भी दे देंगे।

गांधी-इर्विन समझौता होते हुए भी देश की हालत में कोई फर्क नहीं पड़ा। हुकूमत को इस बात की इच्छा ही न थी कि इस समझौते की भावना को स्वीकार करे और जनता जो जाग चुकी थी वह इसके लिए तैयार न थी कि अपनी मेहनत के फल को फेंक दे।

युक्तप्रांत में किसानों में बेचैनी और बेइतमीनानी जारी रही और किसानों के आंदोलन को दबाने के लिए सरकार आर्डिनेन्स जारी करती रही। इस सूबे में जो प्रांतीय सम्मेलन होने वाला था उसकी सरकार ने मुमानियत कर दी और यह हुकम दिया कि सम्मेलन उसी सूरत में हो सकता है जब यह

वायदा किया जाए कि उसमें किसानों के सवालों पर विचार नहीं होगा। सम्मेलन खास इसी सवाल पर गौर करने के लिए होने वाला था, इसलिए सरकारी शर्त को मान लेना सम्मेलन का मजाक बना देता। पर गांधीजी बहुत जल्द गोलमेज परिषद् से वापस आनेवाले थे और जवाहर और उनके और साथी गांधीजी से मिलना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मुनासिब समझा कि सम्मेलन मुल्तवी कर दें। पर ऐसा करने पर भी वे गांधीजी से मिल न सके।

दिसंबर १९३७ में जवाहर बंबई जाते हुए इलाहाबाद से कुछ मील दूर एक छोटे से स्टेशन पर गिरफ्तार हुए। दो दिन बाद गांधीजी जो गोलमेज परिषद् में शरीक होने इंग्लैंड गए थे, वापस लौटकर बंबई पहुंचे। उन्हें आशा थी कि बंदरगाह पर ही जवाहर उनसे मिलेंगे, पर इसकी जगह उन्हें यह खबर मिली कि जवाहर और दूसरे बहुत से नेता गिरफ्तार कर लिए गए हैं और बहुत से प्रांतों में नए नए आर्डिनेन्स लगाए गए हैं। दाव खेला जा चुका था और आजादी की लड़ाई फिर एक बार शुरू हो गई थी। ४ जनवरी १९३२ को गांधीजी और वल्लभ भाई पकड़े गये और उन्हें बिना मुकदमा चलाए नजरबंद कर दिया गया। हफ्तों के अंदर-अंदर आंदोलन पूरे जोरों पर था। हममें से बहुत से लोग जिन्होंने इससे पहले के आंदोलनों में ज्यादा असली हिस्सा नहीं लिया था वे अब पूरी शक्ति और जोश से इस आंदोलन में कूद पड़े। मेरी माताजी जो बहुत बूढ़ी और कमजोर थीं वे भी पीछे न रहीं। वे शहरों और आस-पास के गांवों में जाकर सभाओं में बोलतीं। हम सबको उन्हें देखकर बड़ा अचरज होता था, क्योंकि अपनी पूरी जिंदगी उन्होंने एक ऐसे कमजोर बीमार की तरह गुजारी थी जो ज्यादा मेहनत-मशक्कत का काम नहीं कर सकता था। पर अब ऐसा मालूम होता था कि कहीं ऊपर की प्रेरणा से उनमें अचानक बड़ी भारी शक्ति और निश्चय पैदा हो गया। वह उतना ही काम करने लगीं जितना हम करते थे; बल्कि कभी कभी तो उससे भी ज्यादा।

बहुत जल्द मेरी बहन पर, मुझ पर और हमारे कुछ और साथियों को यह नोटिस मिला कि हम एक महीने की मुद्दत के लिए जलसे या जलूस में भाग न लें और हड़ताल न कराएं। स्वतंत्रता दिवस में दो हफ्तों की देर थी। इसलिए हमने इरादा किया कि उस वक्त तक खामोश रहें। २६ जनवरी को हमारे शहर में इतना बड़ा जलसा हुआ जितना इससे पहले कभी न हुआ था। माताजी ने इस जलसे की सदारत की और बड़ी जोशीली तक-

रीर की, पर इससे पहले कि सभा खतम हो पुलिस ने लाठी चार्ज किया और सभा खत्म कर दी गई। बहुत से लोगों को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया और बहुत से बुरी तरह जख्मी हुए। हमने उस नोटिस को जो हमें दिया गया था भंग किया था, इसलिए हमें आशा थी कि हम भी पकड़े जायंगे, पर ऐसा हुआ नहीं और हम निराश होकर घर लौटे। दूसरे दिन सुबह साढ़े नौ बजे पुलिस की गाड़ी एक इन्स्पेक्टर के साथ हमारे घर आई और मेरी बहन को और मुझे इत्तला दी गई कि हमें गिरफ्तार कर लिया गया है। हमने अपनी जरूरी चीजें इकट्ठी कर लीं और माताजी से और दूसरे लोगों से विदा लेकर जेलखाने रवाना हुए। यह हमारा जेल का पहला सच्चा तजुरबा था। मैं इससे पहले भी एक बार बारह घंटे जेल में रह चुकी थी। हमें खुद अपनी कुछ भी पर्वाह न थी, पर अपनी बूढ़ी और कमजोर मां की बड़ी फिक्र थी, जिसे हमने अपने उस बड़े घर में अकेला छोड़ दिया था, जहां पहले हमेशा सुख और आनंद ही आनंद था और जहां अब निरा दुख और तनहाई थी। माताजी को यह देखकर जरूर बड़ी तकलीफ हुई होगी कि उनके सभी बच्चे एक-एक करके जेल चले गए और उन्हें खुद अपना और दूसरों का भी काम करने के लिए अकेला छोड़ गए। उनका शरीर नाजुक और कमजोर था, पर उनका दिल शेरनी की तरह मजबूत और बहादुर था और वे वहां अपनी एक बहन के साथ, जो उन्हीं की तरह बहादुर औरत थीं, रह गईं। फिर भी आजादी की इस लड़ाई को जारी रखने के उनके निश्चय में जरा भी कमी नहीं आई।

अब हम अपने प्यारे घर से ज़िला जेल की तरफ रवाना हुए। जब हम वहां पहुंचे तो हमने देखा कि हमारी और साथी औरतें वहां पहले से ही मौजूद हैं। वे सबकी सब बड़ी खुश थीं और जो भी मुसीबत आ पड़े उसके मुकाबले के लिए हंसी-खुशी तैयार थीं। हमें एक साथ रहने से बड़ी खुशी हुई। वजन वगैरा लेने के कुछ मामूली कामों के बाद हमें अंदर ले जाया गया। इस जेल में खास औरतों का विभाग नहीं था। कायदा यह था कि बंदिनियों को वहां सिर्फ इतनी देर तक रखा जाता था जब तक उनका मुकदमा खत्म न हो और उसके बाद उन्हें दूसरी जगह भेज दिया जाता था। जेल का एक वार्ड स्त्रियों के लिए रखा गया था और उसी में बुरी-से-बुरी औरतें भी थीं जिन्हें हर तरह की बीमारियां थीं। इन औरतों में हमारे मुकदमे से पहले तीन हफ्ते और मुकदमे के बाद चार दिन हमें और रखा गया। पर हमें अलग-अलग

कोठरियों में हर कोठरी में चार-चार के हिसाब से रखा गया था। हर रोज सुबह जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट, जो एक अंग्रेज था और जिसे पिछली लड़ाई में बम का बुरी तरह धक्का पहुँचा था, गश्त लगाता था। हम सबको उस वक्त हाजिर रहना पड़ता था; क्योंकि वह अपनी आंखों से सबको देखकर यह इत्मीनान करना चाहता था कि कोई कम तो नहीं है। एक दिन ऐसा हुआ कि मुझे और मेरे एक दोस्त को कोठरी से बाहर निकलने में देर हुई। जैसे ही उसने हमें देखा, आवाज दी—"जल्दी करो, जल्दी करो, मैं यहां तुम्हारे लिए दिन भर नहीं ठहर सकता। उधर टेनिस का टूर्नामेंट हो रहा है जो मुझे देखना चाहिये और मुझे यहां इस गन्दी जगह में रुकना पड़ रहा है।" मुझे यह बड़ा बुरा लगा और मैंने पलटकर जवाब दिया, "हमारे लिए यह जगह उससे भी ज्यादा तकलीफ की है, जितनी तुम्हारे लिए; क्योंकि यहां की हर चीज इतनी गंदी है। रहा टैनिस का टूर्नामेंट, सो अगर तुम एक दिन यह खेल न देख सके तो क्या हर्ज है, जब कि हम किसी दिन भी नहीं देख सकते।" सुपरिंटेंडेण्ट चुपके से चल दिया और अच्छा ही हुआ कि उसने कुछ जवाब न दिया।

जेल में शुरू के कुछ दिन हमारे लिए एक अजीब तजरुबे के थे और तजरुबा भी ऐसा कि जिसे हम में से कोई भी भूल नहीं सकती ! हमारी कोठरियों में किस्म-किस्म के कीड़े-मकोड़े थे और रातों हम इस डर के मारे सो न सके कि ये खौफनाक चीजें हमारे बिस्तरों पर न चढ़ आएं। इस खयाल से घंटे के बाद घंटा गुजारना बड़ा ही तकलीफदेह होता था। किसी वक्त भी कोई कीड़ा-मकोड़ा अपने हाथ या पैर पर आजाएगा। हम में से हर एक को एक दो बार इसका तजरुबा भी हुआ। आगे चलकर हमने यह आदत डाल ली कि हर रात को सोने से पहले कोठरियां खूब अच्छी तरह साफ कर लें और फिर हम जब तक उस जेल में रहे कोई ऐसी बात नहीं हुई। हमारे मुकदमे से पहले जो मुद्दत गुजरी उसमें और लोगों को रोजाना मिलने की इजाज़त थी और माताजी हर रोज हमसे मिलने आया करती थीं। आखिर हमारे मुकदमे के दिन की सुबह हुई और हम किसी कदर बेचैनी से मुकदमे के समय का इन्तजार करने लगे। न मालूम क्यों ? मगर हमें खयाल था कि हम लोगों को छः-छः महीने से ज्यादा की जेल न होगी और हम उसके लिए बिलकुल तैयार थे। मुकदमा जेल ही में हुआ। हम सब एक कतार में बैठे थे और जिस किसी का मुकदमा होता

उसी का नाम पुकारा जाता था। हमने मुकदमे की कार्रवाई में किसी तरह का हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया। मेरी बहन का नाम पहले पुकारा गया और जब मजिस्ट्रेट ने बड़ी धीमी आवाज में उन्हें एक साल की सख्त कैद और ऊपर से कुछ जुर्माने की सजा सुनाई तो हम सब चौंक पड़े। बहन के बाद मेरी बारी आई और मुझे भी उतनी ही सजा बिना जुर्माने के सुनाई गई। बाकी और लड़कियों ने भी एक के बाद एक अपनी सजा का हुक्म सुना।

दो और लड़कियों को एक-एक साल की सजा हुई। बाकी सबको तीन महीने से लेकर नौ महीने तक अलग अलग मुद्दत की सजाएं दी गईं। चार दिन के बाद एक रात को ग्यारह बजे हमें लखनऊ भेज दिया गया जहां हम साढ़े-ग्यारह महीने रहे। अच्छे चाल-चलन की वजह से पन्द्रह दिन की माफी मिल गई।

हम लोग अपनी मंजिल पर कड़कते हुए जाड़े में सवेरे सवेरे पहुंचे। जेल की खौफनाक और ऊंची-ऊंची दीवारों को देखकर हमारा दिल कुछ बैठ-सा गया। पहली बार हमने महसूस किया कि जेल-जीवन का मतलब उस वक्त क्या होगा जब हम साल-भर के लिए बंद कर दिये जायंगे और बाहर की दुनिया से हमारा कुछ भी संबंध न रहेगा। पर हममें से हर एक का यह निश्चय था कि इस बात से अपना जोश ठंडा न पड़ने देंगे और बहुत-सी तकलीफों और मानसिक परेशानियों के होते हुए भी हमारा अपने कार्य पर और अपने नेता पर पक्का विश्वास बना रहा।

हम जेल के दफ्तर में दाखिल हुए, जहां हमारे सामान की तलाशी लीगई। फिर हमें जेल के अंदर ले जाया गया और मैट्रन ने हमें वह बारक दिखाई जिसमें हमें रहना था। हमें बता दिया गया कि हमें क्या काम करना और किस तरह रहना होगा। फिर वह हमसे यह कहकर चली गई कि हम अपनी बारक के अहाते में घूम-फिर सकती हैं मगर शाम के पांच बजे हमें बंद कर दिया जायगा। हमें यह सुनकर धक्का-सा लगा। खैर, हमने अपने बिस्तरे ठीक किये जो कुछ भी अच्छे न थे और मुंह-हाथ धोकर हममें से कुछ लड़कियों ने फैसला किया कि चारों ओर घूमकर सब जगह एक नजर डाल ली जाय।

वह सुबह का वक्त था और सब कैदी अपनी कोठरियों के बाहर या तो कपड़े धो रहे थे या कोई और काम कर रहे थे। जब हम इतमीनान से उनके करीब से टहलते हुए गुजरे तो उनमें से कुछ कैदियों ने अचंभे से हमारी

तरफ देखा, कुछ ने मुस्कराकर अपना मित्रभाव जाहिर किया और कुछ ऐसे कैदियों ने, जो पुराने पके हुए मुजरिम थे, रुखाई से हमारी ओर देखा। एक कैदिन ने, जिसके बारे में हमें आगे चलकर पता चला कि बड़ी बदला लेनेवाली बुढ़िया है और जेल में वार्डर भी है, बड़ी जिल्लत के साथ हमें सिर से पैर तक देखा।

जेल में सोमवार का दिन परेड का दिन हुआ करता था। इसका मतलब यह था कि उस दिन सुपरिंटेंडेंट मुआयने के लिए आता था। उस रोज़ सवेरे पांच बजे से ही बड़ी धूम मची रहती थी और बारकों और उनके आगे-पीछे के अहातों की सफाई का काम शुरू हो जाता था। आठ बजे तक तमाम कैदियों को उनके साफ-सुथरे कपड़ों में एक कतार में खड़ा कर दिया जाता था और उनकी खूब साफ पालिश की हुई लोहे की थालियां उनके सामने रख दी जाती थीं।

हमारी मेट्रन पहली परेड के दिन कुछ परेशान-सी थी; क्योंकि उसे इस बात का पता न था कि जब सुपरिंटेंडेंट हमारी बारक में आयंगे तो हम लोग क्या करेंगे। सुपरिंटेंडेंट जब आते थे तो सब कैदियों को खड़ा होना पड़ता था, पर कुछ जेलखानों में राजनैतिक कैदियों ने इस मौके पर खड़े होने से इन्कार कर दिया था और इसी कारण हमारी मेट्रन को फिक्र थी कि क्या होगा।

पहला मुआयना तो अच्छी तरह गुजरा। सुपरिंटेंडट बड़ी अच्छी तरह और नर्मी से पेश आए और हमसे पूछा कि तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है और किसी चीज की जरूरत तो नहीं है। मेरी कुछ साथिनों ने कहा कि हमें किताबों की और कुछ और चीजों की जरूरत है। मैं जब तक जेल में थी, पढ़ना चाहती थी। इसलिए मैंने दर्याफ्त किया कि क्या मुझे फ्रेंच और इटालियन भाषा की कुछ किताबें, शार्टहेंट की कुछ पुस्तकें और तीन शब्द-कोष मिल सकते हैं। साथ ही मैंने सुपरिंटेंडेंट से यह भी कहा कि ये सब पढ़ाई की किताबें हैं। इसलिए मुझे उनके अलावा दो-एक उपन्यास भी चाहिएं।

मैंने ये सब किताबें बड़ी संजीदगी से मांगी थीं और मुझे इस बात का ध्यान नहीं रहा कि मैं कैदिन हूं और हम लोगों को एक वक्त में छः से अधिक किताबें रखने की इजाजत नहीं है और शब्द-कोष भी उसी में शामिल हैं।

एक क्षण के लिए सुपरिंटेंडेंट कुछ झिझके, फिर उन्होंने बड़ी गंभीरता

से जवाब दिया, "क्या यह अच्छा न होगा कि मैं ऊंचे अधिकारियों से इस बात की इजाजत मांगलूं कि आप लोगों के लिए जेल में एक छोटे-से पुस्तकालय का इन्तजाम कर दिया जाय ? फिर बहुत-सी किताबों में से तुम जो भी किताबें चाहोगी अपने लिए चुन सकोगी।" मैं जवाब देने में पशोपेश कर रही थी कि मैंने देखा, वे मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं। इसलिए मैंने कहा, "यह तो बड़ा ही अच्छा होगा यदि आपको इसमें ज्यादा तकलीफ न हो तो! देखिये, मैं केवल सूत कातने में ही यहां अपना समय नहीं लगा देना चाहती। मुझे आशा है कि आप मेरी किताबों का जल्द बंदोबस्त कर देंगे।" अधिकारियों के काफी देरतक विचार करने के पश्चात् पूरे दो महीने बाद मुझे ये कीमती किताबें मिलीं।

हममें से हर एक को सिर्फ छः साड़ियां और कुछ और कपड़े रखने की इजाजत थी। हमें ये कपड़े रोज खुद ही धोने पड़ते थे और यह कोई आसान काम न था। खादी मोटी और पानी में भीगकर और भी वजनी हो जाती थी और उसका धोना और भी कठिन होता था। पर जेल में और बहुत सी चीजों की तरह हमें इस काम की भी जल्दी ही आदत पड़ गई। हमें जो खाना मिलता था वह बहुत ही खराब होता था और हम बड़ी हिम्मत करके उसे खाने की कोशिश करते थे, पर उसमें हमें कामयाबी नहीं होती थी। यही नहीं कि खाना खराब होने से हमें खाने में तकलीफ होती थी, बल्कि यह खाना जिस गंदे तरीके से दिया जाता था उसे देखकर ही घिन आती थी। हमने इस बात की इजाजत मांगी कि हमें अपना खाना खुद पकाने दिया जाय और यह इजाजत मिल भी गई। हमने चार-चार छः-छः की टोलियां बना लीं। हर टोली में से एक खाना पकाती थी, एक भाजी काटती थी और एक बर्तन साफ करती थी। इस इन्तजाम से हमें किसी कदर आराम मिला।

एक-एक बारक में हम लोग दस-दस और कभी-कभी बारह होते थे। दिन-भर हमें अपने अहाते में जहां चाहें घूमने की आजादी थी मगर शाम के पांच बजे हमें बंद कर दिया जाता था और दूसरे दिन सुबह छः बजे फिर खोल दिया जाता था। यह समय बिताना बड़ा ही मुश्किल होता था। हममें से हर एक कोई-न-कोई नया ही काम करना चाहती थी। कुछ तो बातें करना चाहती थीं, कुछ पढ़ना और बहस करना और कुछ चाहती थीं कि गा-बजाकर अपना गम गलत करें। कभी-कभी हमें एक-दूसरे से बड़ी कोफ्त और तकलीफ होती थी; लेकिन आम

तौर पर हमने काफी दोस्ती और नर्मी से दिन गुजारे !

बाहर से जो खबरें आती थीं वे अकसर हमें परेशान करतीं और जब कभी कोई बुरी खबर मिलती तो हम कई-कई दिन परेशान रहते। एक बार हमने सुना कि लाठी-चार्ज में हमारी माताजी बुरी तरह जखमी हुई हैं। तफसील मालूम न होने की वजह से मैं और मेरी बहन दोनों सख्त परेशान थीं। फिर भी न तो हमें तार भेजने की इजाजत मिली, न खत लिखने की, इसलिए कि कुछ ही रोज पहले हम दोनों अपने वह खत लिख चुके थे, जिन्हें हर पखवाड़े लिखने की हमें इजाजत थी। ऐसे ही मौके पर इन्सान को जेल में अपनी लाचारी का अंदाजा होता है और दिल में कड़वाहट पैदा होती है।

मुलाकात के दिन हमारे लिए बड़े स्मरणीय दिन हुआ करते थे। कभी-कभी ऐसा होता कि इन दिनों पर कोई भी हमसे मिलने नहीं आता था; क्योंकि हमारे खान्दान के सभी लोग जेल में थे। सिर्फ हमारी माताजी बाहर थीं। उन्हें मेरे भाई, बहनोई और मेरी बहन से मिलना होता था और कभी-कभी ऐसा होता था कि वे तबियत ठीक न होने या किसी और काम के कारण हमसे मिलने नहीं आ पातीं थीं। जब ऐसा होता तो हमें बड़ा रंज होता था।

हर पन्द्रहवें दिन हमारा वजन लिया जाता था और अगर इत्तफाक से किसी का वजन एक आध पौंड बढ़ जाता तो बड़ा ही गज़ब होता था। जिस कांटे पर हमें तोला जाता था उसे हम दोष देते थे और जेल के रद्दी खाने को कोसते थे। जो डाक्टर हमें तोलता था उस गरीब को कभी चैन ही नहीं मिलता था। मेरा तो खयाल है कि डाक्टर जब कभी हमारे बारक में आता तो उसका वजन कई पौंड घटजाता होगा। औरतों के जेल में सिर्फ दो मर्दों को आने की इजाजत थी: एक जेल के सुपरिंटेंडेंट और दूसरे डाक्टर। और हममें से औरतों के हक की हिमायत करनेवाली कैदिने यह कबूल नहीं करती थीं कि कभी-कभी किसी पुरुष से मिल लेना अच्छा ही होता है; लेकिन जब कभी सुपरिंटेंडेंट या डाक्टर वहां आता तो सारे समय वे उन्हीं से बातें करती रहतीं थीं और जेल की हर खराबी के लिए उन्हीं को दोष देती थीं।

गर्जेकि इस तरह हमारी जिन्दगी के दिन-पर-दिन और महीने-पर-महीने गुजरते गए। कभी-कभी हम उदास रहते और उन रिश्तेदारों और मित्रों की याद हमें सताती जिन्हें हम बाहर छोड़ आए थे। कभी हम खुशी और संतोष से काम में, पढ़ने में या एक दूसरे के साथ बहस में अपना समय बिताते।

छोटी उमर की कैदिनें हमारे साथ मित्र भाव से पेश आती थीं। उनमें से कई बड़ी दिलचस्प और होशियार भी थीं। वे नाच और गाना जानती थीं और उनमें से एक एंग्लो-इंडियन लड़की को तो इन बातों में बड़ा कमाल हासिल था। वह एक अजीब लड़की थी और अपनी जवानी में बड़ी खूबसूरत रही होगी। आगे मैं 'मेरी' के नाम से उसका जिक्र करूंगी; क्योंकि मैं उसका असली नाम बताना नहीं चाहती। उसे अकसर सबसे अलग बंद करके रखा जाता था; क्योंकि वह बराबर कुछ-न-कुछ शरारत किया करती थी। बड़ी शरार थी और जिद्दी भी। एक रोज जब वह कुछ देर के लिए अपनी कोठरी से बाहर थी तो मेरे पास आई और कहने लगी, "क्या आप जानती हैं कि मैं एक मशहूर अंग्रेज अभिनेत्री की रिश्तेदार हूं? जी हां, यह बात सच है, हालांकि आप को सच न मालूम होती होगी।" मैंने उससे कहा, "मेरी, तुम जेल में क्यों आई हो और जब आई हो तो ठीक से क्यों नहीं रहती हो? ठीक से रहोगी तो तुम्हें माफी मिलेगी और जल्द बाहर जा सकोगी।" मेरी बात सुनकर उसने कहा, "अच्छा, यह बात है तो सुनिये, आप भी कैदिन हैं और मैं भी कैदिन हूं। मैं आपको एक राज़ की बात बताती हूं। आप जानती हैं कि मैं कई बार जेल आ चुकी हूं। हर बार जब मैं जेल से बाहर जाती हूं तो मर्द मेरे पीछे पड़ जाते हैं। वे समझते हैं कि मैं बड़ी खूबसूरत हूं और उन्हें मुझ पर मेरी चचेरी बहन का शुबह होता है, जो एक मशहूर अभिनेत्री है। वह मुझे इतना तंग करते हैं कि मुझे कुछ-न-कुछ करके वापस जेल आना पड़ता है। यहां आकर मुझे उनसे छुटकारा मिलता है।"

एक रात जब बला की खामोशी छाई हुई थी और सब लोग सो रहे थे उस लड़की ने, जो मेरे करीब ही सो रही थी, मुझे जगाया और कहा, "देखो, तुम कुछ सुन रही हो?" मैंने कान लगाकर सुना तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बहुत दूर किसी जगह घुंघरू बज रहे हैं। मैंने उस लड़की से पूछा, "यह आवाज कैसी आरही है?" उसने कहा, "न मालूम किस चीज की आवाज है, पर उसे सुनकर मेरा दिल डरता है। कहते हैं कि एक नाचने वाली लड़की को मौत की सजा दी गई थी और उसे इसी जेल में फांसी पर लटकाया गया था। हो सकता है कि उसी का भूत इस जेल में घूमता हो।"

मैं यह बात सुनकर कांप उठी। जेल में या जेल के बाहर कहीं भी भूत देखने की मेरी इच्छा न थी फिर भी मैंने ऐसा ज़ाहिर करने की कोशिश की कि मुझे

इसकी ज़रा भी पर्वाह नहीं है। मैंने अपनी साथिन से कहा कि वह ऐसी फिजूल बातें न सोचे। यह हो नहीं सकता कि कोई भूत जेलखाने में आकर बस जाय। मुझे यकीन है कि भूत भी इस जगह आना पसंद नहीं करेगा। मेरी साथिन को यह बात महज़ मजाक की न मालूम हुई और उसने मुझे डांटा। जो आवाज़ हमें सुनाई दी थी वह और दूर चली गई और कुछ देर बाद हमें सुनाई भी न दी।

दूसरी रात हम फिर वही आवाज सुनकर जाग पड़े और हमें इससे कुछ बेचैनी-सी हुई। हम पड़े-पड़े सोचते रहे कि आखिर यह क्या चीज होगी, मगर कुछ समझ में न आया। तीन रातें इसी तरह गुजरीं। चौथी रात वह आवाज और ज्यादा जोर से आने लगी और हमारे बहुत करीब भी होती गई। हमारे दिल दहलने लगे। इसी हालत में हमने एक काली छाया देखी जो एक बारक के कोने पर घूम रही थी। उसी से यह आवाज आ रही थी। कुछ क्षणों तक तो हम समझ नहीं सके कि यह क्या चीज है, फिर एकदम हमारी समझ में यह बात आई कि यह पहरेदारिन होनी चाहिए। इस विचार से हमें इतनी राहत मिली कि हम मारे खुशी के उछल पड़ीं। पहरेदारिन का काम यह था कि वह रोजाना रात को औरतों के पूरे जेल का चक्कर लगाए, मगर वह बहुत सुस्त थी और समझती थी कि सियासी कैदियों के वार्ड तक जाना जरूरी नहीं है। वह हमारी तरफ नहीं आती थी और जेल के दूसरे हिस्सों में गश्त लगाती थी। वह छुम-छुम की आवाज कुंजियों के उस बड़े गुच्छे में से निकलती थी, जो उसकी कमर में लटका रहता था।

हमने तय किया कि दूसरे दिन सुबह दूसरी साथिनों को यह किस्सा सुनायंगे और अपनी ही कमजोरी पर खूब हंसेंगे, पर जब हमने अपना किस्सा सुनाना शुरू किया तो हमने देखा कि हमारी और सब साथिनें एक दूसरी की तरफ कुछ इस तरह देख रही हैं, मानों कोई भेद की बात हो। जब हमने उनसे सवाल किया तो बड़े आग्रह के बाद उन्होंने बताया कि उनमें से हर एक ने वही छुमछुम की आवाज सुनी थी और सब इसी नतीजे पर पहुंची थीं कि हो न हो यह भूत ही है; पर उन्होंने यह बात हमें इसलिए नहीं बताई कि हम उसे सुनकर कहीं डर न जायं!

पर जेल में जितनी बातें होती थीं, उनमें से हर एक ऐसी नहीं थी कि जिस पर हम हंसते। छोटी उमर की बंदिनियों के साथ जो बर्ताव किया जाता था वह ऐसा होता था कि उसे देखकर हमारा खून खौलने लगता था; पर हम

इतने बेबस थे कि उनकी कुछ भी मदद नहीं कर सकते थे। पहरेदारिनें बड़ी खराब होती थीं और अकसर राजनैतिक कैदिनों के साथ सख्ती से पेश आती थीं और उनकी तौहीन करती थीं। जब वे हमसे सख्ती से बात करतीं तो अपने दिल पर काबू रखना मुश्किल होता था, मगर उससे भी ज्यादा तकलीफ यह देखकर होती थी कि वे दूसरी बहनों को बहुत छोटी-छोटी बातों के लिए डांट-डपट दिया करती थीं और बुरा-भला कहती थीं।

दिन धीरे-धीरे बीतते गए। हमने जाड़ों का मौसम गुजारा। उत्तरी हिन्दुस्तान का सख्त और कड़ाके का जाड़ा और ऊपर से यह हाल कि ठंडी और तेज हवा को रोकने के लिए हमारी कोठरियों में दरवाजे तक न थे। सिर्फ लोहे की सलाखें लगी हुई थीं, जो मुश्किल से सर्दी से हमारी हिफाजत कर सकती थीं। फिर कुछ अच्छा मौसम शुरू हुआ, मगर वह बहुत जल्द खत्म हो गया और गर्मियाँ आगईं और लू चलने लगी और आंधियां आने लगीं। यह मौसम बुरा था। हम उसे भी निभा ले गए। फिर एक बार बरसात शुरू हुई और सर्दी के दिन फिर करीब आ गए। दिसंबर के आखिर में मेरी बहन को और मुझे छोड़ दिया गया। हमारे कुछ साथी हमसे पहले ही छोड़ दिये गए थे। कुछ जो हमसे बाद में आए थे उन्हें अभी अपनी मुद्दत पूरी करनी थी। हालांकि हम अपने घर वापस जाने के लिए बेचैन हो रहे थे और हमें छूटने की खुशी हो रही थी फिर भी अपने साथियों को छोड़ते हुए कष्ट जरूर हुआ।

जेल का जीवन कुछ सुखमय तो नहीं था; पर उससे बड़ा भारी तजरुबा हुआ। कम-से-कम मुझे कुछ ऐसी बंदिनियों से दोस्ती करके हर्ष हुआ, जो समाज के लिए बड़ी खतरनाक समझी जाती हैं। उन लोगों के मुकाबले में, जिनसे आएदिन जिन्दगी में मुलाकात होती रहती है, ये लोग इन्सानियत के कहीं बेहतर नमूने थे। मुझे घर जाने का आह्लाद हो रहा था, पर इस विचार से बड़ा दुःख भी हो रहा था कि इन बेचारियों को अभी बरसों यहीं रहना है और जब वे जेल से छूटेंगी तो उनके लिए न कोई घर-बार होगा, जहां वे जा सकें, न उनके सिरपर किसी का साया होगा। न कोई दोस्त और संगी-साथी, जो उस नई जिन्दगी में उन्हें सहारा दे सके! उनके पास सिवाय उस चालाकी के जो उन्होंने जेल में सीखी थी कोई और चीज न थी, जिससे वे अपना पेट पाल सकें। उनके भाग में तो यही लिखा था कि समाज उनको दुतकारता रहे

और वे कुछ दिनों तक इधर-उधर मारी-मारी फिरें और मायूसी की हालत में फिर कोई जुर्म कर बैठें। यह जुर्म वे अकसर जरूरत से मजबूर होकर और अपनी भूख मिटाने के लिए करती हैं। फिर एक बार जेल चली जाती हैं और शायद बाकी सारी जिंदगी वहीं गुजारती हैं।

हम अखबारों में अकसर पढ़ते हैं कि कम उम्र की लड़कियों को किसी बड़े भारी जुर्म के लिए सजा दी गई, या किसी औरत को किसी के कत्ल के इलजाम में सजा का हुक्म सुनाया गया या यह कि किसी औरत को बार-बार जेल भेजा गया। ये खबरें पढ़कर हमारा दिल कांप उठता है कि क्या ऐसी बातें भी हो सकती हैं। हम लोग आराम की जिन्दगी बसर करते हैं और हमारे चारों तरफ ऐसे लोग रहते हैं जो हमारे शुभचिन्तक होते हैं और हमारी निगरानी रखते हैं। इस बात का अन्दाजा भी नहीं हो सकता कि हमारी इन अभागी बहनों को किन-किन प्रलोभनों का सामना करना पड़ता है। हम जब किसी खौफनाक जुर्म का हाल पढ़ते हैं या उसका जिक्र सुनते हैं तो हम फौरन उससे अपनी दहशत और नफरत जाहिर करते हैं; पर मैं यह सोचकर आश्चर्य करती हूं कि अगर हम भी उसी अवस्था में होते, जिसमें ये जुर्म करने वाले होते हैं, तो हम खुद क्या करते? हम लोग कम उम्र वालों की जेल में थे और वहां सजा भुगतने वाली सब लड़कियां इक्कीस साल से नीचे की ही थीं। यह बात सचमुच बड़े अचरज की थी कि इनमें से ज्यादातर लड़कियां, जिन्हें समाज खतरनाक समझता था, स्वभाव की कितनी कोमल, स्नेहमयी और समझदार थीं। अगर उनके साथ नर्मी और दोस्ती का सुलूक किया जाता तो वे दिल खोलकर साफ-साफ बातें करती थीं। मगर इस पर भी इन बदनसीबों को इतनी लम्बी अवधि के लिए जेल में ठूंस दिया गया था। महज इसलिए कि उनका भाग्य कठोर था और गुस्से की हालत में वे खूनी प्रवृत्तियों का शिकार बन गई थीं। ऐसी प्रवृत्तियां हममें से बहुतों की होती हैं, पर हम अपने अच्छे संस्कारों की वजह से उन्हें जाहिर नहीं होने देते। अपने इन दोस्तों को पीछे छोड़ते हुए मुझे बड़ी वेदना हुई। इस बात पर शर्म भी आई कि मुझे तो जिन्दगी की इतनी अच्छी चीजें हासिल हैं और इन बेचारियों के पास कुछ भी नहीं है।

इन लड़कियों में से बचुली नाम की एक लड़की के प्रति मेरे मन में बड़ा स्नेह था। उसका रंग गोरा था, आंखें बड़ी-बड़ी, शरीर स्थूल और ऊँचाई पांच फुट से भी कम। बाल रूखे-सूखे और कंधों पर लटके। जब मैंने उसे पहली

बार जेल की डरावनी दीवार से सटकर खड़े होकर जाली बुनने का काम सीखते देखा तो उसके मोटे-झोटे कपड़े और गंदे रूप के बावजूद भी वह मुझे बड़ी सुन्दर लगी। वह इतनी कम उम्र की थी और उसकी सूरत इतनी भोली-भाली दिखाई देती थी कि मैं हैरान हो गई कि आखिर वह जेल में क्यों है और यह जरा-सी बच्ची ऐसा कौन-सा भारी अपराध कर सकती है। जब मैं उसके करीब गई तो वह कुछ गुनगुना रही थी। वैसा ही एक दर्दभरा गाना अकसर उत्तरी हिन्दुस्तान के पहाड़ी इलाकों में सुनाई देता है।

मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

उसने मेरी तरफ शंकाभरी नजर से देखा और बड़ी नर्मी और झिझक से पूछा—"आप कौन हैं और यहां कैसे आईं?"

"मैं भी एक कैदिन हूं"—मैंने जवाब दिया।

सुनकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। "आपको किस बात पर सज़ा हुई है?" उसने मुझसे फिर सवाल किया। मैंने उससे कहा कि मैं राजनैतिक कैदिन हूं तो उसने मेरी इस बात पर ऐसे सिर हिलाया, गोया वह मेरी बात समझ गई; पर मेरा खयाल है कि वह बात शायद ही उसकी समझ में आई हो। खैर, उसने यह समझ लिया कि मैं उसके साथ दोस्ती करना चाहती हूं और इस बात का इतमीनान कर लेने पर कि मैं जेल की कोई ओहदेदारिनी नहीं हूं, उसने मुझे अपना नाम बताया। उसने लजाते हुए मेरी तरफ सिर उठा कर देखा, मुस्कराई और एक ठंडी सांस भरकर फिर अपने काम में लग गई।

"बचुली, तुम्हें किस लिए सजा हुई?" मैंने उससे पूछा। बड़ी-बड़ी और स्पष्ट आंखों से उसने मेरी ओर देखा और सहज भाव से बोली, "खून के लिए।"

"क्या कहा? खून के लिए?" मैंने उससे भी इस प्रकार प्रश्न किया गोया मुझे उसकी बात का विश्वास ही न हुआ हो और उसने फिर एक बार सिर हिलाकर अपनी बात की पुष्टि की। मुझे न तो अपनी आँखों पर विश्वास आता था, न अपने कानों पर! यह हो कैसे सकता था कि इतनी कम उम्र की बच्चीने किसी को कत्ल किया हो! हो न हो कहीं कुछ गलती जरूर हुई है।"

"बचुली, तुम्हें खून क्यों करना पड़ा?" मैंने फिर पूछा, "आखिर तुम तो इतनी छोटी हो। शायद तुम्हें पता भी न रहा हो कि खून करते समय तुम क्या कर रही थीं। हो सकता है कि अकस्मात् ही ऐसा हो गया हो।"

उसने धीरे से अपना सिर उठाया और फिर एक बार मेरी तरफ देखा। उसकी हँसी गायब हो चुकी थी और उसकी जगह खौफ और नफरत ने ले ली थी जिससे उसका कोमल चेहरा कठोर होगया था।

उसकी कहानी यों है:—

"मैंने अपने पति को ही कत्ल कर दिया।" उसने कहा "वह मुझ पर बहुत जुल्म किया करता था। मुझे पीटता था और अकसर ताले में बन्द कर दिया करता था। वह मुझे फाके भी कराता था। घर में खाने-पीने का सामान बहुत होता, पर वह मेरा हिस्सा भी मुझसे ले लेता और मुझे बहुत कम खाना देता था। जो कुछ बचता उसे या तो वह खुद खा लेता या फेंक देता था। मैं उसे खुश रखने की बहुत कोशिश किया करती थी फिर भी वह मुझे सताने और तकलीफ देने का कोई-न-कोई नया बहाना ढूंढ ही लेता। वह बहुत खूबसूरत था। जब मेरी शादी हुई थी, मैं सिर्फ चौदह साल की थी, मगर मैं उसे पसन्द करती थी और मैंने देवी-देवताओं के सामने सौगन्ध खाई थी कि मैं अपनी माता के कहने के अनुसार इसकी भली बीवी बनकर रहूंगी, उसकी सेवा करूंगी, उसका कहना मानूंगी और उसे खूब खिलाया-पिलाया करूंगी। मगर हमारी शादी के कुछ ही महीने बाद वह मुझ पर अचानक जुल्म करने लगा और उसे इस बात में कुछ मजा आने लगा कि मैं उससे डरती रहूं। उसने मुझसे कहा कि वह मुझे इसलिए सताता है कि ऐसा करने में उसे आनन्द आता है। यह बात सुनकर मुझे बहुत डर लगा। कोई साल-भर मैं यह सब बर्दाश्त करती रही। मेरा पति मुझे अपने मां-बाप के घर जाने की इजाजत नहीं देता था, हालांकि मैं उससे बार-बार विनती करती थी कि मुझे घर जाने दो। दिन-पर-दिन मैं ज्यादा दुखी होती गई। इस सब जुल्म और पीड़ा के होते हुए भी मैं कोशिश करती रही कि वह मुझे चाहे; पर मैंने जितने भी प्रयत्न किये, उनका कुछ भी असर न हुआ। वह किसी भी तरह मुझसे खुश नहीं हुआ। एक दिन सुबह उसने मुझे बहुत पीटा, इसलिए कि मैंने उसका एक कोट, जो वह पहनना चाहता था, धोया नहीं था। मुझे खूब मारने के बाद उसी तरह तड़पता हुआ छोड़कर वह कहीं चला गया। कुछ घंटे बाद वह वापस लौटा। अब उसने नए कपड़े पहन रखे थे और उसके गले में लाल रंग का एक रूमाल बंधा हुआ था। मैं घर का कुछ काम कर रही थी और जब वह आया तो मैंने मुड़कर उसकी तरफ देखा भी नहीं। उसने मुझे आवाज दी, "यहां आ। बेवकूफ

कहीं की ! मेरे नए कपड़े देख। क्या मैं इन कपड़ों में खूबसूरत नहीं दिखाई देता ?" मैंने कुछ जवाब नहीं दिया। सिर्फ अपने कपड़ों की तरफ देखा, जो कि गन्दे और फटे हुए थे।

"बोल !" वह फिर चीखा—"क्या तेरे मुंह में जबान नहीं है, या मेरे नए कपड़े तुमसे देखे नहीं जाते ?" मैं फिर भी खामोश रही। अब वह मेरे करीब आया और उसने मेरे मुंह पर दो तमाचे मारे और मेरी कलाई इस तरह मरोड़ी कि मुझे बहुत तकलीफ हुई। "मुझे छोड़ दो," मैंने कहा, "वरना किसी दिन मैं तुम्हें मार डालूंगी। मैं तुम्हारे नए कपड़े क्यों पसन्द करूं जब तुम खुद तो दिन-भर खाते रहते हो और मुझे भूखा मारते हो ! मैं पूछती हूँ कि आखिर ऐसा क्यों ?" इसके पहले कि मैं अपनी बात पूरी करूं, उसने अपना डंडा उठाकर गालियों की बौछार करते हुए मुझे इतना पीटा, इतना पीटा कि मैं करीब-करीब बेहोश हो गई। इस हालत में उसने मुझे एक तरफ पटक दिया और कहा, "ले, अब तेरा बस हो तो मुझे मार डाल।"— यह कहते हुए उसने डंडा एक तरफ को फेंक दिया और इतमीनान से लेट गया और जरा-सी देर में सो गया। कुछ घंटे बाद मैंने उठने की कोशिश की, पर मेरा सारा जिस्म टूट रहा था। मैं फिर लेट गई। थोड़ी देर बाद अचानक देखा कि मेरा पति एक कोने में सो रहा है। उसने अपने नए कपड़े उतारकर खूंटी पर टांग दिये थे। पर नया रेशमी रूमाल अभी तक उसके गले में बंधा हुआ था। जब मैं उसकी तरफ देख रही थी तो मेरे दिल में उसके लिए नफरत भरी हुई थी। तब अनायास मेरे मन में आया कि मैं उसको मार डालूं और उससे छुटकारा पा लूं। पर कैसे ? मैंने इधर-उधर देखा, पर कोई ऐसी चीज नजर न आई, जिससे मैं उस पर वार करती। फिर मेरी निगाह उस गले के रूमाल पर पड़ी। मुझे नहीं मालूम कि यह बात किस तरह हुई, पर फौरन ही मैं उठ खड़ी हुई और उसी रूमाल को अपने पति के गले में खूब कसकर जोर से बांधने लगी। रूमाल से गला घुटते ही वह जाग पड़ा, उसने हाथ-पैर हिलाए और चीखने का प्रयत्न किया, पर मैं उस रूमाल को मजबूती से कसती ही गई। यहां तक कि उसकी दोनों आंखें बाहर निकल आईं और फिर वह ठंडा हो गया। मैंने उसे उसी हालत में छोड़ दिया और बहुत थकी हुई होने के कारण मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मेरा कुछ ऐसा खयाल था कि वह उठकर मेरी खूब मरम्मत करेगा, पर वह नहीं उठा और मैं वहीं उसके करीब पड़ी रही, इस

तरह कि मैं हिल भी नहीं सकती थी। दूसरे दिन सुबह किसी ने हम दोनों को इसी हालत में पाया। उसने देखा कि मेरा पति मरा पड़ा है। उसने पुलिस को खबर दी और इधर-उधर जाकर सब पड़ोसियों को भी इस बात की खबर कर दी। मैं अब भी कुछ बेहोश-सी थी और मुझे इस बात का यकीन नहीं आता था कि मैंने सचमुच अपने पति को मार डाला है।

"पुलिस के आने तक कोई भी मेरे पास न आया। पुलिस मुझे जेलखाने ले गई। मुकदमा चलने के बाद मुझे इस जेल में भेजा गया और अब मैं यहां हूं। मैं इतनी छोटी थी कि मुझे फांसी नहीं दी जा सकती थी और औरतों को यूं भी फांसी नहीं दी जाती। मुझे उम्र-भर की कैद की सजा मिली। यह है मेरी दास्तान।"

मैंने यह विचित्र कहानी खामोशी से और बचुली के चेहरे पर अपनी नजर जमाकर सुनी थी। मुझे अब भी यकीन नहीं आता था कि जो कुछ वह कह रही है वह सच होगा, पर वह सच तो होगा ही; क्योंकि वह जेल में थी।

बचुली अपनी कहानी खतम करके फिर अपने काम में लग गई, गोया उसने मुझे एक मामूली-सी कहानी सुनाई हो। उसे यह मालूम करने की इच्छा भी नहीं थी कि उसकी कहानी का मुझ पर क्या असर हुआ। उसके लिए यह सारा किस्सा एक ऐसी घटना थी जिसके बारे में वह अपने सीधे-सादे भोले मन से यह मानती थी कि यही उसकी किस्मत में बदा था। जेल में वह अपना जीवन इस तरह बिताती थी, मानो यही उसका भाग्य हो। यह एक ऐसी बात थी जो उसके खयाल में टल ही नहीं सकती थी। फिर परेशान होने से क्या फायदा?

जब मैंने उसके झुके हुए सिर की तरफ देखा तो मेरा दिल टूटने लगा। वह इतनी छोटी और इतनी अपरिपक्व थी कि किसी तरह मुजरिम नजर नहीं आती थी। आखिर किस्मत उसके साथ कैसे इतनी निष्ठुर हो गई थी? उसकी जिंदगी कैसे कटेगी? मैं सोचने लगी—क्या ऐसे मुकदमों पर दूसरे तरीके से विचार नहीं करना चाहिए और जो सजा ऐसे लोगों को दी जाय वह भी किसी और प्रकार की न होनी चाहिए? उम्र-कैद कोई मजाक नहीं है। इसके मानी हैं जेल में कम-से-कम बीस बरस गुजारना, और ऐसी हालत में कि बाहर की दुनिया का कुछ भी हाल मालूम न हो पावे, सिर्फ दूसरे गुनहगार कैदियों के साथ रात-दिन गंदी-से-गंदी गालियाँ और बुरी बातें सुनना, बुरे लोगों को ही

देखते रहना और जेल के अन्दर ऐसी-ऐसी चालाकियां और बुरी बातें सीखना, जिन्हें बाहर की दुनिया में कोई बारह साल में भी न सीख सकेगा। बचुली की उमर पन्द्रह साल की थी। जब वह जेल से निकलेगी तो उसकी उम्र पैंतीस साल की हो जायगी। अपनी पूरी जवानी जेल में गुजारने के बाद क्या वह ऐसी ही सुन्दर और भोली-भाली बनी रहेगी जैसी अब थी? या वह पक्की मुजरिम बन जायगी, जिससे आम लोग नफरत करेंगे, या पापी जीवन बितायगी और उसके लिए अन्त में फिर जेल में पहुंचकर रहेगी?

मैं बड़ी परेशानी में थी। मैंने बचुली के सिर पर हाथ फेरा और कहा, "बचुली, सुनो, मैं तुमसे फिर मिलूंगी। तुम्हें अच्छी तरह काम करना चाहिए ताकि कैद की मियाद में कमी हो जाय और तुम जल्दी ही जेल से छूट जाओ।"

उसके चेहरे पर हंसी खेलने लगी। वह बोली, "जी हां। लोग मुझसे कहते हैं कि अगर मैं किसी को परेशान न करूं और खूब मेहनत से काम करूं तो जल्दी छूट जाऊंगी और मुझे अपनी पूरी सजा जेल में नहीं काटनी होगी। फिर मैं अपने मां-बाप के पास जाऊंगी। कितना अच्छा होगा। मेरा घर पहाड़ों में है और मुझे अपने माता-पिता से बड़ी मुहब्बत है।" मैं भारी हृदय लिये वहां से चल दी। मुझे आशा थी कि इस लड़की को जो लम्बी मुद्दत जेल में काटनी है उसमें इसका साहस और उत्साह कायम रहेगा और उसके कदम डगमगायेंगे नहीं। पहाड़ों की संतान इस जवान लड़की को दरख्त, फूल और खुली हवा की आदत थी। मैदानी इलाके के इस जेल की हवा और यहां की सख्त गर्मी कैसे बर्दाश्त होगी? ऐसी चिन्ता ने मुझे घेर रखा था। तो भी वह खासी मस्त और अपनी किस्मत पर अपने-आपको छोड़े हुए नजर आती थी। मैं उसकी हिम्मत की दाद दिये बिना न रह सकी।

मैंने फिर एक बार नजर दौड़ाई। बचुली अपने काम में मगन थी। उसके साथ मैंने उस जेल में एक साल गुजारा था। मुझे अकसर बाहरी दुनिया की याद आती थी; पर जब मेरे बाहर जाने का दिन आया तो मुझे दुःख हुआ। जेल के बाहर बड़ी-बड़ी आंखों वाली बचुली कहां मिलेगी, जिसके साथ मैं बातें करके और पहाड़ी गीत सुनकर अपना वक्त गुजार सकूं? अपने पीछे उसे जेल में छोड़ जाने के विचार ने मुझे बहुत ही बेकरार कर दिया। आखिर वह दिन भी आया जो उस जेल में मेरे लिए आखिरी दिन था। मैं अपने सब

साथियों से विदा लेने गई। अचानक बचुली ने आकर अपनी दोनों बाहें मेरे गले में डाल दीं। मैंने देखा कि प्यारी बचुली खामोश खड़ी है और उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में आंसू भरे हैं। मैंने उसे चिपटा लिया और उसकी ओर देखकर कहा, "बचुली, देखो हिम्मत से काम लेना और खुश रहने की कोशिश करना। जब तुम बाहर आओ तो मुझे जरूर खबर कर देना और जी चाहे तो मेरे पास चली आना।"

"क्या आप बाहर की इस फैली दुनिया में मुझे भूल न जायंगी?" बचुली ने मुझसे पूछा और फिर खुद ही कहा, "लोग मुझसे कहते हैं कि जो लोग यहां से बाहर जाते हैं, वे कैदियों को याद रखना पसंद नहीं करते।" मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और उसे विश्वास दिलाया कि ऐसा न होगा। इस बात को आज कई साल बीत गये, तो भी उसकी याद मेरे मन में ताजा है और इसी तरह बरसों तक बनी रहेगी।

जब मैंने अपनी कुछ और साथिनों के साथ, जो उसी दिन छूट रही थीं, जेल के अहाते और फाटक से बाहर कदम रखा तो मेरे हृदय से यही प्रार्थना निकल रही थी कि हे भगवान्! बचुली और उस जैसी कम उम्र वाली कैदिनों को अपना सारा जीवन जेल में न बिताना पड़े और नियति की ऐसी कृपा हो कि जिससे वे अपने घरों में वापस आकर सुख और शान्ति की जिन्दगी बसर कर सकें।

मैंने फिर एक बार पीछे की तरफ मुड़कर जेल की उन डरावनी दीवारों को देखा, जिनके भीतर कम उमर की दरजनों लड़कियां बंद थीं और जो साल-भर से मेरा भी घर था। जेल के बड़े दरवाजे बंद हो रहे थे और उनमें से मुझे वे बहनें दीख रही थीं, जो हमें विदा करने अहाते में खड़ी थीं। मैंने उनकी तरफ देखकर अपना हाथ हिलाया और फिर जल्दी से मुंह फेर लिया ताकि उन्हें मेरे आंसू दिखाई न दे सकें; पर उन्होंने मेरे आंसू देख ही लिये और हंसते हुए पूछा, "क्या जेल से बाहर जाते आपका दिल टूट रहा है?" उन्हें पता नहीं था कि मेरे आंसू किस लिए बह रहे थे! वे छोटी उमर की लड़कियों से दूर रही थीं और मेरी और मेरी बहन ने उन्हें जितना पहचाना था, वे उन्हें नहीं पहचान पाई थीं। मेरे आँसू इस लिए नहीं निकल रहे थे कि मैं जेल से बाहर जा रही थी; क्योंकि जेल हमारे लिए कोई आराम की जगह नहीं थी। मेरे आंसू इस लिए बह रहे थे कि मैं अपने पीछे जेल में उन छोटी-छोटी बेबस लड़कियों

को छोड़कर जा रही थी, जिन्हें नादानी की और दुख से तंग हालत में किए गये अपराधों के लिए लंबी-लंबी मुद्दत की सजाएं दी गई थीं। उन्होंने नासमझी और जुल्म की वजह से ऐसे काम किए थे, जो वे कभी भी न करतीं, अगर उन गरीबों के भाग्य में गरीबी, गफलत और बेरहमी न बदी होती। इन्हीं छोटी बच्चियों के लिए, जिनमें इतनी ज्यादा इनसानियत, सादगी और प्रेम भाव भरा हुआ था, मेरा दिल खून के आंसू रो रहा था और उनको छोड़ते दुःख हो रहा था। मैं अपने घर वापस जा रही थी, अपने रिश्तेदारों और प्रियजनों में, जो मेरे स्वागतके लिए तय्यार बैठे थे मगर ये बदनसीब लड़कियां! इनका क्या होगा? मैं इस बात को सोच भी नहीं सकती थी।

मलेरिया हुआ था और उससे मैं बहुत कमजोर हो गई थी। माताजी ने सोचा कि आबो-हवा बदलने से मेरी तबियत ठीक हो जायगी और इस खयाल से उन्होंने कहा कि मैं भी स्वरूप के साथ पूना और बम्बई जाऊं। उनकी इस बात को मैंने बड़ी खुशी से मंजूर कर लिया। हम लोग सीधे पूना गए और कुछ दिन वहां ठहरने के बाद सब बच्चों को साथ लेकर बम्बई चले गये। जब हम पूना में थे तो हमने यरवदा जेल में कई बार गांधीजी से मुलाकात की। वह हमेशा बड़े प्रेम से हमारा स्वागत करते थे और जब कभी इजाजत मिलती थी तो उनके साथ कुछ वक्त गुजारने में हमें बड़ी खुशी होती थी।

मेरी बहन, उनके बच्चे और मैं एक हफ्ता बम्बई रहे। इसी हफ्ते मैं राजा से मिली। पहली बार हमारी मुलाकात एक दावत में हुई और जैसे ही मैंने कमरे में प्रवेश किया मैंने उन्हें देखा। वहां जितने लोग थे, उन सबसे राजा कुछ निराले मालूम हुए। वह औरों के साथ घुल-मिल नहीं रहे थे और ऐसा मालूम होता था कि अपने आपको वे दूसरों से कुछ ऊंचा समझ रहे हैं। इससे मुझे कुछ झुंझलाहट भी हुई और कुछ ताज्जुब भी। हालांकि वे उसी पार्टी के लोगों में से थे, मगर ऐसे जान पड़ते थे, मानो पार्टी से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। वह बिलकुल खामोश और अलग बैठे एक खूबसूरत पाइप पी रहे थे। हमारा एक दूसरे से परिचय कराया गया, मगर इसके सिवा हममें कुछ भी बातचीत न हुई। मेरी आदत है कि जब मैं पहली बार किसी से मिलती हूं तो मेरी नजर उसके हाथों पर जाती है; क्योंकि मुझे हमेशा ऐसा मालूम होता है कि हाथ देखने से लोगों के चरित्र का पता चल जाता है। इसलिए जो चीज़ मैंने सबसे पहले देखी वह राजा के हाथ ही थे, जो बड़े नाजुक और कलापूर्ण थे और उनसे उनके बारे में काफी पता चलता था। हमारी दूसरी मुलाकात एक दावत के मौके पर जुहू में हुई, जिसका राजा ने और एक दूसरे दोस्त ने इन्तजाम किया था। इस मौके पर राजा में और मुझमें बहुत बातचीत भी हुई। हमारी बातें ज्यादातर किताबों और साम्यवाद के बारे में थीं। मैंने राजा से वायदा किया कि अपने भाई के पुस्तकालय से कुछ किताबें उन्हें भेजूंगी। यह हमारी दोस्ती की शुरूआत थी और इसके बाद हमने एक दूसरे से खत-किताबत शुरू की।

मई के महीने में मैं स्वरूप के साथ एक-दो महीने के लिए मसूरी चली गई और वहां से वापसी पर मैंने फैसला किया कि कुछ दिनों के लिए

अहमदाबाद जाकर अपनी सहेली भारती साराभाई के साथ रहूं, जो जल्दी ही ऑक्सफोर्ड जाने वाली थीं। मैंने राजा को खत लिखकर अपने इरादे की खबर दी और लिखा कि मुझे आशा है कि अहमदाबाद या बम्बई में उनसे मुलाकात होगी। उन्होंने मुझे लिखा कि मैं दिल्ली होकर न जाऊं, जैसा कि मेरा इरादा था। उनकी इच्छा थी कि मैं बम्बई से अहमदाबाद जाऊं। मैं इस पर राजी हो गई। खुशकिस्मती की बात कि हमारे खानदान के एक पुराने मित्र को, जो उन दिनों बम्बई में थे, यह खबर मिली कि मैं आ रही हूं। वे और राजा दोनों स्टेशन पर मुझे लेने आए; पर उनमें से एक को दूसरे का पता न था कि वह भी स्टेशन पर हैं। मैं उन दोनों से मिली और वे दोस्त राजा से जिस तरह मिले उससे मुझे कुछ उलझन-सी हुई, पर जब मैंने उन्हें एक दूसरे से मिलाया तो उस दोस्त ने राजा की तरफ बड़े शक की नजर से देखा; पर उनसे कोई सवाल नहीं किया।

उस दिन के बाद से मैंने अपना ज्यादातर वक्त राजा के साथ बिताया। हम सिनेमा देखने जाते थे और मोटर पर दूर तक घूमने भी, पर राजा दूर-दूर से रहते थे। मैं जानती थी कि वे मुझे पसन्द करते होंगे तभी तो मेरे साथ हर रोज इतने घंटे गुजारते थे, फिर भी मैं यह नहीं कह सकती थी कि उन्हें मेरी कुछ पर्वाह भी है, क्योंकि उनके दिली इरादों का किसी तरह पता ही नहीं चलता था। यह भी एक सबब था कि मुझे वह पसन्द आए और मैं उन्हें चाहने लगी।

लोग मेरी ओर काफी ध्यान देते थे और मैं इस बात को माने हुई थी कि लोग मुझे पसन्द करते हैं। यह केवल इसलिए था कि मेरी समझ में इसका कोई सबब न आता था कि वे मुझे नापसन्द क्यों करें, न कि इसलिए कि मैं इस बात को अपना हक समझती थी कि लोग मुझे पसन्द करें। राजा की बेपर्वाही से मुझे कुछ उलझनसी हुई और शायद यही वजह न हो कि वह अपने चारों तरफ जो दीवार खड़ी किये हुए थे उसे तोड़ने की मैंने कोशिश की। हर रोज कई-कई घंटे हम साथ बिताते थे। हम बराबर एक दूसरे से बातें करते रहते, फिर भी कभी एक दूसरे से उकताये हुए नजर नहीं आते थे।

मेरे अहमदाबाद जाने से कुछ ही पहले एक दिन शाम को यों ही राजा ने मुझसे कहा, "यह तो बताइये कि हम दोनों की शादी कब होगी?"

यह एक बड़ा ही सीधा-सादा सवाल था, जो सीधे-सादे ढंग से किया गया था, और एक ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसका दिल वैसा ही सादा और साफ था, जैसा बच्चों का हुआ करता है।

मैं इस सवाल से कुछ हैरान-सी हुई। फिर भी शादी की दरख्वास्त के इस अनोखे तरीके से मुझमें एक तरह की बिजली-सी दौड़ गई। एक हफ्ते से हम दोनों एक दूसरे से बराबर मिल रहे थे और इस मुद्दत में हममें से किसी ने भी प्रेम का एक शब्द भी नहीं कहा था। मैं जानती थी कि मैं राजा को पसन्द हूं, पर मैं यह न समझ सकी थी कि वे मुझसे प्रेम करने लगे हैं। मेरा यह हाल था कि मैं उन्हें जितना ज्यादा देखती थी उतना ही ज्यादा पसन्द करती थी। मैं जितने लोगोंको जानती थी वे उन सबसे कुछ अनोखे थे। फिर भी मुझे यकीन नहीं था कि मुझे उनसे प्रेम है और मैंने राजा से यह बात कह भी दी। राजा ने अपने शांत और खामोश तरीके से मुझे यकीन दिलाया कि भले ही मुझे इस बात का पता न रहा हो, पर मुझे उनसे प्रेम जरूर था और पूछा—"क्या अब मेरी बात का समर्थन करेंगी?" "हां" में मैंने समर्थन नहीं किया। मैंने उनसे कहा कि मैं अहमदाबाद से अपनी वापसी पर उन्हें जवाब दूंगी।

जो एक हफ्ता मैं बाहर रही उसमें राजा मुझे रोज खत लिखते रहे। उनके वे खत बड़े ही सुन्दर थे और उनमें वह शादी की बात पर बराबर जोर दे रहे थे। उनसे दूर होकर मुझे पता चला कि मुझे उनसे कितना प्रेम है और फिर उनके करीब होने को मेरा जी कितना चाह रहा है। मुझे अहमदाबाद का सफर कम कर देना पड़ा, क्योंकि मुझे कुछ ऐसा मालूम हो रहा था कि मेरे लिए बम्बई वापस जाना जरूरी है।

गरज, मैं बम्बई वापस आई और मैंने राजा से कह दिया कि मैं उनसे शादी करूंगी। मैं उस समय एक सपने की दुनिया में थी, पर एक दिन सुबह मेरे पैर फिर जमीन पर आ लगे। मैंने अखबारों में पढ़ा कि माताजी बहुत बीमार हैं। मैंने राजा को टेलीफोन किया कि मैं उसी रात को इलाहाबाद जा रही हूं। भारी दिल से मैं उनसे जुदा हुई और हम नहीं जानते थे कि हम फिर कब मिलेंगे!

जब मैं इलाहाबाद पहुँची तो मुझे पता चला कि माताजी को इलाज के लिए लखनऊ ले जाया गया है। इसलिए मैं भी लखनऊ चल दी।

सिर्फ एक व्यक्ति से मैंने राजा का जिक्र किया था और वे मेरी बहन थीं। अपनी वापसी पर मैंने उनसे कहा कि मैंने राजा से शादी का वादा कर लिया है। पर मैंने उनसे कहा कि अभी किसी से इस बात का जिक्र न करना, क्योंकि माताजी बीमार हैं और जवाहर जेल में हैं। इसलिए हम दोनों ने यह बात अपने तक ही रखी।

माताजी की हालत बहुत नाजुक थी और हमने कई दिन और रातें उनके पास काटीं। जवाहर की कैद की दो साल की मियाद पूरी होने वाली थी, लेकिन चूंकि माताजी की हालत बहुत खराब हो चुकी थी, जवाहर को दो-तीन दिन पहले छोड़ दिया गया। कुछ दिन बाद माताजी की हालत सुधरने लगी।

अब मैंने स्वरूप से कहा कि जवाहर से राजा का जिक्र कर दो। मुझे इसमें कोई बात असाधारण बात नहीं मालूम हुई कि अपने पति का चुनाव अपने घर वालों के मशविरे के बिना करूं, इसलिए कि मुझे हमेशा से इस बात की आजादी थी कि जो चाहूं करूं। यह बात तो मैं सोच भी नहीं सकती थी कि मैं अपनी माताजी, भाई और बहन की मर्जी के खिलाफ कुछ करूं या उनका हुक्म न मानूं, पर मैं जानती थी कि जब तक कोई खास सबब न होगा, वे कोई ऐसी बात न करेंगे जो ठीक न हो। वे लोग राजा के बारे में कुछ नहीं जानते थे, पर मैं जानती थी कि इस शादी को अपनी मंजूरी जरूर देंगे, क्योंकि उन्हें जिस बात का सबसे ज्यादा खयाल था वह मेरा सुख था और मुझे इसका भी यकीन था कि वे सब राजा को जरूर पसन्द करेंगे। मुझे सिर्फ एक ही बात का डर था और वह यह कि वे यह कहेंगे कि हम दोनों एक दूसरे को काफी दिनों से जानते नहीं हैं और यह बात सच भी थी। पर मैं नहीं समझती कि लम्बी मुद्दत तक सम्पर्क रखने से लोग एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह जान सकते हैं।

जब जवाहर ने मुझसे राजा के बारे में बातचीत की तो अपने खास अन्दाज में की। अपनी आंखों में चमक लाते हुए उन्होंने कहा, "अच्छा, तो मैंने सुना है कि तुम शादी का इरादा कर रही हो? क्या तुम उस नौजवान के बारे में मुझे कुछ बता सकती हो जिससे तुम शादी करना चाहती हो?" मैं इस सवाल से कुछ परेशान जरूर हुई, पर मैंने कहा कि मैं बता सकूंगी। जवाहर ने मुझसे पूछा कि राजा क्या करते हैं? मैंने कहा कि वे बैरिस्टर हैं

और उन्होंने हाल ही में अपना काम शुरू किया है। फिर जवाहर ने मुझसे राजा के घर वालों और खानदान के बारे में पूछा। मैंने कहा कि मैं कुछ नहीं जानती। फिर उन्होंने पूछा कि राजा के कितने भाई-बहन हैं। इसका भी मैं कुछ जवाब न दे सकी। अब जवाहर भड़क उठे। मैं कांपने लगी। अपने आपको कोसती थी कि ये सब बातें मैंने राजा से पूछ क्यों न लीं। आक्सफोर्ड में राजा किस कालेज में पढ़ते थे? वहां वह क्या करते रहे? और इसी तरह के कोई एक दर्जन सवाल जवाहर ने मुझसे पूछ डाले। मैं उनमें से किसी एक का भी ठीक जवाब न दे सकी। आखिर जवाहर ने मुझसे पूछा कि जब राजा के नाम के पहले अक्षर 'जी० पी०' हैं तो मैं उन्हें राजा क्यों कहती हूं? 'जी० पी०' से क्या मतलब है? अब मैं सचमुच भयभीत होगई। राजा ने मुझे बताया था कि जी० पी० से क्या मुराद है; पर उस घड़ी मुझे उनका असली नाम याद ही न आ सका। मैंने कुछ डरते-डरते अपने भाई से कहा कि मुझे याद नहीं आता। अब जवाहर बहुत तेज़ हो गए और यह कहते हुए कि 'यह तो बड़ी भयंकर बात है,' वह कमरे से बाहर चले गए और मैं हताश और दुखी होकर बैठी रही।

अब मुझे पता चला कि मैंने वास्तव में बेवकूफी की और इतनी मामूली बातें भी ठीक से न मालूम कर सकी, पर सच तो यह है कि मैं जितने दिन राजा के साथ रही, उनमें इतनी मगन रही कि मुझे कभी यह खयाल भी न आया कि मैं खुद उनके बारे में या उनके खानदान के बारे में बातें पूछूं हमने बहुत बातें की थीं और बहुत-से सवालों पर बहस की थी, पर खुद अपने बारे में एक दूसरे से कुछ न पूछा था। मैं राजा को चाहती थी और मुझे किसी और बात से सरोकार भी न था।

उसी रात मैंने राजा को एक खत लिखा और उनसे जरूरी बातें पूछीं। वे कुछ खफा जरूर हुए; पर उन्होंने यह जवाब भेजा—

नाम—गुणोत्तम हथीसिंग।

स्कूल—नेशनल स्कूल और गुजरात विद्यापीठ।

कालेज—सेंट केथरीन, ऑक्सफोर्ड।

इन्स आफ कोर्ट—लिंकन।

डिग्री—बी० ए० राजनीति, अर्थ-शास्त्र और तत्व-ज्ञान में।

क्लब—कोई नहीं। न किसी में शरीक होने का इरादा है।

पेशा—बैरिस्टर-एट-ला। मुझे उससे दिलचस्पी है। जो भी काम करता हूं उसमें मुझे दिलचस्पी होती है; पर उसका यह मतलब नहीं कि मैं किसी और काम के खयाल से—हो सकता है कि राजनीति के खयालसे—साल दो साल में बैरिस्टरी छोड़ न दूं।

खास शुगल—आराम कुर्सी पर बैठकर पाइप पीना। सोचने की आदत है, जो अकसर लोगों में नहीं होती।

खेल—बहुत साल पहले क्रिकेट खेला करता था। अब कुछ नहीं खेलता।

स्वभाव—लोग समझते हैं कि मैं अहंकारी और स्वार्थी हूं।

शादी के बारे में विचारः—अगर कोई आज़ादी चाहता है और उसे वह कायम रखना चाहता है तो पूरी आज़ादी देने का कायल हूं।

हवाला—किसी का नहीं दे सकता।

भविष्य में तरक्की के मौके—कुछ भी नहीं।

माली हालत—ममूली तौर पर अच्छी खासी। औसत दर्जे के आराम से रह सकता हूं मगर अमीरी ठाठ से नहीं।

आखिरी बात—यह एक दरख्वास्त है—मुमकिन है कुछ अनुचित हो—मिस कृष्णा नेहरू के नाम इस बात के लिए कि ऊपर जिस व्यक्ति का वर्णन है उसके साथ अक्टूबर १९३३ में शादी के लिए राजी हो जाएं।

यह था वह जबाव जो मुझे मिला और उसे पाकर मुझे बड़ा लुत्फ आया; क्योंकि उससे मैं अंदाजा कर सकी कि राजा से खुद उनके बारे में तफसील पूछने पर उन्हें कितनी झुंझलाहट हुई है।

माताजी जब जरा और अच्छी हुईं तो जवाहर बम्बई जाकर राजा से मिले। फिर जवाहर गांधीजी से मिले और उनसे कहा कि मैं राजा से शादी करना चाहती हूं। गांधीजी राजा के खानदानवालों को अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने कहा कि मैं पहले राजा से मिलना चाहता हूं। राजा को वे कुछ-कुछ पहले से जानते थे। इस पर राजा गांधीजी से मिलने गए और गांधीजी ने उनसे जो सवालात किए उनसे राजा बहुत खुश नहीं हुए; पर यह सब होते हुए भी राजा शादी के इरादे से पलटे नहीं और न झिझके,(मुझे यकीन है कि कम बहादुर व्यक्ति ऐसे होंगे जो ऐसी बातों का मुकाबला कर सकें) और उन्होंने जवाहर की यह बात मंजूर की कि लखनऊ जाकर मेरी माताजी से और

ानदान के और लोगों से मिले। वे कोई पन्द्रह दिन बाद लखनऊ आए। ाताजी तब भी अस्पताल में थीं। बहुत कमज़ोर और तबतक खतरे से बाहर हीं हुई थीं। जब माताजी ने राजा को देखा तो उन्होंने फौरन पसंद कर ाया और राजा ने भी माताजी को बहुत पसंद किया। उसके बाद माताजी की ही इच्छा थी कि जितनी जल्दी हो सके, हमारी शादी हो जाए। मैं नहीं ाहती थी कि माताजी की तबियत ठीक होने से पहले शादी हो, पर वह किसी रह इस काम में देर पसंद नहीं करती थीं। समझ रही थीं कि वे शायद ब ज्यादा दिन जिंदा न रह सकेंगी और इसीलिए चाहती थीं कि इससे हले कि उन्हें कुछ हो, मेरी शादी हो जाय और मैं सुख से अपना घर बसाऊं।

२० अक्तूबर १९३३ को सिविल मेरेज के तरीके से मेरी और राजा की ादी आनंद-भवन में हुई। यह उत्सव बहुत सादा था और आध घंटे में खतम ो गया। स्वरूप की शादी के मुकाबले में, जिसमें पूरा एक हफ्ता लगा था, ारी शादी बड़ी ही सादगी से हुई। इस मौके पर हमारे कुछ दोस्त और रिश्ते-ार और राजा के भाई-बहन और चचा कस्तूर भाई लालभाई मौजूद थे। ाताजी अभी तक बिस्तर पर ही पड़ी थीं और अहमदाबाद में राजा की ाताजी भी बहुत बीमार थीं। इसीलिए हमने तय किया था कि हमारी शादी ामोशी से हो जाए।

बापू (गांधीजी) उस समय इलाहाबाद नहीं आ सकते थे। इसलिए उन्होंने ्हला भेजा कि यह शादी वर्धा में हो। मैं यह ज़रूर चाहती थी कि इस समय ार बापू मौजूद हों और हमें आशीर्वाद दें, पर उस पर भी मैं इसके लिए ्यार न थी कि मेरी शादी वर्धा में हो। मैं इस बात को सोच भी नहीं कती थी कि मेरी शादी मेरे उस घर के सिवा कहीं और हो जिसके साथ मेरे चपन की बहुत-सी बातें जुड़ी थीं और जहां मैं अपने पिताजी की गोद में पली ी। हालांकि अब वे हमारे बीच नहीं थे, फिर भी इस घरके साथ उनकी कितनी ातें मुझे याद आती थीं। मेरी शादी में यही एक कसर थी कि वे मुझे कदम-दम पर याद आरहे थे। बापू ने, फिर भी, मुझे आशीर्वाद का एक खत भेजा और अपने हाथ से कते हुए सूत के दो हार—एक राजा के लिए और एक मेरे लिए। उन्होंने मुझे हिन्दी में यह खत भेजा था :

"चि० कृष्णा!

अब तो तुमारा नया जन्म का बहुत कम दिन रहे। विवाह नया जन्म

ही है ना ?

सरूप गुजरात में आई और रणजीत को यू० पी० में खींच लाई लेकिन तुमारे में और सरूप में अंतर है। रणजीत काठियावाड़ी और महाराष्ट्री होने का दावा रखता है। गुणोत्तम सिर्फ गुजराती है और मैं नहीं जानता उसे तू इलाहाबाद खींच ले जायगी। तुमारे तो बहुत कर गुजरात अथवा मुबईमें ही रहना होगा। मेरी उम्मीद है कहीं भी तू रहे खुश रहेगी और माता पिता के नाम को उज्ज्वल रखेगी। ईश्वर तुझे और गुणोत्तम को सहाय करे। विवाह के समय मेरा आना तो नहीं हो सकता, इसलिये यहीं से आशीर्वाद भेजकर संतुष्ट रहना होगा।

बापू का आशीर्वाद।"

वल्लभभाई पटेल उन दिनों नासिक जेल में थे। वहीं उन्होंने हमारी सगाई की खबर सुनी। उन्होंने भी मुझे मुबारकबाद का एक खत भेजा और आशीर्वाद दिया। खत में उन्होंने लिखा कि मेरे बहनोई रणजीत पंडित ने शादी के बाद अपना घर छोड़ दिया था और युक्तप्रांत में आ बसे थे, जहाँ हमारा घर था। गुजरात के लोग मुझे अपने सूबे में रखेंगे और इस बात की इजाजत न देंगे कि मैं उत्तर में चली जाऊं या राजा को अपने साथ ले जाकर वहीं बसाऊं। मेरा खुद भी ऐसा इरादा नहीं था। इसलिए वल्लभभाई की शंका ठीक नहीं थी। पर मुझे यह जान करके बड़ी खुशी हुई कि इतने सब लोग मेरे नए घर में मेरा स्वागत करने को तय्यार थे।

सरोजिनी नायडू हमारे खानदान की बड़ी पुरानी दोस्त हैं। उन्होंने भी मुझे बधाई की एक चिट्ठी भेजी। यह ख़त वैसा ही था जैसा उनका खत होना चाहिए था, काव्य और संगीत से भरा हुआ। उन्होंने लिखा था—

"मेरी प्यारी बिटी, (यह मेरा बचपन का नाम है, जो अब तक मेरे साथ लगा हुआ है) यह बात कितनी खुश करने वाली है कि हमारे मौजूदा रूखे राष्ट्रीय जीवन में अचानक मोहब्बत की एक कली खिलकर फूल बन जाए और अपनी शोभा से सारे चमन को पुरबहार बना दे। तुम दोनों सचमुच कितने शरीर हो कि तुमने अपने इस राज़ को इतने दिन छुपाए रखा। बिटी, मैं तुम्हारे इस नए हासिल किये आनन्द से बहुत ही खुश हूं। सच तो यह है कि मुझे दुगुनी बल्कि तिगुनी खुशी है; क्योंकि मैं जानती हूं कि प्यारी अम्माजी को, (इस नाम से श्रीमती नायडू मेरी माताजी को पुकारा करती थीं)

जो बिस्तर में बीमार पड़ी हैं, अपने मन की आखिरी इच्छा पूरी होने और अपनी नन्हीं बिटिया के दुलहन बनने से कितनी खुशी होगी। मैं यह भी जानती हूं कि यदि पापाजी (पिताजी) जिंदा होते तो वह तुम्हारे इस चुनाव को कितना ज्यादा पसंद करते और तुम्हें कितना आशीर्वाद देते। अपने दिल की भावनाओं को हंसी-मजाक करके किस तरह छुपाते। उनके पुराने शाही दिल में भी यही इच्छा थी और वह कभी-कभी उसका जिक्र भी किया करते थे।

"तुम अपने राजा को जब से जानती हो उससे कहीं पहले से मैं उन्हें जानती हूं। मैं तुम्हें उनके जीवन के कई एक चित्र हूबहू दिखा सकती हूं। मई के एक हफ्ते में वे ऑक्सफोर्ड में नदी किनारे एक किश्ती में पड़े हुए थे और धर्मगुरुओं और महात्माओं पर बड़ी सुन्दर टीका कर रहे थे। वे लंदन के कैफ़े रायल में अपनी लहराती हुई टाई लगाकर और पाइप पीते हुए इस तरह फिरते थे जैसे उन्हें दुनिया में किसी से कुछ सरोकार ही नहीं। पर मुझे उनकी जो आखिरी अदा याद है वह बंबई में बोरीबंदर के स्टेशन पर खद्दरपोश लोगों के एक मजमे के किनारे खड़े होकर जवाहर को रुखसत करना था। वहाँ हर शख्स यही सोच रहा था कि यह कौन है। मुझे भी कुछ अचरज तो हो ही रहा था और गाड़ी निकल जाने पर वह मेरे साथ ही प्लेटफार्म के बाहर निकले; पर किसी बात से भी उन्होंने पता न चलने दिया कि अपनी होने वाली दुलहन के भाई के साथ उनका इस वक्त क्या संबंध है और बहुत जल्द वह संबंध कितना गहरा होने वाला है।

"मुझे मालूम है कि स्वरूप और कमला दोनों यहां हैं और तुम्हारे लिए शादी के जोड़े तैयार कर रही हैं। मैं उनसे यह शिकायत सुनती हूं कि शुद्ध खादी ही के जोड़े खरीदने हैं। इसलिए पसंद का मौका कितना कम है; पर तुम्हारी पोशाक तो इस वक्त तुम्हारा सुख और तुम्हारे सुहाने सपने हैं और तुम अपनी जवानी और नए जीवन के गहनों में लदी फिर रही हो, फिर तुम्हें और कपड़ों की फिक्र या पर्वाह क्यों हो?

"मेरी प्रार्थना है कि तुम दोनों मिलकर अपनी शादी को एक सुन्दर और मज़बूत साथी-जीवन का नमूना बनाओ, जिसकी बुनियाद केवल एक-दूसरे के प्रेम पर ही न हो, बल्कि एक दूसरे को समझने, श्रद्धा और रोजाना की ज़िंदगी में ऐसे काम करने पर हो, जिनसे दोनों को दिलचस्पी हो।

"इस दोस्ती और साथी जीवन में अपने हिस्से के तौर पर तुम कुछ

बड़ी व्यक्तिगत खूबियां अपने साथ ला रही हो, ऐसी खूबियां जिनमें तुम्हारे खानदान की मानता और परंपराओं ने चार चांद लगा दिए हैं। ये वही आदर्श और बड़े काम हैं, जिनसे आज सारे देश को प्रेरणा मिल रही है और इसी कारण तुम्हारी शादी सिर्फ व्यक्तिगत मामला नहीं है। पूरे देश का भी उसमें बहुत कुछ हिस्सा है; क्योंकि तुम मोतीलाल नेहरू की बेटी और प्यारे जवाहर की बहन हो।

"पर तुम मेरी भी छोटी बहन हो और इसी लिए नन्हीं दुलहिन, मैं तुम्हें प्यार भरी दुआएं भेजती हूं और तुम्हारी इस खुशी में शरीक हूं कि तुम्हें अपना साथी मिल गया, जो तुम्हारी जवानी का दोस्त और संगी है।"

इस खत का और इसी जैसे और बेशुमार खतों का जो मेरे पास आए और जिनमें मुझे सुख और आनन्द के आशीर्वाद दिए गए थे मेरे मन-पर बड़ा असर हुआ और मैंने आशा की कि अब मैं जिस नए जीवन में कदम रख रही हूं उसमें जरूर कामयाब होऊंगी।

शादी के कुछ दिन बाद मैंने अपना पुराना घर छोड़ा और नए घर को रवाना हुई और ऐसा करते समय मुझे काफी तकलीफ भी हुई। मुझे यह बहुत बुरा लग रहा था कि मैं अपनी माताजी को, जो अभी बीमार थीं, और अपने खानदान के और लोगों को छोड़कर चली जाऊंगी। मुझे आने वाले जमाने से और अपने नए जीवन मे कुछ डर सा लगता था; पर हर बार जब मैं राजा की तरफ देखती थी, जो मुझपर इस कदर मेहरबान थे, तो मेरी हिम्मत बढ़ जाती थी और मेरे दिल में विश्वास पैदा होता था।

जिस शाम को हम अहमदाबाद जानेवाले थे मेरे तमाम रिश्तेदार, दोस्त और करीब-करीब सारा इलाहाबाद हमसे मिलने और हमें विदा करने इकट्ठा हो गया। मुझे उस समय ऐसी तकलीफ हुई, जैसी पहले कभी न हुई थी। हर एक ने आंखों में आंसू भरकर मुझे गले लगाया, पर मैं अपनी हिम्मत बांधे रही। अन्त में जब गाड़ी चलने वाली थी और सीटी बज गई तो मैं जवाहर से गले मिली। उन्होंने मेरे कान में कहा, "बहन सुखी रहो।" इन तीन छोटे शब्दों ने उन आंसुओं का बंद तोड़ डाला, जिन्हें मैं अब तक रोके हुए थी। माताजी से विदा होते समय मेरा दिल टूट रहा था; पर उनकी खातिर मैंने जब्त से काम लिया और अपने मन को रोके रखा। अब रेल धीरे-धीरे चलने लगी। मेरा मन चाहता था कि रेल से कूद पड़ूं और अपने घरवालों में

वापस चली जाऊं। पर अब तो बाजी लग चुकी थी। पलटना कैसा ?

जब हम अहमदाबाद के करीब पहुँचने को हुए, जहां राजा का घर था, तो उन्होंने पहली बार मुझसे अपने खानदान के हर एक आदमी के बारे में बात की। इस बारे में उन्होंने बड़ी सफाई और निष्पक्षता से काम लिया और मेरे सामने उन सबकी ठीक-ठीक तसवीर रखकर मुझे बताया कि अब मेरे सामने किस प्रकार का जीवन होगा। उन्होंने उन कठिनाइयों का भी ज़िक्र किया, जिनका शायद मुझे मुकाबला करना पड़े और यह भी कहा कि उन्हें यह बात बड़ी नापसन्द थी कि मुझे अपना पुराना घर छोड़ना पड़ रहा था। उन्होंने कहा कि उन्हें कुछ ऐसा मालूम दे रहा था कि वे एक छोटे से दरख्त को, जो एक खास जमीन में लगाया गया था और जो वहां जमकर बहार पर आने लगा था, जड़ से उखाड़कर दूसरी जगह ले जा रहे हैं। अब उसी दरख्त को दूसरी जगह लगाना था और ऐसा करते वक्त उनके मन में अनेक शंकाएं पैदा हो रही थीं। क्या इस तरह एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगा देने से इस दरख्त को फायदा पहुंचेगा ? वह ज्यादा सुन्दर होगा और ज्यादा फल देगा या नए हवा-पानी में वह मुर्झा तो न जाएगा ? जैसे-जैसे राजा का घर करीब आता जाता था, ऐसे सवाल उनके मन को परेशान कर रहे थे और कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें इस बात पर अफसोस-सा हो रहा है कि उन्होंने मुझसे शादी की।

हम लोग बड़े सबेरे अहमदाबाद पहुंचे और स्टेशन पर राजा के घर वालों और दोस्तों ने हमारा स्वागत किया। अहमदाबाद में कुछ दिन गुजारने के बाद हम बम्बई चले गए और इस तरह हमारा नया जीवन शुरू हुआ।

अपनी जवानी में राजा ने सरकारी स्कूल छोड़ दिया था और वे राष्ट्रीय विद्यापीठ में दाखिल हुए थे। बाद में इंग्लैण्ड में उन्होंने राजनीति में भाग लिया जैसा कि अकसर विद्यार्थी करते हैं। वापसी पर उन्होंने तय किया कि जब तक वे बम्बई में अपनी बैरिस्टरी खूब जमा न लेंगे, राजनीति में हिस्सा नहीं लेंगे। कुछ दिनों तक वे अपना काम करते रहे, पर हमेशा उनके मन में राजनीति में भाग लेने की इच्छा होने की वजह से उनके लिए यह मुश्किल हो गया कि दूर से खड़े तमाशा देखा करें। धीरे-धीरे वे फिर सियासत के शिकार हो गए ! मैं यह देख रही थी कि राजा अपने काम से खुश नहीं हैं। वे देश के लिए शक्ति-भर काम करना चाहते थे और अगर जरूरत पड़े तो

आजादी की खातिर अपनी हर प्यारी चीज कुर्बान करने के लिए तैयार थे।

अब तक किसी खुदगर्जी के खयाल ने राजा के राजनैतिक काम को खराब नहीं किया है और मुझे विश्वास है कि आगे भी इसके खिलाफ कभी भी न होगा। वे हमेशा इस बात के इच्छुक रहे हैं कि पीछे रहकर खामोशी से अपना काम करते रहें, जहां किसी की नजर भी उनपर न पड़ सके। पिछले कई साल से बहुत-सी बार उन्हें मायूसियों का सामना करना पड़ा, फिर भी वे जमकर और बिना हिचकिचाहट के इसी तरह काम करते आए हैं।

राजा उन लोगों में से हैं जिनकी उमर चाहे कितनी ही क्यों न हो जाए, वे हमेशा अपनी बचपन की-सी सादगी और कुछ सिद्धान्तों पर अपना अटल विश्वास कायम रख सकते हैं। वे ईमानदार और साफ दिल वाले हैं और अपने साथी इन्सानों की अच्छाई पर उन्हें बड़ा भारी विश्वास है। वे खुद अपने लिए चाल-चलन के बड़े कड़े नियम बनाकर उनका पालन करते हैं; पर उन लोगों को दोष नहीं देते या बुरा नहीं कहते जिनके नियम भिन्न हैं ऐसे लोगों को जो दिल से आदर्शवादी होते हैं, जब उन्हें मायूसी होती है तो उन्हें बहुत दुख होता है।

बहुत-से लोगों को राजा को देखकर यह खयाल होता है कि वे असभ्य और खुदपसंद हैं। यह बात ठीक नहीं है। उनका सबसे बड़ा दोष—अगर उसे दोष कहा जा सके तो—यह है कि वे बहुत ज्यादा भावुक हैं। शुरू उमर में उन्हें यह आदत पड़ गई कि वे और लोगों से अलग रहे, क्योंकि वे औरों से कुछ भिन्न थे और इसी कारण उनके बारे में लोगों को गलतफहमी होने लगी। उनकी इसी अलग रहने की आदत की वजह से लोग उन्हें खुदपसंद या घमंडी समझने लगते हैं। जो लोग उन्हें अच्छी तरह जानते हैं वे उन्हें पसंद किए बिना नहीं रह सकते, उनकी खूबियों की वजह से नहीं (क्योंकि उनमें कुछ खूबियां भी हैं) बल्कि उनके उन्हीं ऐबों और कमजोरियों की वजह से, जिन्होंने उन्हें ऐसा अच्छा इन्सान बनाया है!

: ८ :

हम प्रवासी हैं और जिस राह जा रहे हैं, उसी राह के एक तंतु हैं। हम रुकते हैं, ठहरते हैं; परन्तु काल के प्रवाह के अनुसार कोई जितनी देर ठहर सकता है, उतनी ही देर।

—सेसिल डे ल्यूइस

१९२० से हमारा जीवन आए दिन कुछ इस तरह बदलता रहा है कि मुझे कभी यह पता नहीं चला कि अब इसके बाद क्या होगा। पहले तो मुझे इस तरह की जिंदगी में बड़ा मजा आता था; पर जब दिन-प्रति-दिन वर्ष-प्रति-वर्ष अनिश्चित रूप से बीतने लगे तो कभी-कभी इसकी वजहसे तबियत परेशान होने लगी। इसके मुकाबले में मेरा शुरू का विवाहित जीवन बहुत ही शांत था और मैं आशा कर रही थी कि वह इसी तरह जारी रहेगा, कोई बड़ा भारी तूफान नहीं आयगा, पर मैं ऐसी बात की आशा कर रही थी जो हासिल नहीं हो सकती थी।

शुरू के महीनों में जिंदगी कुछ आसान न थी। अहमदाबाद नए कारखानों का और उद्योग-धंधों का बड़ा भारी केन्द्र है और उसमें वे ही सब बातें पैदा हुई हैं, जो पुरानी रस्मों और रीति-रिवाजों से औद्योगिक क्रांति की टक्कर होने से पैदा होती हैं। यह एक बिलकुल नई दुनिया थी, जिसका मुझे कुछ भी पता न था। मेरा जिस दुनिया से सम्बन्ध रहा था उसके मुकाबले में यहां की हर चीज निराली मालूम होती थी। जिंदगी का दृष्टिकोण, रस्म-रिवाज, रहन-सहन के तरीके, लोगों की आदतें सभी तो भिन्न थीं। मैं अपने पति के घर में जिन लोगों से मिली उनमें से हर एक मेरे साथ बड़ी नर्मी और महरबानी से पेश आया, फिर भी कभी-कभी मैं वहां अकेलापन-सा महसूस करती थी और खोई हुई-सी रहती थी। अगर राजा के लिए मेरे मन में इतना गहरा प्रेम न होता, जितना कि है, तो मुझे यह नया जीवन बहुत मुश्किल मालूम होता। मेरी मायूसी की घड़ियों में राजा की मोहब्बत और सूझ-बूझ ने तथा

उनके खानदानवालों ने मेरा जो खयाल रखा उसी ने बड़े नाजुक मौकों पर मुझे संभाल लिया। मुमकिन है मैं बहुत-से मौकों पर राजा का साथ न दे सकी होऊँ; पर उन्होंने हर मौके पर मेरा साथ दिया है।

मेरी शादी हो जाने के कुछ महीने बाद मुझे जवाहर का एक खत मिला, जिसने मुझे अपने कामों को ठीक करने में बड़ी मदद दी। उन्होंने लिखा था: "शादी के बाद की अपनी जिंदगी के नये तजुरबे में तुम्हें जीवन को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से देखना होगा और उससे अकलमंदी सीखनी होगी। पर इन्सान को अकल अकसर बहुत कुछ खोकर और कई साल गुजार कर, जो फिर वापस नहीं आ सकते, हासिल होती है। जिन लोगों को जेल का तजुरबा है वे कम-से कम सब्र की कीमत तो जानते ही हैं और अगर उन्होंने अपने इस अनुभव से फायदा उठाया हो तो वे यह बात भी सीख जाते हैं कि किसी भी परिस्थिति में अपने-आपको किस तरह ठीक से खपाया जाय। यह बड़ी भारी चीज है। मुझे आशा है कि तुम बहुत जल्द अपने नये घर में जम जाओगी। मेरी छोटी बहन, हमेशा सुखी रहो!"

यह बात कुछ अजीब-सी मालूम होगी मगर सच है कि शादी के बाद के शुरू के कुछ महीनों में मेरी सबसे बड़ी दिक्कत खाने की थी। मैं खाने-पीने के बारे में कुछ खास खयाल कभी भी नहीं रखती थी, पर मुझे गोश्त और मछली बहुत पसंद थी, जैसी कि ज्यादातर काश्मीरियों को होती है। अहमदाबाद में मैंने देखा कि घर पर हर शख्स कट्टर शाकाहारी है। खाने में न गोश्त, न मछली, न अंडे। यह भी मुमकिन न था कि किसी होटल या रेस्टराँ जाकर ये चीजें खाई जातीं; क्योंकि ऐसी बातें वहां होती ही न थीं। मुझे गुजराती खाना पसंद था; पर सिर्फ शाक-भाजी से मेरा पेट नहीं भरता था। तीन महीने मैंने शाक भाजी पर गुजारा किया और सच तो यह है कि मैं इस अरसे में करीब-करीब भूखी ही रहती थी। बाद में मैंने इस बात की आदत डाली कि गोश्त पर इतना ज्यादा निर्भर न रहना पड़े और अब मेरा यह हाल है कि मैं खुशी से बड़ी लंबी मुद्दत तक बिना गोश्त के काम चला सकती हूं।

राजा का खानदान अहमदाबाद के चोटी के व्यापारी खानदानों में से है। उनके पिताजी का बरसों पहले देहांत होगया था, जब कि बच्चे बहुत छोटे थे उस। वक्त राजा की माताजी ने कारोबार अपने हाथ में लिया और

बहुत कठिनाइयों के होते हुए भी उसे कामयाबी से चलाती रहीं। बरसों तक वे काम देखती रहीं, यानी उस समय तक जब तक कि उनके बेटों ने बड़े होकर काम को खुद न संभाल लिया। उन कठिनाई के दिनों में उन्होंने अपने बच्चों की तरफ से गफ़लत नहीं बरती,बल्कि बड़े प्रेम और चाव से उनकी देख-भाल करती रहीं और उनकी छोटी-छोटी जरूरतें भी पूरी करती रहीं। राजा के घर वाले भी कुछ अलग रहने वाले और खामोश लोग हैं, जैसे सभी व्यापारी होते हैं और वे मन के भाव दूसरों पर ज़ाहिर नहीं होने देते। मैं इस चीज को समझ न सकी और अकसर मैंने यह भी सोचा कि इस तरह अलग रहने का मतलब उनमें प्रेम का अभाव है।

राजा का संयुक्त परिवार है, पर उनके घरवाले किसी के रहन-सहन के तरीके में शायद ही कभी दख़ल देते हैं। हर एक को आज़ादी है कि जिस तरह चाहे, रहे। पर उनका खानदान बड़ा ही संगठित है और एक दूसरे से उनके सम्बन्ध बहुत गहरे हैं, केवल एक साथ तिजारत की वजह से नहीं, बल्कि आपस के गहरे प्रेम की वजह से। अहमदाबाद का व्यापारी-वर्ग तंग नजर, पुराने विचारों का और अपने ही तौर-तरीकों को अलग समझने वाला है और अकसर वह ऐसी बातें चाहता है जिनसे व्यक्ति-मात्र के अपने जीवन में गैर-ज़रूरी खलल पड़ता है और उसे परेशानी भी होती है, खासकर ऐसी हालत में जब कि वह व्यक्ति संयुक्त परिवार का एक सदस्य हो।

मैं मानती हूँ कि पुराने ज़माने के संयुक्त परिवार निस्संदेह उपयोगी सिद्ध होते थे और उस ज़माने की सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयुक्त थे। पर वह ढाँचा अब तेजी से गिर रहा है और अपने पुराने रूप में कायम नहीं रह सकता। ऐसा मालूम होता है कि इस बारे में हिन्दुस्तान-भर में बराबर एक तरह की रस्साकशी चल रही है। हर व्यक्ति अपने मनमाने तरीके से रहना चाहता है। दूसरी तरफ संयुक्त परिवार की मांग है कि उसमें जितने लोग शामिल हैं सब एक ही प्रकार का जीवन बिताएँ। कुदरती-तौर पर इन दोनों में ख़ानदान का असर दिन-पर-दिन कम होता गया। यह चीज सिर्फ व्यक्ति के जीवन ही में नहीं,बल्कि राष्ट्र के जीवन में भी रुकावट बनने लगी और उन शक्तियों का साथ न दे सकी जो इस वक्त दुनिया को हिला रही हैं। मैं मानती हूँ कि संयुक्त परिवार को धीरे-धीरे ग़ायब होना पड़ेगा, पर हिन्दुस्तान बहुत बड़ा देश है और उसके अतीत में उसकी जड़ें मजबूती से गड़ी हुई हैं।

इसीलिए इस काम में कुछ वक्त जरूर लगेगा।

पर इकाई के रूप में परिवार का ख़ासकर—छोटे परिवार का बड़ा महत्त्व है। आनन्द-भवन में मेरे माता-पिता, जवाहर और उनके बीवी-बच्चे, मेरी बहन और मैं एक साथ रहते थे और हम सबका मिलकर एक छोटा परिवार था; पर हमारे यहाँ कोई ऐसा ख़ास कायदा न था, जिससे हम एक-दूसरे के साथ बंधे हुए हों। हम सब एक ही घर में रहते थे, पर सब अपने-अपने व्यक्तिगत तरीके से रहते थे और शायद ही कभी किसी की एक दूसरे से टक्कर होती थी। हम सबको एक साथ जकड़े रहने के लिए मुहब्बत के सिवा कोई और बंधन न था और प्रेम की डोर सचमुच सब बंधनों से ज्यादा मज़बूत होती है। आर्थिक बंधन, जो संयुक्त परिवार में एक को दूसरे में बांधे रखते हैं, जल्दी या देर से बंधन ही बन जाते हैं और व्यक्ति को दबाकर उसकी प्रगति और विकास को रोक देते हैं।

मेरे ऐसे विचार कुदरती-तौर पर राजा के खानदान वालों के विचारों से और कभी-कभी खुद राजा के विचारों से टकराए। हमें पता चला कि बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिन पर हमारे विचार एक-से नहीं हैं और कभी-कभी तो हमारे विचार एक दूसरे से रगड़ खाते हैं। ऐसे मौकों पर और बाद के सब बरसों में राजा ने जिस धीरज और समझदारी से काम लिया वह बड़ी महान् और अनुपम चीज थी और इसी ने मुझे शुरू के कुछ महीनों में, जो हमेशा बड़े मुश्किल दिन होते हैं, बड़ी सहायता दी।

अपनी शादी के बाद कुछ महीने हम राजा के घरवालों के साथ रहे। बाद में हम अलग मकान में रहने लगे। यह मकान छोटा था मगर बिलकुल नए तर्ज़ का और मुझे बहुत पसन्द था। घर चलाने का मुझे कम ही तजुर्बा था और कभी-कभी तो मुझे इस काम में बड़ी परेशानी और काफी मुश्किल भी हो जाती थी। मगर फिर भी खुद अपना घर चलाने में एक ख़ास तरह का लुत्फ़ आता था। अपनी ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा मैंने एक बहुत बड़े मकान में गुज़ारा था और वहां हर बात का बहुत ही शानदार इन्तज़ाम होता था; इसलिए एक छोटे-से मकान में सादगी से रहना मेरे लिए एक बिलकुल नया तज़ुर्बा था।

राजा अपने काम पर चले जाते थे और मैं दिन-भर अकेलापन महसूस करती थी। मैं बम्बई में कुछ ज्यादा लोगों को नहीं जानती थी और राजा के

दोस्तों के सिवा मैं जिन लोगों को जानती थी वे मेरे पिताजी के पुराने दोस्त और उनके खानदान वाले थे। मैं बहुत जल्द दोस्ती कर लेती हूँ। इसलिए ज्यादा दिन नहीं गुजरे थे कि बहुत-से लोगों से मेरी जान-पहचान और काफी लोगों से दोस्ती भी हो गई। जीवन में सुख और सन्तोष था।

सन् १९३४ की सर्दियों में जवाहर फिर एक बार जेल में थे। वे तो हर साल का ज्यादा हिस्सा जेल में ही बिताते हैं। हम लोग उनसे कई महीनों से मिले नहीं थे। इसलिए जब कमला ने खत लिखकर मुझसे यह पूछा कि क्या राजा और मैं जवाहर से मिलना चाहते हैं तो हमने इस विचार को बहुत पसन्द किया। मुलाकात तय हुई और हमने तय किया कि हम कमला से मिलें और उन्हीं के साथ देहरादून जायें। मुलाकात की तारीख को हम जेल के दरवाजे पर पहुँचे और कोई आध घंटे बाहर इन्तज़ार करने के बाद जवाहर की कोठरी में ले जाए गए। मुलाकात का कायदा यह है कि कैदी से जेल के दफ्तर में मिला जाता है लेकिन जवाहर की कोठरी बाहर के ब्लाक में थी इस-लिए हमें अन्दर जाने की इजाज़त मिली। राजा इससे पहले कभी जेल के करीब भी नहीं गए थे और यह उनकी पहली ही मुलाकात थी। मैंने जो और जेल देखी हैं उनके मुकाबले में देहरादून जेल आधी भी डरावनी नहीं है, पर एक ऐसे शख्स के लिए, जो कभी किसी हिन्दुस्तानी जेलखाने के करीब भी न गया हो, देहरादून जेल भी काफी भयानक जगह थी। हम लोग जवाहर की कोठरी में बैठे, जिसमें सामान के नाम पर एक लोहे का पलंग, एक मेज और एक कुर्सी थी। कुछ किताबें इधर-उधर पड़ी थीं और एक कोने में एक चरखा रखा हुआ था। यह बड़ा ही उदासी से भरा दिन था, सर्द हवा चल रही थी और ,जवाहर की कोठरी सुनसान और फीकी दिखाई देती थी। जवाहर ने, जैसी उनकी आदत है, हंसते हुए हमारा स्वागत किया। फिर भी वे दुबले और कुछ बीमार-से दिखाई दे रहे थे। कमला को और मुझे इन बातों की आदत थी और हम अपने अज़ीज़ों को इससे पहले भी ऐसी ही हालत में देख चुके थे। पर राजा के लिए यह चीज नई थी और वे यह सारा दृश्य देखकर कुछ हैरान-से रह गये। पूरी मुलाकात में वे करीब-करीब चुप ही रहे, कमला ने और मैंने ही सारी बातें कीं। जब हम घर वापस लौटे तो वे किसी से एक शब्द भी कहे बिना सीधे अपने कमरे में चले गये। कुछ देर बाद भी जब वे वापस नहीं आए तो मैं यह देखने गई कि क्या बात है। मैंने देखा कि वे

अपने बिस्तरे पर पड़े कुछ सोच रहे हैं और उनके चेहरे पर अजीब परेशानी है। इसके बाद राजा कई बार जवाहर से जेल में मुलाकात कर चुके हैं, पर अब भी जब कभी वे जेल तक हो आते हैं तो उन पर एक तरह की उदासी छा जाती है। अपने अज़ीज़ों से साल-ब-साल जेल की शलाखों के पीछे मिलते रहना कोई सुख देने वाली बात नहीं है। इसका लाज़मी नतीजा यह होता है कि आदमी ग़मगीन हो जाता है और कभी-कभी उन लोगों के साथ, जो हमसे इस तरह दूर हो चुके होते हैं, कुछ वक्त गुजार देने की भूख बढ़ती रहती है। पर यह बात होते हुए भी इसके कारण हम अपने-आपको बेबस या दुखी नहीं महसूस करते, बल्कि इस बात का निश्चय कर लेते हैं कि देश के लिए लड़ाई ज़ोर से जारी रखेंगे। आज राजा भी अपने और हजारों साथियों समेत जेल में हैं और हमने एक-दूसरे को साल भर से देखा तक नहीं है। कभी-कभी जब मुझे अकेलापन महसूस होता है और राजा की याद सताती है और उन्हें मेरे खतों से इसका पता चल जाता है तो वे मुझे छेड़ते हैं और मुझे ऐसी कमजोरी दिखाने पर शरमाना पड़ता है।

कुछ साल तक राजा राजनीति में 'सक्रिय भाग लेने से दूर रहे, पर हालात कुछ ऐसी तेज़ी से और इस तरह बदलते गये कि उनके लिए देश-सेवा से दूर रहना मुश्किल होता गया और आखिर वे धीरे-धीरे उसमें पड़ ही गये। बहुत-से लोग यह खयाल करते हैं कि इस बारे में मैंने उन पर असर डाला और उनसे वकालत छुड़ाई, पर उनका यह खयाल बिलकुल ग़लत है। मैं राजनीति का अर्थ खूब जानती थी—अनिश्चितता, तबदीलियां, जेल और लम्बी मुद्दत के लिए जुदाइयां। मैं तेरह साल तक यह सब-कुछ देख चुकी थी और नहीं चाहती थी कि मुझे अब जो नया सुख और शांति मिली थी उसे खो दूं। मैं राजनीति में सक्रिय भाग लेना नहीं चाहती थी। मेरे लड़के बहुत छोटे थे। मैंने देखा था कि जवाहर के और स्वरूप के बच्चों को बचपन ही से घर का जीवन और घर की शांति न मिलने की वजह से कैसी तकलीफें हुई थीं। फिर भी मेरे आस-पास जो कुछ हो रहा था उसका असर मैं कबूल किये बिना नहीं रह सकती थी। इसलिए मुझसे जो कुछ बन सकता था मैं करती रही, पर राजा का दिल चाहता था कि पूरी तरह देश की लड़ाई में कूद पड़ें और मैंने इस बात को मुनासिब न समझा कि उन्हें इससे रोकूं। थोड़े-से सुख के बाद मैंने फिर एक बार अपने-आपको गिरफ्तारियों, जेलखानों और जुदा-

इयों के लिए तैयार किया ।

हम बम्बई में रहते हैं और मुझे यह विशाल नगरी बहुत पसन्द है। इलाहाबाद भी मुझे बहुत अच्छा लगता था, पर केवल इसलिए कि वह मेरा घर था। बड़ा शहर मुझे शायद इसलिए प्रिय है कि मैंने अपनी आधी ज़िंदगी एक छोटे शहर में गुज़ारी है। बम्बई मुझे पसन्द आया, क्योंकि यहां मुझे ऐसे दोस्त मिले, जिन्होंने बड़ी हार्दिकतापूर्वक मेरा स्वागत किया। इस शहर के बारे में कोई ऐसी बात जरूर है जो इन्सान की दिलचस्पी उसमें कायम रखती है। समुद्र मेरे लिए बिलकुल नई चीज थी और उसने मेरा दिल लुभा लिया। समुद्र के बारे में मैं जो कुछ जानती थी वह सिर्फ इतना था कि मैंने यूरुप जाते हुए समुद्र देखा था। मैं कभी भी लम्बी मुद्दत के लिए समुद्र के करीब नहीं रही थी। पर बम्बई में मैंने जी भरकर समुद्र देखा और लहरों को एक-दूसरे से टकराते हुऐ या गुस्से से किनारे के पत्थरों पर सिर पटकते हुए देखकर मैं कभी भी उकताती न थी।

मेरे लिए दिन काटना मुश्किल हो जाता था। इसलिए मैंने समाज सेवा का कुछ काम शुरू किया और औरतों की कई संस्थाओं में शरीक हो गई। हमने गरीबों के गंदे मुहल्लों में जाकर काम किया। मुझे यह काम दिलचस्प मालूम होता था, पर यह देखकर मेरा मन बैठ जाता था कि यहां इतनी ज्यादा गरीबी और विपदा है और फिर भी हम उसे दूर करने के लिए कुछ खास काम नहीं कर सकते।

जनवरी १९३५ में माता जी हमसे मिलने आईं। जवाहर जेल में थे और कमला का कलकत्ते में इलाज हो रहा था। बापू बहुत दिनों से माताजी से कह रहे थे कि वे कुछ दिनों के लिए वर्धा आकर रहें और क्योंकि वे इलाहाबाद में अकेली थीं उन्होंने वर्धा जाने का फैसला किया। वर्धा से वह बम्बई आईं। मेरे नये घर में वह पहली बार आई थीं और मुझे उनके आने से बड़ी खुशी हुई। उनका इरादा महीना भर रहने का था मगर बदनसीबी से तीन हफ्ते बाद उनको लकवा मार गया और कोई दो महीने वह बहुत सख्त बीमार रहीं। मेरी बहन और मेरी मौसी बम्बई आईं और मैंने कई दिन और रातें बड़ी फिक्र में गुज़ारी जब कि माताजी जिंदगी और मौत के बीच झूल रही थीं।

उसी जमाने में जब माताजी की तबियत ठीक हो रही थी हमारा लड़का हर्ष, फरवरी १९३५ को पैदा हुआ। माता जी को इससे बड़ी खुशी

हुई। हर्ष उनका पहला नाती था; क्योंकि मेरी बहन और भाई दोनों के लड़कियां ही थीं।

धीरे-धीरे माताजी की तबियत ठीक होती गई, पर यह असल में उनके अंत की शुरूआत थी। वह फिर कभी पहले की तरह ठीक नहीं हुईं।

अप्रैल १९३५ में कमला की तबियत जो पहले से खराब थी और ज्यादा खराब हो गई। डाक्टरों ने सलाह दी कि जैसे ही वह इस काबिल हों कि सफर कर सकें तो उन्हें स्विटजरलैंड भेज दिया जाय। उस वक्त वे भुवाली के एक स्वास्थ्य-गृह में थीं। भुवाली युक्तप्रान्त का एक छोटा-सा मुकाम है। राजा ने और मैंने तय किया कि उन्हें देखने जायँ और उनके बाहर जाने से पहले कुछ दिन उनके साथ गुजारें। इसलिए हम अपने दो महीने के नन्हे बच्चे को लेकर भुवाली पहुँचे। उनके जाने से पहले हमने एक महीना उनके साथ गुजारा। हमें उस वक्त यह ख्याल भी न आया कि हम उन्हें फिर कभी न देख सकेंगे। इसके कोई साल-भर बाद कमला की मृत्यु हो गई।

कमला की मृत्यु की खबर आने के चार दिन बाद हमारा लड़का अजीत पैदा हुआ। इस बच्चे के पैदा होने की हमें बड़ी खुशी होती, पर कमला की मौत ने हमारी ज़िन्दगी पर ग़म का बादल बिछा दिया था और हमारे दिल इस दुःख से इतने भारी होगये थे कि हम अपने बच्चे की पैदाइश की खुशी नहीं मना सकते थे। फिर भी मेरा ख्याल है कि इस बच्चे की उस वक्त मौजूदगी ने हमारी बड़ी मदद की और हमारे ग़म और दुःख का बोझ बहुत-कुछ हलका कर दिया।

: ९ :

सुन्दरतम वस्तुओं का अन्त भी शीघ्र ही हो जाता है। उनकी सुरभि उनके बाद भी कायम रहती है; लेकिन उस व्यक्ति को, जो गुलाब के पुष्प को ही प्रेम करता था, उसकी सुगन्ध कड़वी प्रतीत होती है।

—फ्रांसिस टॉम्पसन

मैंने पहली बार कमला को एक दावत में देखा था जो पिताजी ने आनन्द-भवन में दी थी। उस वक्त मैं बहुत ही छोटी थी और मुझे दावत में शरीक होने की इजाज़त नहीं मिली थी, पर मैं बरामदे में खड़ी रहकर तमाशा देख सकती थी और मैंने देखा भी। शायद मेरी किसी मौसी ने मुझे कमला को दिखाया और कहा—"वह लड़की देखो, क्या तुम्हें वह पसन्द आयगी? वही तुम्हारी भाभी होगी?" मैंने उस तरफ देखा जहां मेरी मौसी दिखा रही थीं, तो मैंने एक लम्बी, पतली और बड़ी ही खूबसूरत लड़की को कुछ और लोगों के साथ एक मेज पर बैठे देखा। मैं यह भी नहीं जानती थी कि भाभी का क्या मतलब होता है, पर मैं इतना समझ गई कि वह हमारे यहाँ रहने आ रही हैं। मैंने सोचा कि चलो, अच्छा हुआ एक और बहन आ रही हैं, पर अच्छा होता अगर वह छोटी होतीं और उम्र में मेरे बराबर होतीं। मेरे मन से कमला की वह पहली तसवीर और सत्रह साल की उम्र में उसकी वह भरी जवानी और ताजगी मेरे मन से कभी दूर नहीं हुई।

कुछ महीने बाद दिल्ली में जवाहर की शादी हुई और कमला हमारे साथ रहने आई। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे माता-पिता अपनी खूबसूरत बहू को लोगों को कितने फख्र के साथ दिखाया करते थे। वह केवल खूबसूरत ही नहीं थीं बल्कि खूब तन्दुरुस्त भी थीं; उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता

था कि वह अपनी जिन्दगी का ज्यादा हिस्सा बीमारी में और बिस्तरे में गुजारेंगी। कमला और जवाहर के लिए शादी की जिन्दगी शुरू में तो खूब अच्छी रही। उनका भविष्य खूब रोशन नज़र आ रहा था और कहीं कोई काला बादल दिखाई नहीं देता था। खुशी और सुख के कुछ साल इसी तरह गुज़रे। फिर अचानक कुछ तबदीलियां आरम्भ हुईं। जवाहर राजनैतिक कामों में पड़ गए और पिताजी भी। और कई बड़े परिवर्तन हो गए; क्योंकि एक दुबले-पतले शख्स ने, जिसे देखकर ऐसा मालूम होता था कि इसे पेटभर खाना भी नहीं मिलता, हमारे और हमारी तरह और भी बहुत-से लोगों की जिन्दगी में बड़ा भारी फर्क पैदा कर दिया। सच तो यह है कि उसने हमारी जिन्दगी का रास्ता ही बदल दिया। यह छोटा-सा आदमी गांधी था। हमारे खानदान के और लोगों की तरह कमला ने भी सब ऐश-आराम छोड़ दिया और गांधीजी की पक्की चेली बन गईं। गांधीजी को उनसे बड़ी मुहब्बत थी और कमला को भी गांधीजी के लिए और उन्हें जो काम पसन्द था उसके लिए बड़ा प्रेम था।

कमला को अपनी सारी उमर में भी मालूम न हुआ कि तकलीफ या ग़म क्या चीज़ होती है। शादी से पहले और शादी के बाद भी उन्होंने ऐसे सुख और आराम से जिन्दगी बिताई थी कि कभी यह सोचने की जरूरत भी न पड़ी कि कल क्या होगा। अचानक यह सब-कुछ बदल गया और उनके जीवन में अनिश्चितता, जुदाई, सदमे और जिस्मानी तकलीफों ने घर कर लिया। बड़ी ही बहादुरी से कमला ने इन सबका हँसते हुए मुकाबला किया। मैंने उनके मुँह से कभी भी शिकायत का एक शब्द नहीं सुना, न अपनी तकदीर को उन्होंने कभी कोसा, जैसा कि हममें से ज्यादातर लोग उस वक्त करते हैं जब कोई बात उनकी मर्ज़ी के खिलाफ होती है। जब जवाहर ने अपनी जिन्दगी देश को सौंप दी तो पल-भर के लिए भी झिझके बिना कमला उनके साथ खड़ी होगईं। अगर हिन्दुस्तान में कोई ऐसा सिपाही था, जिसके मन में अपना कुछ भी नहीं, सिर्फ देश ही का खयाल था, जिसकी शक्ति में कभी कमी नहीं आई और जिसने ऐसी हिम्मत दिखाई जैसी मुश्किल से कभी दिखाई देती है तो वह सिपाही कमला थी। कमला के बारे में लोगों को बहुत कम बातें मालूम हैं। मेरी एक दोस्त ने उनके बारे में लिखा था—"उनका जीवन तेल से जलने वाले चिराग की ज्योति की तरह था। वह डगमगाया, फिर रोशनी तेज हुई और उसकी तेजी बढ़ती ही गई, यहां तक कि जब चिराग का तेल बिलकुल

सूख गया तो उसकी ज्योति कांपती हुई बुझ गई।" कहा जाता है कि जो लोग भगवान् के प्यारे होते हैं वे जवानी ही में मर जाते हैं और यह बात सच भी मालूम होती है। यह नामुमकिन था कि किसी को भी कमला से प्रेम न हो और उसकी बहादुरी की कोई तारीफ न करे। वह अपने पति और ससुर के साथ रहती थीं जिनका राजनैतिक जीवन में बड़ा भारी और ऊँचा स्थान था। ऐसे व्यक्तियों के साथ रहकर इस मैदान में अपना प्रभाव दिखाना मुश्किल था। फिर भी कमला ने अपने लिए वहाँ भी एक जगह पैदा कर ली और अगर मौत का ज़ालिम हाथ उन्हें इतनी जल्द छीन न लेता तो वह और ज्यादा मशहूर होतीं। वह देखने में कमजोर थीं, पर उनका चरित्र दृढ़ और सच्चा था। उन लोगों के सिवा, जो उन्हें अच्छी तरह जानते थे, दूसरों को बहुत कम पता था कि उनकी कोमल आँखों और खामोशी-पसन्द तबियत के पीछे कितनी जबरदस्त शक्ति थी। उनमें बड़ी खूबियाँ थीं और बहुत-से दोष भी। उनकी तबियत में लड़कपन बहुत था और ऐसा मालूम होता था कि उम्र बड़ी होने पर भी वह अभी बच्ची ही हैं। कभी-कभी वह अपनी सेहत की तरफ से बड़ी ही बेपरवाही बरतती थीं और चाहे उन्हें कितनी ही नसीहत क्यों न दी जाय वह अपनी तन्दुरुस्ती का ज्यादा खयाल रखती ही न थीं। बार-बार की बीमारियों से, जिन्होंने अन्त में उनकी जान ही ले ली, कभी ऐसा मालूम नहीं हुआ कि वह बूढ़ी हो रही हैं। आखिर तक उनमें सुन्दर लड़कपन दिखाई देता था और उनका शरीर वैसा ही रहा जैसा उनकी शादी के समय था। बीमारी ने उनके शरीर को अन्दर से बिलकुल खोखला कर दिया था; पर बाहर से उनमें कोई फर्क दिखाई नहीं देता था और मैं जितने साल उन्हें देखती रही वह मुझे हमेशा एक-सी दिखाई दीं।

कमला की शादी के बाद कई साल तक मैं उनके ज्यादा करीब न आ सकी। जबतक वह नई दुलहन थीं उनकी बराबर हर जगह दावतें होती रहती थीं और बाद में वह हमारे घर की मेहमानदारी में लगी रहती थीं; क्योंकि पिताजी के यहां मेहमानों का सिलसिला बराबर रहता था और माताजी अपनी बीमारी के कारण बिस्तरे पर पड़ी रहती थीं। इसलिए मेज़बानी के सारे काम कमला को देखने पड़ते थे। जब सन् १९२६ में हम एक साथ यूरोप में थे तब मैं कमला को अच्छी तरह पहचान पाई और हमारी दोस्ती बढ़ी। जिंदगी के ऐसे बहुत-से सवालों पर, जिनका हमसे संबंध था, हमारी बड़ी लंबी

और गर्मागर्म बहसें होती थीं, खासकर औरतों के हकों के बारे में हम जो कुछ पढ़ते थे या सुनते थे उन पर भी हममें बहस होती थी, पर ऐसी बहसें हमेशा बड़ी खूबसूरती से खत्म होती थीं। यूरोप में ज्यादा समय वह बिस्तर पर ही पड़ी रहती थीं। जब वह इस काबिल हुईं कि सफर कर सकें तो हमने जो कुछ महीने गुजारे वे बड़े ही अच्छे थे। उनकी हमेशा यह इच्छा रहती थी कि नई-नई चीजें देखें और नई-नई बातें सीखें। सैर-सपाटे में उन्हें बड़ा मजा आता था और चाहे वह खुद कितनी ही थकी हुई क्यों न हों, वह अपनी तरफ से कोई ऐसी बात न होने देती थीं, जिससे दूसरों का मजा किरकिरा हो। चाहे कितना ही सबल कारण क्यों न हो मगर वह कभी किसी बारे में शिकायत नहीं करती थीं। यूरोप से वापसी पर हम दोनों एक दूसरे के और भी करीब आ गए। इसलिए कि हम दोनों ने राजनैतिक आंदोलनों में हिस्सा लिया और साथ मिलकर काम किया। यहां पर फिर एक बार मुझे कमला की काम करने की शक्ति देखकर हैरत हो गई। मेरी सेहत उनसे कहीं अच्छी थी, पर मैं भी कई बार थककर सुस्ती से घर बैठ जाती थी, पर उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया। जाड़ों की ठंड में सवेरे पांच बजे वह उठ जाया करती थीं; क्योंकि स्वयं-सेविकाओं की कवायद उसी वक्त हुआ करती थी और सुबह आठ बजे से हमारा विलायती कपड़े की दूकानों पर धरना देने का काम शुरू होता था। सर्दी के पूरे मौसम में कमला नित्य नियम से यह काम करती रहीं और दिन-भर उनका यही हाल रहता था। अब गर्मियां शुरू हुईं और तेज धूप पड़ने लगी फिर भी उन्होंने अपना काम जारी रखा। हममें से और भी बहुत-सों ने इसी तरह काम किया था; पर हम अक्सर काम की शिकायत करती थीं और थक-कर मायूस भी हो जाती थीं। पर कमला का हाल ही कुछ और था। उनकी श्रद्धा और शक्ति कम होने वाली न थी; इस तरह अपने-आपको बहुत ज्यादा थकाकर वह अपने हाथों अपना अंत करीब लाईं। यद्यपि उनकी आत्मा बलवती थी, तथापि उनका दुर्बल शरीर इस बोझ को सह नहीं सकता था और अंत में मृत्यु की विजय हुई।

कमला बड़ी ही खामोश तबियत की थीं और दूसरे के कामों में कभी दखल नहीं देती थीं; पर जीवन के बारे में उनके निश्चित विचार थे, और जब किसी काम का फैसला कर लेती थीं तो फिर बीमारी भी उनके फैसले को नहीं हिला सकती थी। यह तो कुदरती बात है कि जवाहर के कारण किसी हद तक उनका

व्यक्तित्व ढक गया था; पर यह बात केवल एक हद तक ही थी पूरी तरह नहीं; क्योंकि खुद कमला का अपना व्यक्तित्व भी था।

कमला औरतों के हकों की बड़ी हिमायती थीं और अपने दोस्तों और साथियों में औरतों के हकों के लिए वह हमेशा लड़ती रहती थीं। मर्दों से उनकी खटपट हो जाती थी; क्योंकि उन्हें यह शिकायत थी कि उनकी बीवियां कमलाजी के कहने में आ गई हैं और ऐसी बातें करने लगी हैं जो खुद उन्हें पसंद नहीं हैं। उनकी तबियत बड़ी ही आज़ाद थी और कोई भी तकलीफ या बीमारी उन्हें दबा नहीं सकती थी। उन्हें इस बात पर बड़ा फख्र था कि देश की आज़ादी के जंग में वह भी कुछ हिस्सा ले सकी हैं और इस बात से वह सुखी थीं कि लाखों को जवाहर से इतना प्रेम है। जवाहर का यश उन्हें कभी न खटका और न उनके प्रशंसकों से कभी कमला को ईर्ष्या ही हुई।

सन् १९३४ के बाद कमला की सेहत तेजी से गिरती गई। उन्हें भुवाली के स्वास्थ्य-गृह में भेजा गया। हमने कई दिन चिन्ता में बिताये और यह प्रार्थना करते रहे कि उनकी तबियत ठीक हो, पर उनकी हालत दिन-पर-दिन खराब ही होती गई। जवाहर फिर एक बार जेल में थे। अबकी बार वे अलमोड़े में थे और उन्हें कभी-कभी कमला से मिलने की इजाज़त थी। कमला को जवाहर की इन मुलाकातों का कितना इंतज़ार रहा होगा और जो वक्त उन्होंने साथ गुजारा, वह कितनी तेजी से गुजारा होगा। आखिर डाक्टरों ने यह सलाह दी कि कमला स्विटजरलैंड चली जायँ। राजा और मैं उनकी रवानगी से पहले कुछ दिन उनके साथ गुजारने के लिए भुवाली पहुंचे। मेरे साथ मेरा लड़का था, जो मुशकिल से दो महीने का होगा और उसे देखकर कमला को माताजी से भी कहीं ज्यादा खुशी हुई थी। उन्होंने मुझे धमकाया कि देखो, अगर तुमने बच्चे की ठीक से देख-भाल न की तो यूरोप से वापस आकर मैं उसे तुमसे छीन लूंगी और खुद ही उसे पालूंगी।

कमला की रवानगी के दिन जवाहर को यह इजाज़त थी कि वे अलमोड़ा जेल से भुवाली आकर उन्हें रुखसत कर सकते हैं। मैं नहीं कह सकती कि उस दुखभरे दिन जवाहर के मन में क्या विचार पैदा हो रहे थे। उनका चेहरा देख-कर देखने वाले का दिल टूटा जाता था। बड़ी हिम्मत से काम लेकर वे अपना दुःख दबाने की कोशिश कर रहे थे, पर वह सारा दुःख उनकी आंखों में सिमट आया था। जब जुदाई की घड़ी करीब आई तो कमला और जवाहर हंसकर

एक दूसरे से रुख़सत हुए। फिर कमला की गाड़ी उन्हें पहाड़ से नीचे उस रेल पर ले गई जिससे वह बम्बई जानेवाली थीं। इधर जवाहर माताजी के और मेरे गले लगे और अपनी आँखों के आंसू बहाए बिना उस गाड़ी पर बैठ गए जो उन्हें अलमोड़ा जेल वापस ले जाने के लिए खड़ी थी। जब वे पीठ फेरकर चलने लगे तो उनकी चाल में पहले जैसी तेज़ी नज़र नहीं आई। अब वे बहुत थके हुए और कुछ घंटे पहले-जैसे न थे, उससे कहीं ज्यादा बूढ़े दिखाई दे रहे थे। कुछ महीने बाद जवाहर छोड़ दिये गए और वे हवाई जहाज से यूरोप गए; क्योंकि कमला की तबियत बहुत खराब थी। २८ फरवरी १९३६ को स्विटजरलैंड में लोज़ान के पास कमला का देहान्त होगया। उस समय जवाहर और इंदिरा उनके पास थे।

: १० :

कहीं धूप कहीं छाया

कहीं जीत कहीं हार

और बीते बरसों का बढ़ता हुआ बोझ

—ईडिन फिलपॉट्स

कमला की मृत्यु के बाद मार्च १९३६ में जवाहर हिन्दुस्तान वापस लौटे। इंदिरा को वे स्विट्ज़रलैंड के एक स्कूल में छोड़ते आए। मैं उनसे मिलने के लिए बेचैन थी, पर कुछ दिन न जा सकी। जब मेरा बच्चा महीने भर का हुआ तो मैं जवाहर से मिलने गई। यह बड़ा ही तकलीफदेह सफर था और मुझे इस खयाल ही से भय होता था कि कमला की दुःखद मृत्यु के बाद मैं भाई से किस तरह मिलूंगी। कमला को मैं खुद बहुत चाहती थी, इसलिए मैं समझ सकती थी कि जवाहर को उनकी मृत्यु से कितना सदमा हुआ होगा।

जब हम आनन्द-भवन पहुँचे तो जवाहर हमसे मिलने बाहर आए। उनका चेहरा, जो कुछ महीने पहले इतना यौवनपूर्ण था, अब सूख चुका था और उस पर दुःख की झुर्रियां दीख पड़ती थीं; वे पहले से कहीं ज्यादा उम्र के नजर आते थे और बहुत ही थके-मांदे और कमजोर मालूम होते थे। उन्होंने अपने दिल की तड़पन छुपाने की बहुत कोशिश की। फिर भी उनकी भावपूर्ण आंखों में कुछ ऐसा दुःख समाया हुआ था जिसे देखकर उनके साथ रहने वालों को हमेशा तकलीफ होती थी। हम दो हफ्ते इलाहाबाद में रहे और फिर अपने खानदान के और लोगों के साथ लखनऊ पहुंचे, जहां कांग्रेस का जलसा हो रहा था।

जवाहर उस साल राष्ट्रपति चुने गए थे। हमेशा की तरह अब भी

सियासी कामों में उनके वक्त का बड़ा हिस्सा बीत जाता था और अपने व्यक्तिगत नुकसान और दुःख को उन्होंने परे हटा रखा था। हालांकि वे दुःख और सूनापन महसूस कर रहे थे, फिर भी उन्होंने अपने-आपको बेशुमार सम्मेलनों में और दूसरे कामों के झमेलों में डाल रखा था। दूसरे साल जब कांग्रेस-अधिवेशन फैजपुर में हुआ तो वे दुबारा कांग्रेस के सदर चुने गए।

फैजपुर-कांग्रेस के बाद देश-भर में सूबों की धारा-सभाओं के लिए आम चुनाव हो रहे थे। जवाहर ने कांग्रेसी उम्मेदवारों के लिए एक तूफानी दौरा शुरू किया। उन्होंने देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफर किया और शहरों और देहातों में सैकड़ों सभाओं में भाषण दिये और इस प्रकार फिर एक बार लोगों में—जो कि पिछले आंदोलन से अभी-अभी बाहर हुए थे, एक नया जोश पैदा कर दिया। सात प्रांतों में कांग्रेस की बड़ी जीत हुई और बहुत बहस के बाद वायसराय से एक समझौते के परिणाम-स्वरूप इन प्रांतों में कांग्रेस ने अपनी वज़ारतें बनाईं। करीब-करीब सभी कांग्रेसी वज़ीर ऐसे थे, जो कई-कई साल जेल काट चुके थे। मेरी बहन स्वरूप भी वज़ीर बनीं--हिन्दुस्तान की पहली और एक ही औरत वज़ीर!

बचपन ही से स्वरूप बड़ी चतुर थीं और वज़ीर बनने के लिए हर तरह से लायक थीं। वे कैसी भी बात पर शायद ही घबराती हों और हर तरह के काम शांति और बिना किसी भी परेशानी के निभाती हैं। वह आकर्षक, संयत और सुन्दर हैं और उन्हें लोगों का मन मोह लेने में कोई दिक्कत नहीं होती है। वज़ीर की हैसियत से वे बहुत ही कामयाब रहीं। यह बड़ा भारी काम था, जो उन्होंने अपने जिम्मे लिया था, क्योंकि इस तरह के काम की उन्हें कभी शिक्षा नहीं मिली थी; पर यह काम उन्होंने बड़ी ही खूबी से किया और बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। जब स्वरूप ने राजनैतिक कामों में हिस्सा लेना शुरू किया तो भाषण देने की उनकी योग्यता देखकर हम सब हैरान रह गए। ऐसा मालूम होता था कि यह कला उन्हें जन्म से ही प्राप्त है और चाहे कितने ही बड़े जलसे में उन्हें बोलना क्यों न हो वे जरा भी न घबराती थीं। वे हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में बड़ी सफाई और आसानी से बोलती हैं।

कम उम्र में ही स्वरूप के बाल सफेद होने लगे—यह हमारे खानदान की कमजोरी है—और उनके बाल बड़ी तेजी से सफेद होते गए। आजकल

उनके सारे बाल चांदी की तरह सफेद हैं पर इससे उनकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है।

वह बड़ी अच्छी माता हैं और घर-गृहस्थी का काम खूब जानती हैं। बावजूद इसके कि राजनीति के कामों में उनका बहुत-सा समय जाता है, वह अपने घर के काम-काज और अपनी बच्चियों की देख-भाल के लिए वक्त निकाल ही लेती हैं।

जवाहर साल में दो-तीन बार बम्बई आते थे और हमारे साथ रहते थे। हमें उनके आने से बड़ी खुशी होती थी, पर उनका साथ हमें बहुत ही कम नसीब होता था, क्योंकि वे बेशुमार कामों में फँसे रहते थे। जब वे हमारे साथ होते थे तो हमारे छोटे-से घर की शान्त दिनचर्या बिलकुल बदल जाती थी। सुबह से लेकर आधी रात गुज़रने के बाद तक मिलने वालों का तांता बंधा रहता था। कुछ लोग तो वक्त ठहराकर मिलने आते थे और कुछ जवाहर के दर्शन या उनकी एक झलक पाने के लिए। टेलीफोन की घंटी और दरवाजे की घंटी दोनों बजती ही रहती थीं और मेरा सारा वक्त इन्हीं दोनों का जवाब देने में गुज़रता था। न तो हमारे खाने का ठीक वक्त रहता था, न घर में एकान्त रहता। मुझे यह पता ही न रहता कि दिन के या रात के खाने में कितने लोग आयेंगे और रसोई में ऐसा इन्तजाम रखना पड़ता था कि जरूरत के वक्त दस या बीस आदमियों को आसानी से खिलाया जा सके।

इन दिनों ऐसा मालूम होता था कि जिन्दगी में सांस लेने भर की फुरसत नहीं है। जवाहर सिर्फ खाने के वक्त दिखाई देते थे, सिवाय उस सूरत के जब हम भी उनके साथ किसी जलसे में गए हों। अगर कभी इत्तफाक से कोई ऐसा मौका मिल गया कि वे और हम ही हम हों तो हम कुछ घंटे बड़े मजे में गुजारते थे। जवाहर पुराने किस्से सुनाते थे और सारा वक्त ऐसी खुशी में गुज़रता था। अक्सर आम बातें होती थीं और कभी-कभी अपने खान-दान की बातें भी। अक्सर जब कभी जवाहर शाम को घर पर ही रहते तो वे कोई कविता हमें जुबानी या पढ़कर सुनाते थे। जवाहर से कविता सुनने में बड़ा ही लुत्फ आता है; क्योंकि वे बड़ी खूबी से कविता पाठ करते हैं।

जनवरी १९३८ में माताजी की पक्षाघात से अचानक मृत्यु हो गई और उनकी मौत के चौबीस घंटे बाद हमारी मौसी याने माताजी की बड़ी बहिन का भी लकवा मार जाने से देहान्त हो गया। यह दोहरा ग़म हम सब-

के लिए बड़ी भारी मुसीबत थी। भाग्य से मैं उस समय इलाहाबाद ही में थी। मैं इसके बाद जब बम्बई लौटी तो बड़ी ही परेशान और दुखी थी। मैं जानती थी कि अब हमारा घर फिर कभी भी वह पुराना घर न होगा, क्योंकि हमारे पुराने जीवन की कोई ऐसी चीज चली गई थी, जो फिर कभी वापस नहीं आ सकती थी।

इसी साल कुछ दिनों के बाद जवाहर इंदिरा को देखने यूरोप जा रहे थे। राजा और मैं भी उनके साथ जाना चाहते थे; पर आखिरी वक्त पर राजा अपना काम छोड़कर इस सफर पर न जा सके। राजा ने कहा था कि मैं जवाहर के साथ चली जाऊं; पर मुझे राजा के बिना और अपने दोनों छोटे लड़कों को छोड़कर जाना मुनासिब नहीं मालूम हुआ। फिर बात यह भी थी कि मेरा हमेशा से यह इरादा रहा था कि यूरोप का सफर राजा के साथ करूं। मुझे अफसोस है कि मैं भाई के साथ नहीं गई, क्योंकि वे उस वक्त स्पेन गए, जब वहां गृह-युद्ध हो रहा था। और उनका यह सफर बड़ा ही दिलचस्प रहा। अपनी वापसी पर वह इंदिरा को कुछ दिनों की छुट्टियों के लिए अपने साथ लेते आये।

अप्रैल १९३९ में इंदिरा ने अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए इंग्लैंड वापस जाने का फैसला किया। फिर एक बार राजा ने और मैंने संसार भ्रमण का योजना बनाई और सोचा कि इस सफर का एक हिस्सा इंदिरा के साथ करेंगे, पर हमारा यह इरादा इस बार भी पूरा न हो सका; क्योंकि राजा ने इस बात को पसन्द नहीं किया कि नेशनल प्लानिंग कमेटी का अपना काम उस वक्त छोड़ दें। हमने आख़िरी वक्त में अपने टिकट रद्द कराए और यह आशा रखी कि हालांकि जंग के बादल घिर रहे हैं, फिर भी हम बाद में यह सफर कर सकेंगे। पर यह मौका फिर नहीं आया, क्योंकि जंग छिड़ गई और अब बाहर जाना मुमकिन न था।

१९४० के आखिर में इंदिरा ने फैसला किया कि वह हमेशा के लिए हिन्दुस्तान चली आए। बड़ी सख्त बीमारी के बाद वह कुछ दिनों से स्विटज़रलैंड में थी। जब मुझे यह मालूम हुआ कि वह पहले मिलने वाले हवाई जहाज़ से वापस आ रही है तो मुझे बड़ी खुशी हुई, पर इसी के साथ कुछ डर-सा भी लगा और मैंने यह बात जवाहर को लिखी, जो उस वक्त देहरादून जेल में थे। जवाहर ने फौरन मेरे खत का जवाब दिया और मुझे

इस बात पर डांटा कि मैं बूढ़ी औरतों की तरह डरती हूं। उन्होंने लिखा, "मुझे खुशी है कि इंदु ने वापस आने का फैसला किया है। यह सच है कि आजकल सफर में हर तरह के खतरे हैं; पर अकेले बैठकर दुखी होने से यह ज्यादा अच्छा है कि इन खतरों का मुकाबला किया जाय। अगर वह वापस आना चाहती है तो उसे जरूर आना चाहिए और जो भी नतीजा हो, उसका मुकाबला करना चाहिये।"

: ११ :

रात थी और हम देख रहे थे कि उसकी सांस बहुत हल्के और धीमे चल रही है, मानो उसके हृदय में जीवन की लहर चढ़-उतर रही हो।

और हमारी आशाएं हमारे डर को झुठला रही थीं और हमारा डर हमारी आशाओं को।

जब वह सो रही थी, हमें लगा कि वह चल बसी और जब वह चल ही बसी तब हमें लगा कि वह सो रही है।

कारण कि जब भोर हुआ, धूमिल और उदास—और जब पावस की ठिठुरन से शरीर कांपता था, उसकी शांत पलकें मुंद गईं और उसका हमसे भिन्न दूसरा ही प्रभात हो गया।

—टामस हुड

माताजी बहुत सुन्दर थीं। कद की छोटी और जिस्म की नाजुक। मुश्किल से उनका कद पांच फुट का होगा। वह पक्की काश्मीरी थीं, रंग-रूप में एक सुन्दर गुड़िया जैसी नज़र आती थीं। पर बाद के बरसों ने साबित कर दिया कि वह और बातों में गुड़िया जैसी न थीं।

अपने घर में वह सबसे छोटी थीं। उनसे दो बड़ी बहनें और एक भाई था। उनकी बड़ी बहन ने उन्हें पाला-पोसा था, जो कि उम्र में उनसे दस साल बड़ी थीं और वे एक दूसरे को बहुत चाहती थीं।

तीनों बहनों में सबसे छोटी और सबसे ज्यादा खूबसूरत होने की वजह से माताजी घर भर की लाड़ली थीं। सभी उनको प्यार करते थे और उन्हें उनकी उम्र की लड़कियों की तरह नहीं, बल्कि नाजुक गुड़िया की तरह रखते थे। कम उम्र में उनकी शादी हुई और वे अपने पति के घर आईं। यह घर

नए लोगों से भरा हुआ था। इनमें से कुछ दयालु और कुछ कठोर थे। मेरी दादी अनेक प्रकारसे बहुत बढ़िया और तजुरबेकार थीं; लेकिन उस जमानेकी सब सासोंकी परम्परा उन्हें कायम रखनी थी। जबतक खानदानके सब लोग एकसाथ रहे और अलग होकर खुद अपने घर की रानी न बनीं, माताजी को सुख न मिला। पर खुद अपने घर में भी उन्हें ऐसे रखा जाता था जैसे कोई कीमती हीरा हो, और हर तरह के आराम का उनके लिए बन्दोबस्त करने में पिताजी ने खर्च का कभी खयाल नहीं किया। औरत का दिल जो भी सुख और आराम चाह सकता है, वह सब उनकी सेवा में मौजूद रहता था। पर दुनिया के ये सब सुख होते हुए भी वे एक बड़े सुख से महरूम थीं, जो इन्सान के लिए सबसे ज्यादा जरूरी होता है, यानी तन्दुरुस्ती। उन्हें और हजारों नियामतें हासिल थीं; पर जिंदगी की इस सबसे बड़ी नियामत से वह वंचित थीं।

जवाहर के जन्म के बाद से ही माताजी की तबियत खराब रहने लगी और वे बराबर बीमार पड़ने लगीं। वे हर बीमारी के बाद कुदरती-तौर पर वे ज्यादा कमजोर होती जाती थीं और किसी इलाज से भी उन्हें आराम नहीं होता था। पिताजी उन्हें यूरोप ले गए ताकि वहाँ अच्छे-से-अच्छे डाक्टर का इलाज करा सकें; पर इससे भी कुछ फ़ायदा न हुआ। मुझे कोई ऐसा समय याद नहीं, जब माता जी खूब भली-चंगी रही हों और घर के और सब लोगों की तरह खूब खा-पी सकी हों और अच्छी तरह ज़िन्दगी गुज़ार सकी हों। मुझे इसका भी पता नहीं कि माँ अपने बच्चे की बराबर खबरगीरी किस तरह करती है, क्योंकि माताजी की सेहत का यह हाल था कि लोगों को हमेशा उन्हीं की देख-भाल करनी पड़ती थी। वह बेचारी भला अपने बच्चों की देख-भाल क्या करतीं!

इसी तरह साल-पर-साल बीतते गए। मेरे लिए माताजी एक सुन्दर फूल के समान थीं, जो प्यार करने के लिए बना हो और जिसे तकलीफ से और ज़िन्दगी की छोटी-छोटी मुसीबतों से बचाने की हर तरह कोशिश की जाती हो। सन् १६२० तक हर तरह के आराम में घिरी हुई माताजी ने अपने छोटे-से परिवार पर रानी की तरह राज्य किया। उन्हें अपने मशहूर पति, होशियार बेटे और अपने घर पर बड़ा फख्र था। रंज और ग़म कभी उनके पास फटका तक नहीं था और असहयोग-आन्दोलन शुरू होने तक उन्हें कभी कोई परेशानी न हुई थी। पर उसके बाद कुछ हफ्तों के अन्दर-अन्दर जिन्दगी-भर की आदतें बदल

गई और हमारे छोटे-से घर में एक अच्छी खासी क्रान्ति हो गई।

हम में से और सबके लिए नई परिस्थितियों के अनुसार चलना इतना ज्यादा मुश्किल न था; पर माताजी और पिताजी के लिए जीवन के प्रति अपना सम्पूर्ण दृष्टिकोण और अपनी सारी आदतें बदल देने का सवाल था। पचास बरस की उमर गुजारकर जब कोई साठ साल के करीब पहुंच रहा हो तो उसके लिए यह काम आसान नहीं होता, फिर भी जिस तेजी से मेरे माता-पिता ने अपने पुराने जीवन को बदलकर नया तरीका अख्तियार किया उससे सभी को हैरत हुई। पिताजी को ज़िन्दगी की सभी अच्छी चीजें पसन्द थीं। अच्छे कपड़े, अच्छा खाना-पीना और आराम की ज़िन्दगी। माताजी ने बढ़िया से बढ़िया रेशमी साड़ियों के सिवाय कभी कुछ नहीं पहना। कभी ऐसा नहीं हुआ था कि उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत हो और वह उन्हें न मिली हो। न वह यह जानती थीं कि तकलीफ किसे कहते हैं। फिर भी बिना किसी झिझक के उन्होंने खद्दर पहनना शुरू किया और ऐसी भद्दी और मोटी साड़ियाँ पहनने लगीं, जिनका बोझ भी वह मुश्किल से संभाल सकती थीं।

माताजी का बाकी जीवन तकलीफों, कुर्बानियों और बेशुमार परेशानियों से भर उठा। जिन्हें वह बहुत ज्यादा चाहती थीं, ऐसे प्रियजनों और उनके बीच जेलखानों की भयानक दीवारें बराबर खड़ी रहती थीं। पर हमारी उन्हीं छोटी-सी माताजी ने, जिनके बारे में हमारा खयाल था कि बड़ी ही नाजुक हैं, साबित कर दिखाया कि उनके नाजुक शरीर के भीतर बड़ा मजबूत दिल है और उसमें इतना साहस और संकल्प है कि कितनी भी तकलीफ और रंज क्यों न उठाना पड़े, वह सब-कुछ बर्दाश्त कर सकता है।

इसके बाद के बरस उनके लिए बड़ी मुसीबत के थे। पर उनकी ज़िन्दगी में बुढ़ापे में आकर जो तबदीली हुई थी उसके बारे में हमने उनकी जुबान से कभी शिकायत का एक शब्द नहीं सुना, हालांकि उनका पहले का नियमित और शांत जीवन ख़तम हो गया था और उसकी जगह तकलीफ और मुसीबत ने ले ली थी। अजीब बात यह थी कि यह सब कुछ होते हुए भी माताजी किसी-न-किसी तरह भली-चंगी बनी रहीं। पिताजी की मृत्यु ने उनकी कमर बिलकुल तोड़ दी। दिल से वह पुराने ख़यालों की थीं, इसलिए उनका यह विश्वास था कि पिछले जन्म में उन्होंने कोई बड़ा भारी पाप किया होगा, जिसके कारण इस जन्म में उनसे उनके पति को छीन लिया गया। इसके

अलावा वह हमेशा से कमजोर और बीमार रहती थीं। इसलिए वह समझती थीं कि पहले वही मरेंगी, जैसा कि एक हिन्दू पत्नी के लिए उचित होता है। पिताजी कभी एक दिन के लिए भी बीमार नहीं पड़े थे। जेल के जीवन की तकलीफों ने ही उनकी ज़िंदगी को वक्त से पहले ख़तम कर दिया।

उन दोनों ने करीब पचास साल एक साथ गुजारे थे और दुख-सुख में एक-दूसरे का हाथ बंटाया था। मानसिक और शारीरिक संकटों का मुकाबला करने के लिए माताजी हमेशा पिताजी की शक्ति पर निर्भर रहती थीं। सुख और दुःख में उन्होंने जो दिन एक साथ बिताए थे उनमें पिताजी ने हमेशा प्रेम से उनकी देख-भाल की थी। बिना पिताजी के माताजी घबराई हुई और खोई हुई-सी रहने लगीं। बहुत दिनोंतक वह इस बदली हुई हालत को ठीक समझ ही न सकीं। इन दिनों में जवाहर ने वह सब कुछ किया जो एक बेटा कर सकता था। खुद उन पर इतने बड़े दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था कि वे गिरने के करीब थे; पर उन्होंने अपने-आपको संभाला और माताजी का दुःख बंटाने की हर मुमकिन कोशिश की। उन दिनों जवाहर का माताजी को प्रसन्न करने वाला श्रद्धापूर्वक व्यवहार ऐसा था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

माताजी जी रही थीं केवल अपने बच्चों के और खासकर जवाहर के लिए। कमला की मौत ने उन्हें एक और सदमा पहुंचाया और जिंदगी की मुसीबतों का मुकाबला करने की उनकी रही-सही ताकत भी खतम कर दी। दिन-पर-दिन वह और कमजोर होती गईं।

१९३८ में मैं अपने बच्चों के साथ इलाहाबाद गई, जैसे कि हर साल जाया करती थी और वहां एक महीना रही। जब मैं बम्बई वापस आने वाली थी तो माताजी ने बार-बार मुझे रोका और मेरे रवाना होने का दिन टलता रहा। एक दिन शाम को हम सब साथ बैठे थे—जवाहर, स्वरूप, उनके पति, उनके बच्चे और मैं। इधर कुछ दिनों से माताजी की तबियत ठीक दिखाई दे रही थी और खास-तौर पर उस शाम को तो वह भली-चंगी मालूम हो रही थीं।

जब तक हम लोग खाना खाते रहे, वह हमारे पास बैठी रहीं और पुराने किस्से सुनाती रहीं। उस दिन वे हर रोज से ज्यादा बोलती रहीं और हम सबको इससे बड़ी खुशी हुई। खाने के बाद हम लोग रात के साढ़े दस बजे तक बैठे गप-शप करते रहे। स्वरूप को उसी रात बारह बजे की गाड़ी से

लखनऊ जाना था और माताजी ने हमसे कहा कि उन्हें भी नींद नहीं आ रही है। इसलिए वह भी स्वरूप के स्टेशन जाने के वक्त पर हमारे साथ बैठकर बातें करेंगी। हमने उन्हें आराम करने के लिए बहुत समझाया, पर वह न मानीं। इसलिए हम सब बैठे बातें करते रहे। माताजी धीरे-धीरे चुप और शांत होने लगीं।

११ बजे स्वरूप स्टेशन जाने के लिए तैयार हुईं और माताजी से विदा होने लगीं। जब माताजी स्वरूप से गले मिलने खड़ी हुईं तो वह लड़खड़ाईं और अगर जवाहर और मैं फौरन स्वरूप की मदद को न जाते तो वह वहीं गिर पड़तीं। हम उन्हें उठाकर उनके बिस्तरे तक ले गये; पर वहां तक पहुंचकर उन्हें ठीक से लिटाने भी न पाये थे कि वह बेहोश हो गईं। माताजी को इससे पहले दो-बार लक़वा मार चुका था और यह लक़वे का तीसरा हमला था। डाक्टर को बुलाया गया। उसने अपना सिर हिलाकर जवाब दिया कि अब इनकी बचने की कोई आशा नहीं। यह सिर्फ चंद घंटों की महमान हैं।

मैं नहीं जानती थी कि मौत ऐसे भी आ सकती है और मैं हतप्रभ हो गई। यह कैसे हो सकता था कि माताजी हमसे इस तरह अचानक एक शब्द भी कहे बिना या प्यार किये बिना हमेशा के लिए जुदा हो जायं। वह तो हममें से किसी को बिना प्यार किये घंटेभर के लिए भी घर से बाहर जाने नहीं देती थीं। मैं तो डाक्टर की बात को असंभव मानती थी और मुझे उनका फैसला स्वीकार न था। मुझे उनपर गुस्सा भी आ रहा था, क्योंकि उन्होंने कुछ भी नहीं किया। हम सबकी तरह वह भी खड़े इन्तजार करते रहे।

रात-भर हम सब माताजी के बिस्तरे के पास बैठे रहे। जवाहर, स्वरूप और मैं। हमारी मौसी भी (बीबी अम्मा) वहां थीं। सुबह पांच बजे अचानक माताजी का स्वांस रुक गया और वह एकदम शांत होगईं, मानों सो रही हों। जवाहर की आंखों में पानी भर आया और बहुत धीमी और नर्म आवाज में वह बोले, "यह भी चली गईं।" और फिर उस सारे दर्द और तकलीफ के साथ, जिसे दबाने की मैं बेकार कोशिश कर रही थी। यह बात मेरी समझ में आई कि मेरी अच्छी मां, जिसे मैं सारी उम्र चाहती रही, अब ऐसी नींद सो गई हैं जिससे फिर कभी न उठेंगी। औरों के साथ मैं भी उनके बिस्तरे के पास खड़ी थी। मेरी आंखों में आंसू नहीं थे और मैं

अपना सांस रोके हुए थी। माताजी के देहान्त के समय मौसी कमरे में नहीं थीं। इसलिए जवाहर और स्वरूप उन्हें खबर करने गए। इस समय मैं माता जी के पास अकेली खड़ी थी और आंसुओं की वह नदी, जिसे मैं अब तक रोके हुए थी, अचानक फूट पड़ी। धीरे-धीरे मैं अपने घुटने के बल झुक गई और खामोशी से मैंने उन्हें अन्तिम प्रणाम किया। फिर मैं इस डर के मारे कमरे से बाहर भागी कि कहीं मेरी सिसकियां उनकी शान्ति में विघ्न न डालें।

माताजी के क्रिया-कर्म में हज़ारों आदमी शरीक हुए। हमने उन्हें फूलों से ढँक दिया। वह कितनी सुन्दर दिखाई देती थीं। उनके चेहरे की झुर्रियां मिट गई थीं और वह जीवित-सी जान पड़ती थीं। मुश्किल से ही कोई कह सकता था कि वह मर गई हैं।

एक बार फिर आनन्द-भवन रंज और ग़म में डूब गया। उस पर राज करने वाली रानी जा चुकी थीं। उनके बिना वह उदास और सूना दिखाई देने लगा।

साल में ज्यादातर वह हमारे यहाँ रहा करती थीं और हमें उनके साथ रहना बड़ा अच्छा लगता था। जब वह हमारे साथ रहती थीं तो वह माताजी को घर के काम-काज में मदद दिया करतीं या अगर माता जी बीमार होतीं तो फिर कुछ भी ख़याल किये बिना दिन-रात उनकी सेवा में लगी रहतीं। उनकी बहन, भानजे और भानजियाँ, बस यही उनकी दुनिया थी। उनके भाई, जिन्हें वह बहुत चाहती थीं, कई साल हुए गुजर चुके थे; पर जिस व्यक्ति के आस-पास उनका सारा जीवन घूमता था, वह मेरी माताजी थीं। बीबी अम्मा को माताजी के प्रति जैसा प्रेम और श्रद्धा थी, उसकी कोई और मिसाल मैं नहीं जानती।

मैं उनकी बड़ी चहेती भानजी थी। मैं जब छोटी बच्ची थी तो उनके पास बैठकर तरह-तरह के किस्से-कहानियाँ सुनना मुझे बड़ा अच्छा लगता था। वह कभी तो मुझे परियों के किस्से सुनातीं और कभी हिन्दुस्तान के पुराने बहादुर मर्दों और औरतों के। किसी तरह यह बात मेरे मन में बैठ गई थी कि मैंने जिन बहादुर औरतों के किस्से पढ़े-सुने हैं और जिनके नाम अमर हो चुके हैं उनमें से हर किसी जैसा काम बीबी अम्मा बड़ी खूबी से कर सकती थीं। उनमें कुछ ऐसी निडरता और बहादुरी थी जो बहुत कम औरतों में होती है। मैं उन्हें बहुत ही चाहती थी।

बीबी अम्मा माताजी से उमर में दस साल बड़ी थीं और उन्होंने पुराने तरीके की ज़िन्दगी गुज़ारी थी, फिर भी उनका दृष्टिकोण माताजी से ज्यादा उदार था। माताजी की तरह उन्हें भी नये तौर-तरीकों और आधुनिक विचारों से चोट ज़रूर पहुँचती थी, पर वह कभी भी हम लोगों को इस बारे में कुछ कहती नहीं थीं। कटे हुए बालों और बिना बाहों की कुरतियों से तो उन्हें बेहद चिढ़ थी,पर जब हम उन्हें छेड़ते थे और चाहते थे कि वह इन चीजों को लेकर हममें से किसी को नापसन्द करें तो वह टाल देती थीं। इसके ख़िलाफ माताजी अपनी नापसन्दगी साफ ज़ाहिर कर देती थीं और कई तरह से अपनी नाराज़गी भी जता देती थीं। बीबी अम्मा कभी इस पर जोर नहीं देती थीं कि हम अपनी मर्जी के ख़िलाफ कोई काम करें, पर वह चाहती यही थीं कि हम पुराने तरीकों पर कायम रहें और ज्यादा आधुनिक न बनें।

बीबी अम्मा मेरे लिए खासकर एक प्यारी मौसी से भी कुछ ज्यादा ही थीं। मैं उनसे अपने दिल की बातें कह-सुन लिया करती थी और जब

कभी मुझे माताजी के पास जाने में हिचकिचाहट होती थी तो बेखटके मौसी के पास चली जाती थी; क्योंकि मैं जानती थी कि भले ही उनके लिए यह कितना ही मुश्किल क्यों न हो, वह मेरा दृष्टिकोण समझने की कोशिश जरूर करेंगी।

माताजी पथप्रदर्शन के लिए हमेशा दूसरों पर निर्भर रहती थीं और किसी बारे में भी उन्हें खुद ही कोई फैसला करने का मौका कभी नहीं मिलता था। इसलिए उनके लिए यह बड़ा मुश्किल होजाता था कि वह किसी बारे में भी हमें कोई निश्चित सलाह दें। इसके अलावा हम सब माताजी को दुर्बल और स्नेहशील समझते थे, जिसकी हम सबको देख-रेख करनी पड़ती थी। उनसे यह आशा कोई नहीं रखता था कि वह हमारी देख-भाल करें और हमें रास्ता दिखायें। इसलिए जब मुझे कोई दिक्कत पेश आती तो मैं सीधी बीबी अम्मा के पास पहुंचती थी और कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि उन्होंने मेरा काम न किया हो।

जब माताजी गुजर गईं और हमने यह ख़बर उन्हें सुनाई तो वह इतनी स्तम्भित हो गईं कि उन्हें हमारे कहने का विश्वास नहीं हुआ। यह हो कैसे सकता था कि वह खुद तो भली-चंगी और जिन्दा हों और उनकी छोटी बहन कुछ ही घण्टों में मर जाए! धीरे-धीरे यह दुःखद बात उनकी समझ में आ गई। उनके बहादुर और मजबूत दिल को, जो पहले बहुत-से सदमे सह चुका था, बड़ा भारी धक्का लगा और उन्हें ऐसा दुःख हुआ, जिसे कोई भी मानवी शक्ति कम नहीं कर सकती थी। हालांकि उनका दिल टूट रहा था और उनका सिर चकरा रहा था, फिर भी अपनी इस तकलीफ में उन्होंने पहले हमारा ख़याल किया और खुद अपना ग़म छुपा कर हमारा ग़म मिटाने की कोशिश की। यह जानते हुए कि हमें यह पता न होगा कि क्रिया-कर्म का क्या प्रबन्ध करना चाहिये, उन्होंने यह काम खुद अपने ज़िम्मे ले लिया और सब ज़रूरी व्यवस्था कर दी। जिस छोटी बहन को उन्होंने खुद पाल-पोसकर बड़ा किया था और जिसकी ज़िंदगी भर देख-भाल की थी उसके आखिरी क्रिया-कर्म के लिए हर चीज़ उन्होंने स्वयं अपने हाथ से तैयार की।

जब माताजी की अर्थी घर से रवाना हुई तो बीबी अम्मा घर के बरामदे में बुत की तरह खड़ी थीं। वह न तो हिलती थीं, न उनकी आंखों में आंसू थे। उनकी नज़र फूलों से ढकी हुई अर्थी पर जमी हुई थी, जो उनकी

प्यारी बहन को उनसे दूर लिए जा रही थी। जब तक अर्थी नगर आ सकती थी वह वहीं खड़ी रहीं, फिर तेजी से पलटीं और माता जी के कमरे में चली गईं। मैं भी उनके पीछे-पीछे गई। मैंने देखा कि वह कमरे में खड़ी हैं और ऐसा मालूम हुआ मानों वह उन सब चीजों को आखिरी बार नज़र भरकर देख रही हैं, जो उनकी बहन को प्यारी थीं। मैंने अपनी बाहें उनके गले में डालीं और कहा, "बीबी अम्मा, थोड़ी देर लेटकर आराम करलो।" उन्होंने मेरी तरफ बिना आंखों में आंसू लाए हुए देखा और मेरे सवाल पर ध्यान न देते हुए कहा, "जाओ और नहाकर आ जाओ। मैं तुम्हारे लिए चाय तैयार करवाती हूं।" उस वक्त दिन के दो बजे थे। मैं उनसे बहस करना नहीं चाहती थी। सो चुपचाप अपने कमरे में चली गई और नहाकर वापस लौटी तो देखा कि चाय तैयार है। मैं चाय पी नहीं सकी। बीबी अम्मा की भावभंगी देख कर मुझे परेशानी हो रही थी। मैं उन्हें ढूंढने गई। देखा कि माताजी के कमरे में ठीक उसी जगह बैठी हुई हैं, जहां माताजी लेटा करती थीं। मैं उन पर झुकी और मैंने उन्हें आवाज़ दी तो उन्होंने अपनी आंखें खोलीं। मैंने कहा, "बीबी अम्मा, थोड़ी चाय पी लो। उससे तुम्हें आराम मिलेगा।" उन्होंने कुछ जवाब न दिया। मैंने कहा, "बीबी अम्मा, तुम हमारे सबके लिए माता जी के बराबर रही हो और अब तो तुम्हीं हमारी मां हो। अब तो हमारे लिए तुम्हीं रह गई हो और हमें तुम्हारी बड़ी जरूरत है।" उन्होंने मुझे अपनी बाहों में ले लिया और पहली बार उनकी आंखों में आंसू भर आए। बोलीं, "बेटी, तुम मुझे हमेशा बेटी की तरह प्यारी रही हो, पर हरेक की मां एक ही हो सकती है और तुम्हारी मां तुम्हें हमेशा के लिए छोड़कर चली गई है। मैं कभी भी उनकी जगह नहीं ले सकती। और मैं तो उन्हीं के लिए जिंदा थी। और अब क्या चीज़ बाकी है, जिसके लिए मैं जिंदा रहूं। मेरा काम पूरा हो चुका। अब मुझे भी जाना चाहिये।" मैं बोल न सकी; क्योंकि जिन आंसुओं को मैं दबाने की कोशिश कर रही थी उनसे मेरा गला घुट रहा था। मैं उनके करीब ही बैठी रही और कुछ देर उनका सिर सहलाती रही। फिर जब ऐसा मालूम हुआ कि उनकी आंख लग गई है तो मैं चुपके से वहां से हट गई। इसके बाद मैं कई बार उन्हें देखने गई, पर हर बार मैंने यही देखा कि वह सो रही हैं। आखिर मैं भी कुछ घबराई। इसलिए मैंने करीब जाकर उन्हें हिलाया, पर वह उठी नहीं। मैंने उन्हें बार-बार पुकारा, पर उन्होंने जवाब नहीं दिया। मेरे

भाई अभी वापस लौटे नहीं थे। इसलिए मैंने अपनी बहन से यह बात कही। वह भी यह देखकर घबराईं। हमने डाक्टर को बुला भेजा। जवाहर कोई सात बजे वापस आये। इधर डाक्टर भी आ गए। डाक्टर ने बीबी अम्मा को देखा और कहा कि उन्हें भी वैसा ही लक़वा मार गया है, जैसा कल माताजी को मारा था। हम इस बात का मुश्किल से विश्वास कर सके, क्योंकि बीबी अम्मा पर इससे पहले कभी फालिज नहीं गिरा था और न वह कभी बीमार ही हुई थीं। वह हमेशा भली-चंगी और मज़बूत थीं, फिर भी अब वह बेहोश पड़ी थीं और हम उनके बचाने के लिए कुछ नहीं कर सकते थे। हम सभी परेशान थे, पर मैं बहुत ज्यादा थी; क्योंकि मेरे लिए वह और सबसे कहीं ज्यादा प्यारी थीं। हम जो कुछ कर सकते थे वह यही था कि सब्र से इन्तजार करें और जैसे इससे पहले की एक रात गुज़ारी थी वैसे ही आज की रात भी गुज़ारें। मेरा दिल टूट रहा था, मैं हिल भी नहीं सकती थी। उनके करीब बैठी रही। मेरे दिल में उन सब दिनों और बरसों की, जब बीबी अम्मा हमारे साथ रही थीं, एक-एक बात की याद ताजा हो रही थी। मुझे उस स्नेह और सहानुभूति की याद आ रही थी जो मुझे उनसे मिली थी और वह श्रद्धा और भक्ति भी जो उन्होंने माताजी और हमारे पूरे खानदान के प्रति रक्खी थी। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि मेरे दुखी दिल के टुकड़े-टुकड़े हो जायंगे और इसीसे मुझे कुछ शांति मिलेगी, पर यह भी न हुआ। मैं वहीं बैठकर उनके शांत चेहरे को देखती रही और सोचती रही कि आखिर ऐसी बातें क्यों होती हैं।

हम रात भर उन्हें इसी तरह देखते रहे और दूसरे दिन सुबह पांच बजे यानी माताजी की मृत्यु के ठीक चौबीस घण्टे बाद बीबी अम्मा भी गुज़र गईं। यह बात कुछ असंभव-सी मालूम होती थी कि हमारी माता जी और मौसी एक दूसरे के चौबीस घण्टे बाद गुजर जाएं और हमें बिलकुल बेबस और लचार छोड़ दें।

अब एक दूसरी अर्थी हमारे घर से चली; पर यह उससे कितनी भिन्न थी, जो एक दिन पहले यहीं से चली थी। बीबी अम्मा ने संन्यास ले लिया था। उनका कुछ भी क्रिया-कर्म नहीं किया गया। हमने उन्हें गेरुए रंग की साड़ी पहनाई। खुद उनके रूप के सिवा कोई और आभूषण नहीं था। उनका चेहरा बूढ़ा था और उस पर झुर्रियां पड़ी थीं; पर अब ऐसा मालूम होता था कि वह अचानक जवान हो गई हैं और चेहरे की झुर्रियां ग़ायब हो गई हैं। चेहरे

पर शांति थी, जिसे देखकर यही मानना पड़ता था कि वह सुखी हैं और आराम कर रही हैं, शायद इसलिए कि वह अपनी बहन के पास जा रही थीं, जिनसे उन्हें मौत भी जुदा न कर सकी।

माताजी के शव के साथ हज़ारों आदमी थे। लोग उन्हें किसी रानी की तरह बड़ी धूमधाम से मरघट तक ले गए थे। बीबी अम्मा के शव के साथ भी बहुतसे लोग थे,पर जो चीज़ सबसे अजीब थी वह यह कि भीड़ में ऐसे गरीब, बूढ़े और बीमार लोग बहुत-से थे,जो उन्हें अपनी अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने आए थे। ये सब लोग उन्हें 'देवी' मानते थे और उनके प्रति बड़ा स्नेह और भक्ति रखते थे। चाहे कोई आदमी कितना ही गरीब या कितना ही छोटा क्यों न हो,वह बिना किसी झिझक के किसी काम में सलाह लेने या मदद मांगने के लिए बीबी अम्मा के पास पहुँच जाता था और उसे कभी खाली हाथ नहीं लौटना पड़ता था। उनका जीवन बड़ा सीधा-सादा था और वह गरीबों और ज़रूरतमंदों को हमेशा कुछ न कुछ देती रहती थीं। इन लोगों को ऐसा मालूम हुआ कि उनकी मौत से उनका एक बड़ा हितेच्छु खो गया है। भली-चंगी होते हुए भी जब माताजी के मौत के दूसरे ही दिन उनकी भी मृत्यु हुई तो लोग यह समझे कि वह महान देवी थीं, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वह अपनी जान इस तरह क्यों दे देतीं।

मैं गरीबों के उस मजमे को बड़े अचम्भे से देखती रही, जो हमारे घर के अहाते में जमा था और जिसमें लोग एक-दूसरे पर इसलिए गिर पड़ रहे थे कि उनका आखिरी बार दर्शन कर सकें,जिनके लिए उनके मन में इतनी भक्ति थी। वहां कोई आंख ऐसी न थी जिसमें आंसू न हो; न कोई दिल ऐसा था जो दर्द से भरा न हो। इसी हालत में उनकी बिना सजी अर्थी खामोशी के साथ रवाना हुई। मैंने भी अपनी प्यारी मौसी को अंतिम प्रणाम किया। मैं जानती थी कि जो कुछ हुआ उनके हक़ में अच्छा ही था; क्योंकि अपनी बहन के बिना उनके लिए ज़िंदगी दूभर हो जाती। फिर भी मैं चाहती थी कि वह इस तरह अचानक न जातीं और हम लोगों के जीवन में दोहरी जगह खाली न करतीं, जो कई साल गुजरने पर भी भर नहीं सकी है।

अरे, अब तो रुक जाओ ! क्या घृणा और मृत्यु का पुनरावर्त्तन होना ही चाहिए ?

अरे, रुको तो ! क्या आदमी का मारना और मरना जरूरी है ?

नहीं-नहीं, ठहरो ! कटु भविष्य के पात्र को एक दम रीता मत कर डालो ।

जगत् भूतकाल से ऊब उठा है ।

अरे, या तो वह नष्ट हो जाय, या आखिरकार शान्ति पा ले ।

—शैली

जुलाई १९३१ में जब जवाहर ने लंका जाने का फैसला किया और मुझसे कहा कि मैं उनके साथ चलूं तो मैंने बड़े शौक से इस बात को मंजूर कर लिया। मेरी हमेशा से यह इच्छा रही थी कि लंका देखूं, पर मुझे कभी भी इसका मौका नहीं मिला था।

जवाहर एक काम से वहां जा रहे थे। हिन्दुस्तानियों और लंका-वासियों में बहुत-सी गलत-फहमियां फैली हुई थीं, जिनकी वजह से बड़ी कटुता पैदा हो चुकी थी। इसलिए यह तय किया गया कि जवाहर जाकर वहां की हालत देखें और अगर हो सके तो दोनों देशों के निवासियों में मित्रता करा दें।

एक दिन सुबह जब बादल घिरे हुए थे जवाहर और मैं पूना के हवाई अड्डे से रवाना हुए। रवानगी का वक्त बड़े सवेरे का था, फिरभी काफी लोग हमें रुख़सत करने आए थे—कांग्रेसी कार्यकर्ता और जवाहर के दोस्त। हम हैदराबाद होते हुए गए, जहां हमने श्रीमती सरोजिनी नायडू और उनके घर वालों के साथ खाना खाया। फिर मदरास और त्रिचनापली होते हुए दूसरे दिन कोलंबो पहुँचे। जब हम माउंट लाविनिया के हवाई अड्डे पर उड़ रहे थे तो हमने देखा कि लोगों का बड़ा भारी मजमा नीचे जमा है। हमारे यान-

चालक ने,जो एक खूबसूरत नौजवान था, हमारा जहाज फौरन ही नहीं उतारा। उसने जहाज घुमाया और मजमे के सिर पर कई चक्कर लगाकर धीरे-धीरे हमें नीचे उतारा। फिर वह जहाज ऊपर ले गया और कुछ इस तरह तेजी से नीचे आया, जिससे मालूम हो कि वह लोगों को सलाम कर रहा है। जैसे ही हम नीचे उतरे, लोग हमारे जहाज की तरफ बढ़े और उन्हें बड़ी मुश्किल से रोका जा सका। लोग जवाहर का स्वागत करने के लिए आगे बढ़े और जिस प्रेम से उन्होंने हाथ मिलाए और हंसी-खुशी से हमारा स्वागत किया, उससे हमें ऐसा मालूम हुआ कि हम अपने ही घर पर और अपने ही दोस्तों में हैं।

हमारे स्वागत के लिए लंका वासी और हिन्दुस्तानी दोनों कंधे-से-कंधा मिलाकर खड़े थे और प्रेम से हमारा स्वागत कर रहे थे। जवाहर जिस काम के लिए आए थे उसके लिए यह एक नेक सगुन था। उस वक्त तो हमें ऐसा ही मालूम हुआ कि जवाहर अपने काम में कामयाब हो गए और उस कटुता को, जो उस वक्त फैल रही थी, किसी हद तक कम कर सके। पर आगे चलकर साफ मालूम पड़ा कि ऐसा नहीं हुआ। हमारे सफर के एक ही महीने बाद लंका-सरकार ने आठ सौ हिन्दुस्तानियों को काम पर से अलग कर दिया और उन्हें हिन्दुस्तान वापस भेज दिया।

मुझे लंका और वहां की हर चीज़ पसंद आई। बहुत ज्यादा काम होने पर भी जवाहर हमेशा सैर-सपाटे के लिए कुछ-न-कुछ वक्त निकाल ही लेते थे। हमने कुछ बहुत सुंदर मंदिर और बाग देखे और जहां कहीं गए, लोगों ने बड़ी मुहब्बत का सुलूक हमारे साथ किया। लंकावासी और हिंदुस्तानी दोनों हमारे स्वागत में एक-दूसरे से बाजी ले जाना चाहते थे और मुझे यह सोचकर अचम्भा होता था कि ऐसी अच्छी तबियत के लोगों में ऐसे झगड़े क्यों थे, जिनके कारण इतनी तकलीफ हो रही थी।

लंका में औरतें पर्दा नहीं करतीं, फिर भी कई मौकों पर हमें माला पहनाने के बाद हमारे मेजबान जवाहर को अपने साथ मर्दों के गिरोह में ले जाते और हमारी मेजबान मुझे औरतों में ले जाती थीं। सिर्फ खाने के वक्त हम थोड़ी देर के लिए साथ हो जाते थे और उसके बाद फिर किसी-न-किसी तरह मर्द और औरतें अलग-अलग हो जाती थीं।

हिन्दुस्तान में औरतों को वोट देने का हक़ हासिल करने के लिए हमें कोई आंदोलन नहीं करना पड़ा। यहां औरतों की कुछ संस्थाएं हैं जो समाज-

सुधार के काम करती हैं। पर औरतों को आज़ाद होने और मर्दों के बराबर दर्जा हासिल करने की प्रेरणा राष्ट्रीय आंदोलन से ही मिली। अहिंसा के उसूलों पर चलाए जाने वाले आंदोलन के तरीके ऐसे थे कि औरतें अपने मर्दों के कंधे-से-कंधा मिलाकर काम कर सकती थीं। गांधीजी के उसूलों का औरतों पर बड़ा असर हुआ और उन्हीं उसूलों ने औरतों को सदियों पुराने रसम और रिवाज के बंधन तोड़ने और मातृभूमि की सेवा का रास्ता दिखाया। हज़ारों अपने घरों की चहार-दीवारियों से बाहर निकल आईं। उन्होंने तकलीफों और खतरों का सामना किया, जेल और मौत का मुकाबला किया और इस तरह पर सियासी और समाजी दोनों प्रकार की आज़ादी हासिल की।

लंका में हम जहां कहीं गए, हर जगह हज़ारों आदमी जवाहर को देखने और उनकी तकरीरें सुनने जमा हुए। उनमें ज्यादातर तामिली मज़दूर होते थे—मर्द और औरतें दोनों, जो चाय के और रबर के बागों में काम करते थे। जिन रास्तों से जवाहर गुज़रने वाले होते थे, उन पर ये लोग घंटों खड़े रहते थे, इसलिए कि जवाहर को एक नज़र भरकर देख सकें। जब मैं उन्हें गाड़ी में बैठे-बैठे देखती थी या कभी-कभी जब गाड़ी से नीचे उतरकर मैं उनके मजमे में अपने भाई के साथ खड़ी होती थी तो मैं उन चेहरों पर नज़र डालती, जो मेरे चारों तरफ़ दिखाई देते थे। उन्हें देखने से पता चलता था कि लोगों के दिल में जवाहर के लिए प्रेम और विश्वास है, उन जवाहर के लिए जो उनकी पुरानी मातृभूमि से आए हैं और उनके लिए आशा और खुशी का पैगाम लाए हैं। उनके बीच जवाहर का मौजूद होना ही उन्हें यह विश्वास दिलाता था कि हालांकि वे अपनी जन्मभूमि से दूर जा पड़े हैं, फिर भी उनके देश वाले उन्हें भूले नहीं हैं।

जब दिनभर की मेहनत के बाद शाम को मैं जवाहर को बिलकुल चूर देखती तो अक्सर मैं यह सोचने लगती थी कि कहीं यह सब मेहनत बेकार तो नहीं है; पर जब अपने आस-पास के चेहरों को देखती थी तो मेरे मन में इस तरह का शुबहा बाकी नहीं रहता था। लाखों आदमियों का प्रेम और विश्वास जिससे प्राप्त होता हो, उसके लिए जो भी तकलीफ उठानी पड़े, कम ही है।

बेशुमार जलसों, अभिनन्दनों, सभाओं और सैर-सपाटों के मौकों से भरे हुए दस दिनों के बाद हमारा लंका का दौरा ख़तम हुआ; या यह कि

जवाहर का दौरा ख़तम हुआ; क्योंकि मैं उसके बाद भी एक हफ्ते लंका में रही और फिर बम्बई वापस लौटी।

अपनी वापसी के बाद जल्द ही जवाहर ने चीन जाने का फैसला किया। राजा, हमारे बच्चे और मैं सब उन्हें शुभ-कामनाओं के साथ विदा करने इलाहाबाद गए। जवाहर के मन में हमेशा से चीन जाने की इच्छा थी; क्योंकि प्राचीन देशों से उन्हें बड़ी दिलचस्पी है। मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि आखिर उनकी यह बहुत पुरानी इच्छा पूरी हो रही है। उनका सफर बहुत ही थोड़ा रहा और उन्हें उसे जल्दी ख़तम करना पड़ा; क्योंकि लड़ाई छिड़ गई। जवाहर जब इस सफर से वापस लौटे तो उनके दिल में चीनियों और उनके महान् नेता जनरलस्सिमो चांगकाइ शेक की बहादुरी और हर हालत में अपने देश की हिफ़ाज़त करने और उसकी आज़ादी की रक्षा के निश्चय के लिए बड़ा मान था और वह इन लोगों की बड़ी तारीफ़ करते थे।

सितम्बर १९३९ में इंगलैंड और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ गया। हिन्दुस्तान की तरफ से भी जर्मनी के ख़िलाफ हिन्दुस्तान की मर्जी मालूम किए बिना—जंग का ऐलान किया गया। पहले तो हम लड़ाई की हालत को बड़े ग़ौर से देखते रहे और यह आशा करते रहे कि आख़िर साम्राज्यवाद ख़त्म हो जायगा और इसी उथल-पुथल में से आज़ाद हिन्दुस्तान उठ खड़ा होगा। गांधीजी और कांग्रेस की हमदर्दी पूरी तरह और दिल से ब्रिटेन के साथ थी और उन्होंने मदद और दोस्ती देने की जो बात कही थी वह बिलकुल सच्ची थी। हम यह चाहते थे कि लड़ाई किन उद्देश्यों से लड़ी जा रही है, उनका ऐलान किया जाए; पर कोई ऐलान नहीं किया गया। धीरे-धीरे यह हुआ कि जो लाखों और करोड़ों हिन्दुस्तानी यह आशा रखते थे कि अपने इतिहास के इस नाजुक मौके पर ब्रिटेन अपने मन की तबदीली का सुबूत पेश करे, उनके दिलों पर मायूसी छाती गई।

१९४० में गांधीजी के लिए सिवाय इसके कोई और रास्ता न रहा कि वह वैयक्तिक सत्याग्रह शुरू करें। यह पूरे देश की तरफ से एक प्रकार की नैतिक पुकार थी, जिसके द्वारा वह सरकार की नीति के प्रति विरोध ज़ाहिर करना चाहते थे। पहला स्वयंसेवक जो गांधीजी ने इस काम के लिए चुना, श्रीविनोबा भावे थे, जो पूर्ण सत्याग्रही थे। दूसरे स्वयंसेवक जवाहर होते, पर इससे पहले कि जवाहर सत्याग्रह करते, वर्धा से इलाहाबाद जाते हुए रास्ते ही में वे

पकड़ लिये गये और मुकदमा चलाने के लिए उन्हें गोरखपुर ले जाया गया। उन्हें चार साल की सख़्त कैद का हुक्म सुनाया गया। यह ऐसी सज़ा थी, जिसने सारे हिन्दुस्तान को हैरान कर दिया, पर उसीके साथ देश में यह निश्चय भी पैदा कर दिया कि अपनी आज़ादी की लड़ाई आख़िर तक जारी रहेगी।

राजा उन लोगों में से थे, जिन्होंने अपने आपको स्वयंसेवक की हैसियत से पेश किया; पर जब राजा ने गांधीजी की इजाज़त मांगी तो उन्होंने पूछा कि क्या मुझे यह ख़याल पसन्द है। गांधीजी ने कहा कि अगर किसी कारण मुझे यह बात पसन्द न हो तो फिर उनकी यह राय होगी कि राजा जेल न जाएं। पर हमारे चारों तरफ जो गड़बड़ी मच रही थी उसे देखते हुए मैं जानती थी कि जब तक राजा इस काम में अपनी शक्ति के अनुसार हिस्सा न लेंगे, उन्हें चैन नहीं पड़ेगा। इसलिए मैं भी राज़ी हो गई। राजा की गिरफ्तारी के एक महीना बाद मैंने बापू को खत लिखकर खुद भी सत्याग्रह करने की इजाज़त चाही, इसलिए कि अब लड़ाई से अलग रहने में बड़ी तकलीफ थी। पर उन्होंने मुझे इजाज़त नहीं दी; क्योंकि मेरे बच्चे छोटे थे और उनकी देख-भाल की ज़रूरत थी। मेरे लिए सिवाय इसके चारा न था कि उनके फैसले पर अमल करूँ।

इससे पहले राजा और मैं कभी पन्द्रह दिन या तीन हफ्तों से ज्यादा के लिए एक-दूसरे से जुदा नहीं हुए थे और अब उनकी जुदाई से मुझे बड़ी तकलीफ हो रही थी। हमें पन्द्रह दिनों में एक बार मुलाकात की इजाज़त थी और नियत समय पर हम खत भी लिख सकते थे। मेरे आस-पास काफी अच्छे दोस्त थे, फिर भी मुझे अक्सर अकेलापन महसूस होता था। मेरे लड़के भी राजा की गैर-हाजिरी महसूस करते थे। छोटी उम्र के होने पर भी वे यह समझते थे कि राजा जेल क्यों गए हैं और उन्हें अपने पिता पर फख़ भी था। कभी-कभी यह होता था कि मुलाकात के बाद इन बच्चों को तैश आ जाता था और उनके रोकते-रोकते कुछ आंसू उनकी आंखों से ढुलक ही जाते थे। इस बार कैदियों से मुलाकात की इजाज़त नहीं थी और उसकी वजह से छोटे-छोटे बच्चों के दिल में भी कटुता और नफ़रत पैदा हो गई थी।

: १४ :

"संसार के तमाम साम्राज्यों की सेनाएं भी एक सच्चे आदमी की आत्मा को कुचल नहीं सकतीं। वही एक आदमी अंत में कामयाब होकर रहता है।"

—टेरेन्स मेकस्विनी

ग्यारह बरस की उम्र तक जवाहर अपने मां-बाप के इकलौते बच्चे थे और हमारे माता-पिता ने, खासकर माताजी ने, लाड़-चाव से उन्हें बहुत कुछ बिगाड़ दिया था। वे स्कूल नहीं जाते थे। घर पर ही मास्टर रखकर उनकी पढ़ाई का इन्तजाम किया गया था और कई साल तक उनके कोई भाई-बहन न होने की वजह से उन्हें अकेले रहने की आदत पड़ गई थी। हालांकि पिताजी ने उन्हें बिगाड़ रखा था, फिर भी भाग्यवश पिताजी बड़े अनुशासन-प्रिय थे। इससे जवाहर में अपने आपको बहुत बड़ा समझने की आदत न पैदा हो सकी।

बचपन में भी जवाहर के मन में पिताजी के लिए बड़ी इज्ज़त थी। वह पिताजी को तमाम अच्छी बातों और खूबियों, बहादुरी और हिम्मत की मूर्ति समझते थे और उनकी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि खुद भी उन्हीं-जैसे बनें। हालांकि वे पिताजी को बहुत पसंद करते थे और उनसे उन्हें प्रेम भी था, तथापि वे उनसे डरते भी बहुत थे। पिताजी के गुस्से से जवाहर कांपते थे; क्योंकि एक बार वे इस गुस्से के शिकार हुए थे और उस वक्त की याद आसानी से उनके दिल से मिट नहीं सकती थी, पर हम सब यह जानते थे कि पिताजी हमें कभी भी नाइन्साफी से सज़ा नहीं देंगे। फिर भी जैसे साल पर साल गुजरते गए, पिताजी अपने गुस्से पर काबू पाते गए और हालांकि उनका गुस्सा आखिर वक्त तक उनकी तबियत में मौजूद था, पर वह पूरी तरह उनके कब्ज़े में रहा।

इस तरह जवाहर बड़े होते गये। वे शरमीले, तेज स्वभाव के थे और अपनी उम्र के संगी-साथी न होने के कारण अपने से बड़ी उम्र वालों से बहुत मिला करते थे। चौदह साल की उम्र में वे हैरो गए और अपनी शिक्षा केम्ब्रिज में ख़तम करके सन् १९१२ में हिन्दुस्तान वापस लौटे। तभी मैंने पहली बार उन्हें देखा, हालांकि १९०८ में भी वे मुझे देख चुके थे, जब कि वे छुट्टियों में घर आए हुए थे।

कई साल तक मेरे भाई मेरे लिए अजनबी शख़्स बने रहे, एक ऐसे व्यक्ति, जिसे मैं कभी तो पसंद करती थी और कभी नापसंद। कुछ साल बाद जब सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ और जवाहर राजनीति में कूद पड़े तो मैंने उन्हें ज्यादा करीब से देखा और जैसे-जैसे मैं उन्हें ज्यादा जानने लगी वे मुझे ज्यादा पसंद आते गए और मेरा अपने इस भाई से, जिसे मैं पहले गलती से घमंडी समझती थी, प्रेम बढ़ता गया।

एक बड़े भाई की हैसियत से जवाहर में कोई भी खामी नहीं। वह मेरी बहन से और मुझसे उम्र में बहुत बड़े हैं; पर उन्होंने कभी इसकी कोशिश नहीं की कि हमारे लिए नियम-कानून बना दें, जैसा अक्सर बड़े भाई अपने छोटों के लिए किया करते हैं। अगर हमारी कोई बात उन्हें नापसंद हुई है तो भी उन्होंने नर्मी से हमें इस तरह पर समझाया है कि हमारी भूल खुद हमारी समझ में आ जाए। अगर किसी बारे में हम उनसे सहमत न हों और इससे उन्हें कितनी भी तकलीफ क्यों न हो, फिर भी वे यह कोशिश करते हैं कि अपनी नाराज़गी ज़ाहिर न होने दें।

अपने विचार वे हम पर कभी भी नहीं लादते। स्वरूप और मेरे लिए वे बड़े अच्छे और स्नेहशील बड़े भाई ही नहीं हैं, वे हमारे बड़े भारी दोस्त और साथी भी हैं, जिसने अपने प्रेम और अपनी समझदारी से अपने आपको हमारे लिए बड़ा कीमती मित्र बनाया है। हम जानते हैं कि जिस तरह पहले पिताजी थे उसी तरह अब वे हमेशा हमारे साथ हैं—शक्ति का एक ऐसा स्तंभ, जिसका हम जब चाहें सहारा ले सकते हैं और जिंदगी के छोटे-छोटे सवाल जब हमें परेशान करें तो उनकी मदद लेकर उन्हें हल कर लें। वह कभी उपदेश नहीं देते; पर जब कभी ज़रूरत हो, मदद देने और रास्ता दिखाने के लिए तय्यार रहते हैं। वह एक ऐसे विश्वसनीय मित्र हैं, जिन्हें इन्सान मज़ाक उड़ाये जाने या झिड़कियां खाने के डर के बिना अपने

मन की गुप्त बात बता सकता है। खुद उनमें बहुत ज्यादा इन्सानियत होने की वजह से वे हमेशा दूसरे की कमजोरी समझने में कसर नहीं रखते।

पिताजी की मृत्यु के बाद जवाहर को सबसे ज्यादा फिक्र माता जी की और मेरी थी। स्वरूप की शादी हो चुकी थी और उसका अपना घर था। अब हमारे छोटे से घर के मुखिया जवाहर थे, पर वे यह नहीं चाहते थे कि माता-जी को या मुझे यह खयाल हो कि हमारा भार जवाहर पर पड़ रहा है, जैसा कि हिन्दुस्तानी घरों में आम-तौर पर होता है। हमें कभी इसका ख़याल भी नहीं आया, पर जवाहर को जरूर आया। पिताजी ने कोई वसीयतनामा नहीं छोड़ा, न हमें उनसे इसकी आशा थी कि वह ऐसा करेंगे, क्योंकि यह चीज़ उनकी तबियत के ख़िलाफ़ थी। फिर भी कुछ चीजें थीं जो जवाहर को परे-शान कर रही थीं। उन्होंने सोचा कि शायद मैं अपने आपको इतना आज़ाद न समझूं, जितना पिताजी की ज़िंदगी में समझती थी और शायद यह भी पसंद न करूं कि उनसे रुपया-पैसा मांगू। इसलिये उन्होंने मुझे एक खत लिखा, जिसमें लिखा था कि उनकी यह इच्छा है कि माताजी और मैं अपने आपको आनंद-भवन का और पिताजी ने जो कुछ छोड़ा है उस सबका असली मालिक समझें। वह खुद केवल एक ट्रस्टी हैं, जिसका काम हमारी और हमारे कामों की देख-भाल करना है और हम भी इसी दृष्टि से उनकी ओर देखें। उन्होंने यह भी लिखा था कि खुद उन्हें और उनके खानदान वालों को बहुत कम खर्च की जरूरत होती है। इसलिए हम लोग बिना किसी झिझक के पहले की तरह रहें और उनका कुछ भी ख़याल न करें। वे सिर्फ इसलिए हैं कि जब ज़रूरत हो हमें रास्ता दिखायें और हमारी मदद करें। मेरा ख़याल है कि कोई और भाई यह न करता। यह जवाहर ही की खूबी है। वह जो बात कहते हैं, करते भी हैं और उनके कदम कभी डगमगाते नहीं।

पिताजी की तरह जवाहर का गुस्सा भी बड़ा बुरा है। जब मैं चौदह साल की थी तो जवाहर ने कहा कि मुझे हिसाब सिखायेंगे। यही वह विषय था, जो मुझे परेशान करता था। मैं इस बात से खुश न थी; पर उन्हें टाल भी नहीं सकती थी। उन दिनों मैं जवाहर से कुछ घबराती भी थी, पर यह नहीं समझती थी कि वह मुझ पर भी ख़फा होंगे। शुरू के कुछ पाठ बड़े अच्छे रहे और जवाहर का पढ़ाने का तरीका मुझे खूब पसंद आया। जिस विषय को मैं दिल से नापसंद करती थी उसी में मुझे बड़ा मजा आने लगा

और मैं हर रोज उस घंटे का इन्तज़ार करने लगी, जिसमें जवाहर मुझे पढ़ाया करते थे। पर जब मुझमें कुछ-कुछ विश्वास पैदा होने लगा और जवाहर का डर भी मेरे दिल से कम हुआ तो इसी बीच एक रोज गड़बड़ हो गई। एक दिन न मालूम क्या बात थी कि मैं सबक पर ध्यान नहीं दे पा रही थी और कोई बात मुझे याद ही नहीं रहती थी। इस चीज ने जवाहर को ख़फ़ा कर दिया (मैं उन्हें दोष नहीं देती) और उन्हें गुस्सा आना शुरू हुआ। उनके गुस्से का नतीजा यह हुआ कि मेरा मन सबक पर से एकदम उठ गया और मैं बिलकुल ही ख़ामोश हो गई। वह मुझ पर बिगड़े और चिल्ला-चिल्लाकर कुछ वाक्य उन्होंने कहे, जिससे मैं और भी घबरा गई। हैरान और परेशान होकर मैं उठ खड़ी हुई और जाने लगी। मैं सोच रही थी कि आख़िर एक दिन सबक भूल जाना कोई ऐसा बड़ा गुनाह तो नहीं है, जिस पर भाई साहब इतने ख़फ़ा हों। मुझे बहुत बुरा लगा और तकलीफ़ भी हुई और जब मैं अपनी किताबें उठा रही थी तो वह आंसू, जिन्हें दबाने की मैं बहुत कोशिश कर रही थी, मेरी आंखों से झलक पड़े। जवाहर ने मेरे आंसू देखे और उनका गुस्सा काफ़ूर हो गया। अब जो कुछ हुआ उस पर उन्हें अफसोस होने लगा। वह भी उठ खड़े हुए और अपनी बाहें मेरे गले में डालकर उन्होंने मुझसे माफी मांगी। पर उन्होंने जो कुछ भी कहा या किया, इसके बाद में मेरा मन कभी भी जवाहर से सबक लेने के लिए तैयार न हुआ।

जो लोग जवाहर को अच्छी तरह नहीं जानते, उनका यह खयाल है कि उन्हें जिन्दगी में राजनीति और लिखने-पढ़ने के सिवा कोई और दिलचस्पी नहीं है। इसमें शक नहीं कि इन कामों में उनका ज्यादा वक्त निकल जाता है, पर उन्हें और भी कई चीजों से बड़ी दिलचस्पी है और इन पर वह जितना वक्त खर्च करना चाहते हैं, कर नहीं सकते। राजनैतिक काम के बाद जो भी वक्त बच रहता है, उसे जवाहर पढ़ने में बिताते हैं। कभी-कभी लिखने में भी; पर लिखने का काम वह अक्सर उस वक्त करते हैं जब वह जेल में होते हैं। उन्हें घोड़े की सवारी बहुत पसन्द है और वह बड़े अच्छे सवार हैं। तैरने का भी बड़ा शौक है; पर उन्हें इसका मौका बहुत कम मिलता है। जब तक हम लोग उन्हें मजबूर न करें वह सिनेमा या थिएटर नहीं जाते और अगर खेल सचमुच अच्छा हुआ तो उससे खूब लुत्फ उठाते हैं। जवाहर को बहुत ही खुश देखना हो तो उन्हें बच्चों के साथ देखना

चाहिए। उन्हें बच्चों से बड़ी दिलचस्पी है और बच्चे भी उन्हें बहुत पसन्द करते हैं। चाहे वह कितने ही व्यस्त या थके हुए क्यों न हों, अगर कोई बच्चा उनके पास जाए और कोई सवाल करे तो जवाहर उसे कभी भी टालते नहीं, बल्कि अपना और सब काम रोक कर उस बच्चे के सवालों का जवाब देते हैं।

दिन भर की थका देने वाली महनत के बाद जवाहर अपने छोटे भानजों, भानजियों या दूसरे बच्चों के साथ जब कुछ वक्त गुजारते हैं तो उन्हें इस हालत में देखने में बड़ा मज़ा आता है। उस वक्त ऐसा मालूम होता है कि वे अपनी तमाम फिक्रों और परेशानियों से आज़ाद हो गये हैं और बच्चों में मिलकर खुद भी बच्चा बन गये हैं। वह बच्चों के साथ दौड़ते हैं, खेलते हैं और खुद भी इन बातों से उतना ही लुत्फ उठाते हैं, जितना उनके साथ खेलने में बच्चे। हम में से ज्यादातर लोग ऐसा नहीं कर सकते; क्योंकि हमें अपने बड़प्पन का बहुत ख़याल होता है और हम यह बात किसी तरह भूल नहीं सकते कि हम बड़ी उम्र के हैं। जवाहर ऐसा कर सकते हैं; क्योंकि उनमें बहुत सादगी और इनसानियत है और यही सबब है कि छोटे बच्चों को भी उनके साथ खेलने में बड़ा मज़ा आता है।

जवाहर में एक बड़ी भारी खूबी है जो उनका कभी साथ नहीं छोड़ती। चाहे वह जेल में हों, बाहर हों, कितने ही काम में हों और हारे-थके हों, उन्हें जन्मदिन, वार्षिकोत्सव और इस तरह के दूसरे मौके बराबर याद रहते हैं। इन छोटी-छोटी बातों का भी जितना ख़याल रखते हैं, उसी की वजह से उनके जानने वालों को वे और भी ज्यादा पसन्द आते हैं और उनका प्रेम उन लोगों के दिल में दुगना हो जाता है। एक बार यह हुआ कि हिन्दुस्तानी तिथि के हिसाब से मेरी सालगिरह १६ अक्तूबर १६३० को पड़ती थी। उसी दिन जवाहर गिरफ्तार हुए और गिरफ्तारी के कुछ देर बाद उन्हें यह बात याद आई। कुछ दिनों के बाद उन्होंने मुझे लिखा, "अभी-अभी मुझे यह बात याद आई है कि ब्रिटिश सरकार ने दफा १४४ का आर्डर निकाल कर और उसके बाद मुझे १६ अक्तूबर को गिरफ्तार करके एक बड़ी भारी बात का खयाल नहीं रखा, जो उसी तारीख को हुई थी। उस दिन मैं अपनी प्यारी बहन को उसकी सालगिरह का जो सुन्दर और कलापूर्ण तोहफ़ा भेजता, वह न भेज सका। मेरी तरफ से यह ग़फ़लत बड़ी ही अफसोस की बात थी और इस ग़लती को मैं अब ठीक करता हूं। इसलिए अब किताबों की किसी दुकान पर जाकर कुछ

ऐसी किताबें खरीदो, जिनमें प्राचीन विद्वानों का ज्ञान, मध्यकालीन युग का विश्वास, वर्तमान युग का शंकावाद और भविष्य के गौरव की झलक हो। ये किताबें तुम खरीद लो, उनकी कीमत अदा करो और उसे अपने ग़ाफ़िल भाई की तरफ से, जिसे अपनी छोटी बहन अक्सर याद आती रहती है, सालगिरह का देर में पहुंचा हुआ तोहफ़ा समझ लो। फिर इन किताबों को पढ़ो और उन्हें पढ़कर एक जादू की नगरी खड़ी करो जो सपनों से भरी हुई हो; जिसमें बड़े-बड़े महल और फूलों से खिले हुए बाग, और बहते हुए चश्मे हों; जहां सुख ही सुख का राज हो और हमारी यह दुखी दुनिया जिन खराबियों की शिकार है उनका उस शहर में प्रवेश भी बन्द हो। तब जिन्दगी इस जादू की नगरी के बनाने और हमारे चारों ओर की बदसूरती और दुख-दर्द के हटाने के लिए एक लम्बी और सुख-भरी कोशिश बन जायगी।

जवाहर जब इंग्लैंड से वापस आये तो वे बड़े ही शानदार और मनमोहक युवक थे, पर किसी कदर स्वाभिमानी और बिगड़े हुए भी, जैसेकि अक्सर अमीरों के लड़के हुआ करते हैं। यहां आकर उन्होंने जो साल गुजारे वे उनके लिए बड़े तजुरबे के, मगर साथ ही दुख और मायूसी के थे। पर इन सब बातों का उनकी तबियत पर बड़ा अच्छा असर हुआ और अब वे पहले से भी कहीं ज्यादा प्रिय बन गये। उनकी पश्चिमी शिक्षा ने उन पर काफी असर डाला है और लोग समझते हैं कि अपने दृष्टिकोण में वे हिन्दुस्तानी से ज्यादा युरोपियन हैं। पर उस नैतिक और राजनैतिक उथल-पुथल ने जिसमें से दुनिया लड़ाई के और भुखमरी के पिछले बरसों में गुजरी है हममें से बहुत-सों को और खासकर जवाहर को हिन्दुस्तान और चीन के गहरे और ऊंचे ख़यालों की तरफ खींच लिया है। अब उनके व्यक्तित्व की जड़ें पुरानी ज़मीन में गहरी जा रही हैं और हमारे गौरवपूर्ण अतीत से उसे कीमती खुराक मिल रही है। अनेक निराशाओं के बावजूद भी उनकी मानसिक शांति बनीर हना और कटुता दूर हो जाना, ये ऐसी चीजें हैं, जो विशुद्ध भारतीय हैं। उनमें पूर्व और पश्चिम का संमिश्रण है, पूर्व उन्हें जिंदगी का रास्ता दिखाता है और वे उन शक्तियों को ज्यादा अच्छी तरह समझ पाते हैं जो इन्सानों की किस्मत बनाती हैं। उनकी ज्वलंत राष्ट्रीयता ने उनमें यह दृढ़ विश्वास पैदा कर दिया है कि हमारे राष्ट्र की सच्ची आज़ादी कायम रह नहीं सकती जब तक कि दूसरे देशों में जुल्म और जबर्दस्ती होती रहे। उनके समवेदनशील हृदय पर एशिया या

यूरोप के किसी भी हिस्से में होने वाली किसी भी घटना का उतना ही असर होता है, जितना हिन्दुस्तान की किसी घटना का। वे आज़ादी के सच्चे सिपाही हैं और जहां कहीं भी और जब कभी भी आज़ादी ख़तरे में होती है, वे उसकी रक्षा के लिए अपनी पूरी शक्ति से लड़ने के लिए तैयार रहते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो समझते हैं कि जवाहर स्वाभिमानी और अपनी ही चलाने वाले व्यक्ति हैं। वे लोग इस बात को नापसन्द करते हैं। कभी-कभी ऐसा ज़रूर मालूम होता है कि जवाहर ऐसे ही हैं; पर सच पूछिए तो स्वभाव से वे स्वाभिमानी या दूसरों पर हुकूमत चलाने वाले नहीं हैं। अगर मुमकिन हो तो वे शोहरत से दूर ही रहना पसन्द करेंगे। मुझे यकीन है कि अगर ऐसा हो सकता तो जवाहर को ज्यादा मानसिक शांति मिलती, पर ऐसा हो नहीं सका। उनकी हालत बहुत-कुछ सपने देखने वालों जैसी है और अक्सर जब वे काम से थककर आराम करने लगते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि वह दूर की कोई चीज़ देख रहे हैं। उनकी आंखें स्वप्निल हो उठती हैं और ऐसा मालूम होता है कि वे किसी दूसरी दुनिया में जा पहुंचे हों। कभी-कभी उनकी आंखों में अजीब दुख-दर्द का पता चलता है और उनका चेहरा जो तिरपन बरस की उम्र होने पर भी जवानों का-सा है, अचानक बूढ़ों का-सा दिखाई देने लगता है। ज़िन्दगी जवाहर के लिए आसान नहीं है और कुर्बानियों और तकलीफ़ों ने उन पर अपना असर छोड़ा है। ऐसी मुसीबतें और बहुत-सों पर भी गुजरी हैं, जिन्होंने यही रास्ता लिया है।

ऐसे लोग भी हैं जो जवाहर को दोष देते हैं और उन पर इलज़ाम लगाते हैं, पर ऐसे लोग या तो उन्हें समझते ही नहीं या उनकी गहराई तक पहुँच नहीं पाते। वे हम सब की तरह इन्सान हैं और उनमें वही सब कमज़ोरियाँ हैं जो और इन्सानों में होती हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि जहाँ अक्सर लोग गिर जाते हैं और थक जाते हैं वहाँ जवाहर नहीं गिरते। यही उनकी ख़ूबी है। अगर हिन्दुस्तान जवाहर की पूजा करता है तो केवल जवाहर की खूबियों और शक्ति के कारण नहीं, इस भक्ति का सबब जवाहर की वे खूबियाँ भी हैं, जो मामूली इन्सानों में होती हैं; वे न तो अपने आपको जन-नायक समझते हैं, न शहीद। वे तो बस यही मानते हैं कि वे देश के सेवक हैं और उन्हें यह फख्र हासिल है कि देश की जरूरत के मौके पर उसकी सेवा करें और वे यह काम आखिर तक करते रहेंगे। हालाँकि उनका करीब-करीब आधा

जीवन जेल में गुज़र चुका है, फिर भी वे जेल जाने को कोई बड़ी भारी कुर्बानी नहीं समझते और न ऐसी बात कि उसका कोई शोर मचाया जाए। जब हम विदेशी सत्ता के ख़िलाफ़ अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं तो यह बात होती ही है। एक बार उन्होंने मुझे जेल से लिखा था, "आज की दुनिया में जेल जाना बहुत छोटी और मामूली बात है। अब दुनिया अपनी जड़-बुनियाद से हिल रही है। हमेशा होने वाली एक बात की तरह से मैं समझता हूँ जेल की भी कुछ कीमत जरूर है और इससे आदमी को फायदा भी पहुँचता है; पर जब तक यह काम अन्दरूनी लगन से न किया गया हो, यह कीमत कुछ बहुत ज्यादा नहीं होती। अगर दिल में लगन मौजूद हो तो फिर और चीजों की पर्वाह ही नहीं रहती, इसलिए कि अन्दरूनी लगन बड़ी भारी चीज़ है।"

मगर फिर भी बार-बार जेल जाना और जेल जाते ही रहना कोई मामूली या आसान बात नहीं है और न जेलखाना ही कोई फूलों की सेज है, जहां जाकर आदमी कभी-कभी आराम करले। कुछ लोग समझते हैं कि जो लोग बार-बार जेल जाते हैं उन्हें इस बात की आदत हो जाती है और वे इसकी कुछ पर्वाह नहीं करते। ऐसा ख़याल रखने वाले लोग अगर कुछ महीने भी जेल में गुज़ारें तो उनका यह ग़लत ख़याल दूर हो जायगा। जेल में शारीरिक तकलीफें तो होती ही हैं और जब कोई आदमी जेल जाता है तो यह समझ कर जाता है कि ऐसी तकलीफ तो होगी ही, पर जिस बात से तकलीफ होती है वह मानसिक कष्ट है, जो जेल की जिन्दगी में आएदिन छोटी-छोटी मुसीबतों के रूप में भुगतना पड़ता है।

अपने प्रियजनों को जुदा कर दिया जाना और उनसे सिर्फ उस वक्त मिल सकना जब जेल के हाकिमों की मर्जी हो, ऐसी बातें हैं जिनसे आदमी को तकलीफ होती है और कभी-कभी उसके दिल में कटुता भी पैदा हो जाती है। जेल में काफी लम्बी मुद्दत तक रहना और फिर भी दिल में कड़ुवाहट पैदा न होने देना यह बड़ी भारी बात है और इसे जवाहर ने कामयाबी से हासिल किया है।

जैसा कि जवाहर ने मुझे लिखा था, किसी काम के लिए अगर दिल की लगन हो तभी आदमी अपना मकसद हासिल करने के लिए तकलीफ उठा सकता है और मुसीबत बर्दाश्त कर सकता है। जवाहर जब कभी गिरफ्तार होते हैं तो हम अक्सर परेशान होते हैं; पर वे अपनी तकलीफ को हमेशा

बहुत छोटा बनाकर जो भी मुसीबत आए उसे सहन करने के लिए हमें हिम्मत और शक्ति दिलाते रहते हैं।

१९४० में जवाहर को चार साल की सख्त कैद की सजा दी गई। जिस किसी ने भी यह खबर पढ़ी उसे इस सजा के राक्षसी रूप ने हैरान कर दिया। हम लोगों पर भी यह एक बड़ा भारी वार था। हम लोगों को हुकूमत के अचानक और अजीब फर्मान सुनने की कुछ आदत-सी हो गई थी; पर जवाहर की यह सजा सुनकर हमें इतनी तकलीफ हुई, जितनी इससे पहले की किसी सजा के हुक्म से नहीं हुई थी। मैं इससे बहुत ज्यादा परेशान हुई और मैंने अपनी यह परेशानी एकाध खतों में जाहिर भी की। एक खत में मैंने पूछा था कि क्या राजा और मैं देहरादून जेल में आकर तुमसे मिल सकते हैं? मेरे खत के जवाब में जवाहर ने लिखा—"राजा और तुम कभी भी चाहो, शौक से आ सकते हो। मैं खासतौर पर राजा से मिलना चाहूँगा; क्योंकि हो सकता है फिर इसके बाद कुछ समय तक मुझे उनसे मिलने का मौका ही न मिले, (राजा कुछ दिनों के बाद व्यक्तिगत सत्याग्रह करने वाले थे)। मुझे यह मालूम करके दुख हुआ कि मेरी सजा की खबर सुनकर राजा परेशान हो गए और हां, मेरी प्यारी बहन तुम भी! आजकल मुझे जो मानसिक शान्ति हासिल है, वैसी इससे पहले कभी शायद ही मिली हो और हमारी आजकल की पागल दुनिया में यह सचमुच बड़ी बात है। मैंने इस बात की आदत डाल ली है कि जब चाहूँ अपने आपको अन्दर की तरफ खींच लूँ और अपने दिल के वे दरवाजे बन्द कर लूँ, जिनका सम्बन्ध उन कामों से होता है, जो जेल में आजाने से रुक जाते हैं। तुम्हें मेरे बारे में बिना सबब परेशान न होना चाहिये। ज़िन्दगी हम सबके लिए कठिन होती जा रही है और आराम के पिछले दिन एक ऐसे ज़माने के मालूम होते हैं जो गुज़र चुके, वे दिन फिर न जाने कब वापस आएँगे और क्या कभी वापस आएँगे भी? कोई नहीं जानता कि क्या होगा? ज़िन्दगी जैसी भी है उसी में सुखी रहने की आदत हमें डालनी चाहिये और जो बात मौजूद नहीं है, उसके लिए तरसना न चाहिए। दिल में जो तूफान उठते हैं और मन को जो तकलीफ होती है उसके मुकाबले में शारीरिक कठिनाइयाँ बहुत मामूली चीजें हैं और चाहे जिन्दगी तकलीफ से गुजरे, चाहे चैन से, आदमी उससे हमेशा कुछ-न-कुछ हासिल कर सकता है; पर जिन्दगी से पूरा लुत्फ़ उठाने के लिए आदमी को यह फैसला कर लेना चाहिए

कि वह इस बात का खयाल दिल से निकाल दे कि उसे इस बात के लिए क्या कीमत अदा करनी पड़ती है ।''

बचपन ही से पिताजी ने हमें यह सिखाया था कि हम खतरे मोल लेने और उनका मुकाबला करने से न घबराएँ । "खतरे से दूर रहो" यह कभी भी हमारा आदर्श नहीं रहा है और मुझे आशा है कि न हमारे बच्चों का रहेगा। बहुत बार ऐसा हुआ है कि हममें से हर एक को ऐसा रास्ता चलना पड़ा और ऐसा सफर करना पड़ा जो खतरे से भरा हुआ था; पर इस चीज ने हमारे कार्यक्रम को पूरा करने से कभी नहीं रोका । जहाँ तक जवाहर का सम्बन्ध है अगर कहीं इस बात का शुबहा भी हो कि जो काम वह करना चाहते हैं उसमें कोई खतरा है तब तो यही बात उन्हें उस काम के करने के लिए तैयार करने का एक और सबब बन जाती है। शायद कभी-कभी यह बात बचपन की-सी मालूम हो, पर यह समझ कर कि जो भी कदम उठाया जाय उसमें खतरा जरूर है सारी उमर डरते-डरते गुज़ारने से यह कहीं अच्छा है कि निडरता का तरीका अख्तियार किया जाए ।

एक बार जवाहर अलीपुर–कलकत्ता की जेल में थे । उनकी गिरफ्तारी के बाद से उनका कोई खत हमें नहीं मिला था । इसलिए कुदरती तौर पर हम ज़रा परेशान थे । उन्हीं दिनों उनका एक खत मेरे पास आया, जो उनके मन का पता देता था । "मेरी प्यारी बहन, मुझे आशा है कि तुम और घर के और लोग मेरे बारे में परेशान न होंगे । मैं अच्छा हूँ और आराम कर रहा हूँ । मैं यहाँ खूब पढ़ूँगा, इसलिए कि यहां कोई और काम ही नहीं है । पढ़ना, सोचना और इस तरह दिनचर्या पूरी करना। इसलिए जब मैं बाहर आऊँगा— और अभी तो इसमें बड़ी देर है—तो हो सकता है कि मैं अब जितना अकल-मन्द हूँ उससे कुछ ज्यादा अकलमन्द बनकर बाहर निकलूँ । पर यह बात हो भी सकती है और नहीं भी । अकलमन्दी बड़ी चकमा देने वाली चीज़ है और उसको पा लेना ज़रा मुश्किल काम है और फिर भी कभी-कभी वह अचा-नक और बिना किसी इत्तला के मिल जाती है। इस दरमियान में मैं श्रद्धा से उसकी भक्ति करता रहूँगा और उसकी कृपा हासिल करने की कोशिश करूंगा। हो सकता है कि किसी दिन वह मुझ पर मेहरबान हो जाए । खैर, उसकी भक्ति करने और उसकी मर्जी हासिल करने के लिए जेल बुरी या गलत जगह नहीं है । ज़िन्दगी की दौड़-धूप यहाँ से काफी दूर है और मन को बेचैन नहीं

करती और यह अच्छा ही है कि आदमी हर किसी की जिन्दगी को जरा दूर से और सबसे अलग रहकर देख सके।''

जवाहर खेल-कूद के शौकीन हैं; पर इसका यह मतलब नहीं कि उन्हें इसका मौका भी मिलता है। उन्हें सर्दी के खेलों में बड़ा मज़ा आता है। जब हम लोग स्वीजरलैंड में थे तो बरफ़ पर फिसलने और बरफ़ पर दौड़ने में घंटों गुजार देते थे। उन्हें कुदरत की ख़ूबसूरती अपने कुदरती अन्दाज़ में बहुत पसन्द है इसलिए कि वे खुद भी बड़ी आसानी से कुदरत में घुल-मिल सकते हैं और मासूम बच्चों की तरह उनसे लुत्फ उठा सकते हैं।

जवाहर हर एक से यही आशा रखते हैं कि वह जो काम करे अच्छी तरह करे, चाहे वह कोई काम हो या खेल। दूसरों से वह सख्ती से काम लिया करते हैं। १९३१ में कोई छ महीने मैंने उनकी सेक्रेटरी का काम किया और मुझे यह काम दिल से पसन्द था। फिर भी मुझे हरदम यह डर लगा रहता था कि मुझसे कोई गलती न हो जाए और वह मुझसे ख़फ़ा न हो जायँ। खुशनसीबी से मैं इससे बच गई, पर मैं आज तक यह फैसला नहीं कर सकी हूं कि यह बात मेरे काम करने की खूबी से हुई या यूँ ही इत्तफ़ाक से हो गई। सुस्त, नाकाबिल और काहिल होना जवाहर की नज़र में ऐसा गुनाह है,जिसे वह कभी माफ नहीं करते। एक बार उन्होंने स्वीजरलैंड में मुझे लकड़ियों के सहारे बर्फ पर चलना सिखाना चाहा। जो दिन मुझे पहला सबक देने के लिए चुना गया वह अच्छा नहीं था। दो दिन से बर्फ नहीं गिरी थी और इससे पहले जो बर्फ गिरी थी, वह जमकर सख्त होगई थी और उस पर पैर फिसलते थे। हर बार जब मैं लकड़ियों पर खड़ी होती तो मैं धम से गिर पड़ती थी। मैं किसी तरह अपना सन्तुलन ठीक नहीं रख पाती थी और इससे जवाहर को बड़ी कोफ्त हो रही थी। वह समझ रहे थे कि मैं डर रही हूँ और बिगड़ते जाते थे। मैंने बहुत कोशिश की कि कुछ कदम चलूं, पर हर बार जब मैंने कोशिश की, गिर-गिर पड़ी और अक्सर बुरी तरह गिरी। इस पर जवाहर मुझ पर बरस पड़े और कहने लगे कि मुझे लाखों बरसों में भी यह काम न आएगा। मुझे बड़ा सदमा पहुँचा और मैंने अपने एक स्विस दोस्त से कहा कि वह यह खेल मुझे सिखाए और अपने भाई की पेशीनगोई के होते हुए भी मैं तीन दिन में बर्फ पर अच्छी तरह दौड़ने लगी।

बीमार के कमरेमें जवाहर बड़े ही आदर्श तीमारदार साबित होते हैं। उनमें

बेहद नरमी और समझदारी है और भारी मुसीबत की हालत में भी वह हैरान नहीं होते और बड़े सब्र से अपना काम करते हैं। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे जिस हालत में भी हों अपने आपको उसी के मुताबिक बनाते हैं और अपने आस-पास की छोटी-छोटी चीज़ों से लुत्फ उठाते हैं और राहत हासिल करते हैं। यह बड़ी भारी कामयाबी है। एक बार उन्होंने देहरादून जेल से मुझे लिखा, "दोपहर की कड़ी धूप ने पहाड़ों की चोटियों की बर्फ के सिवा बाकी सब बर्फ पिघला दी है। बादल हट गए हैं और अब गहरे नीले रंग के आकाश की झलक मुझे दिखाई दे रही है, जो उत्तर हिन्दुस्तान में बारिश के बाद दिल को सबसे ज्यादा मोहने वाली चीज़ है। क्या बम्बई में भी यह बात होती है? शायद वहां भी होती हो, पर उस पर कोई ध्यान न देता होगा। आज की शाम असाधारण रूप से सुन्दर थी। बादल खुशी से झूम रहे थे और हंसते हुए सूरज की किरणों को गिरफ्तार करके उन्हें दिल खोलकर चारों तरफ बिखेर रहे थे। असाधारण रंग आते और जाते थे, अजीब-अजीब तसवीरें बनती और बिगड़ती थीं और उन सबसे बढ़कर यह रंगों की होली थी, जो आकाश में खेली जा रही थी। पहाड़ों की खुली चोटियां लाल-सुर्ख हो रही थीं और उन्हें देखकर ख़ैबर के इलाके के पहाड़ याद आते थे। कभी-कभी बर्फीले हिस्से चमक उठते थे और पलक मारते ही नज़रों से ग़ायब हो जाते थे और इसके थोड़ी देर बाद चाँद, जो करीब-करीब पूनो के चाँद के बराबर था, निकल आया था और उसने इस सुन्दरता को और भी बढ़ा दिया था।"

हालांकि जवाहर हमेशा हँसमुख रहते हैं और देखने में ऐसा मालूम होता है कि वे बहुत सुखी हैं, पर उन्हें काफी दुख झेलने पड़े हैं। जब उन्हें अपनी जवान पत्नी के प्रेम और संसर्ग की बहुत ज्यादा ज़रूरत थी, ऐसे समय में उसे खो देना बड़े भारी दुःख की बात थी। उन्होंने कोशिश की कि वे अपना दुःख किसी पर ज़ाहिर न होने दें। अपने ऊपर से उनका काबू कुछ ही क्षणों के लिए खोया और उसके बाद वे फौरन संभल गये। उनके चेहरे से फिर वही शान टपकने लगी और ऐसा मालूम हुआ, मानो उन्हें कोई परेशानी ही नहीं थी।

बहुत कम उम्र में ही जवाहर राजनैतिक कामों की ओर झुकने लगे। उस वक्त उन्हें इसका पता भी न था कि आगे चलकर यही उनकी ज़िन्दगी-

भर का काम हो जाएगा। इसके बाद जो बातें होती रहीं, वे उन्हें धीरे-धीरे इसी लहर में बहाती ले गईं और फिर हमेशा के लिए वे इसी में फंस गए। लेकिन अगर जवाहर को अपनी सारी पिछली ज़िन्दगी वापस मिल जाए और उन्हें नए सिरे से कोई काम करना हो तब भी वे वही सब करेंगे जो उन्होंने इससे पहले किया है। यह हो सकता है कि कामों के करने का उनका ढङ्ग कुछ बदल जाए मगर काम वही सब होंगे जो पहले उन्होंने किए हैं। बहुत-से लोग जवाहर को यह दोष देते हैं कि वे बड़े झक्की हैं, सपने देखते रहते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करते हैं और जो काम अपने सामने पड़ा होता है, उसे पूरा नहीं करते। यह सब बातें ठीक हों या न हों, पर एक बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जवाहर सपने जरूर देखते रहते हैं। वे बड़े भारी सपने देखने वाले हैं। वह आने वाले ज़माने के बारे में ऊँचे-ऊँचे सपने देखते रहते हैं और ऐसी बातें सोचते हैं, जो वे खुद तो शायद न कर सकेंगे; मगर कोई और भविष्य में कभी कर सकेगा। उनके सपने व्यक्तिगत कभी भी नहीं होते। वे सारे हिन्दुस्तान के भविष्य से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे हिन्दुस्तान के बारे में जिसकी आने वाली महानता के बारे में जवाहर को ज़रा भी शक नहीं है और जिसकी सेवा में जवाहर अपनी जान तक बड़ी खुशी से दे देंगे।

: १५ :

छाया की भाँति मैं उन स्थानों में घूमता-फिरता रहा, जहाँ मेरा बचपन बीता था। धरती मुझे रेगिस्तान दिखाई दी, जिसे अपने पुराने पूर्व परिचित बंधुओं की खोज में मुझे पार करना था।

× × ×

उन में से कुछ तो चल बसे, कुछ मुझे छोड़ गये और कुछ अब छोड़ते जा रहे थे। सब चले गये हैं, सब–वे पुराने पूर्व परिचित बंधु!

—चार्ल्स लैम्ब

अब से कोई साल भर पहले मैं अपने दोनों छोटे लड़के हर्ष और अजीत के साथ इलाहाबाद जा रही थी। राजा हमारे साथ नहीं आ सके थे; पर बाद में आने वाले थे। हम लोग इंदिरा की शादी के लिए जा रहे थे। सफर हमेशा का जाना बूझा था और मुझे इस रास्ते की हर चीज़ याद थी। पिछले साढ़े नौ साल में मैं इस रास्ते से बीसियों बार सफर कर चुकी थी, पर हर बार मुझे यह परेशानी रहा करती थी कि न मालूम घर जाकर मुझे क्या खबर मिले; क्योंकि हमेशा ऐसा होता था कि कोई-न-कोई बुरी बात अचानक हो जाती थी। कभी तो यह हुआ कि माता जी बीमार पड़ीं और कभी जवाहर की गिरफ्तारी की खबर मिली। पर इस बार मैं अपने सफर से बहुत खुश थी, इसलिए कि मैं जिस काम के लिए जा रही थी वह खुशी का काम था। मेरी प्यारी भतीजी की शादी हो रही थी।

हम लोग रात को बड़ी देर से स्टेशन पर उतरे और अपने लिए आई हुई गाड़ी पर बैठकर घर की ओर रवाना हुए। गाड़ी के पन्द्रह मिनट तक चलने के बाद दूर से आनंद-भवन पर हमारी नजर पड़ी और मेरे मन में अपने पुराने घरके लिए प्रेम जागृत हो उठा। रात बहुत हो चुकी थी,फिर भी आनंद-भवन

में खूब रोशनी थी और चहल-पहल नज़र आ रही थी। लोग घर में आ-जा रहे थे और नौकर काम में लगे हुए थे। मकान के हर कमरे से बातचीत और हंसी-मज़ाक की आवाज़ आ रही थी। बहुत बरसों के बाद फिर एक बार आनंद-भवन में आनन्द ही आनंद दिखाई दे रहा था।

धीरे-धीरे हमारी गाड़ी शानदार दरवाजों में से होती हुई अहाते में दाखिल हुई और मकान की सीढ़ियों तक गई। जैसे ही गाड़ी रुकी, मैं अपने बच्चों को भी भूल गई और गाड़ी से उतर कर सीधी अपने भाई की तलाश में गई। पर मैं आगे बढ़ी ही थी कि वे एक कमरे से निकले और उन्होंने मुझे और मेरे बच्चों को गले लगाया। फिर एक बार उन पुराने दिनों की याद ताज़ा हुई। जवाहर, अपनी बहन स्वरूप और दूसरे रिश्तेदारों से मिल-कर मैं खुश हुई। हर बार जब मैं आनंद-भवन आती थी तो मुझे बड़ी खुशी होती थी; पर वह खुशी ज्यादा देर तक कायम नहीं रहती थी। बहुत जल्द यह पता चल जाता था कि यह प्यारा घर अब वह पुराना घर नहीं रहा, कितने ही अज़ीज़ उठ गए। और नई-नई बातें यहां होती रहीं, जिन्होंने इस सारे घर को बदल डाला है। इन विचारों से आंखों में आंसू झलक आते, पर ढुलक न पाते। अबकी बार मैं दुख के किसी भी विचार को अपने मन में जगह नहीं देना चाहती थी, इसलिए कि यह हम सबके लिए बड़ी भारी खुशी का मौका था।

हालांकि बरसों बीत जाने से हमारे उस घर में, जहां पहले कभी सुख और आनंद था, अब बहुत अन्तर हो चुका था और अब वह पहलो-सी बात न थी, फिर भी चाहे थोड़ी देर के लिए ही क्यों न हो, एक बार फिर बीती हुई ज़िंदगी जीना, भाई की मुहब्बत और बहन की देख-भाल को महसूस करना और अपने आपको फिर एक बार। अठारह साल की बेफिक्र लड़की समझने में बड़ा मज़ा था।

शादी का सुन्दर उज्ज्वल प्रभात आया। सुबह से सब लोग विवाह के प्रबंध में लगे हुए थे, ताकि हर चीज वक्त पर तैयार रहे। बहुत से भाई-बहन, भतीजे-भानजे और भतीजियाँ दुलहिन के कमरे में जमा थीं और उसे छेड़ रही थीं, जैसा कि ऐसे मौकों पर लड़कियां अक्सर करती हैं। इन्दिरा को शादी के कपड़े पहनाये जा रहे थे। ये कपड़े हाथ के कते हुए सूत की खादी के थे और यह सूत दुलहन के पिता ने कभी जेल में काता था। दुलहन बड़ी

खुश और कली की तरह खिली हुई थी, हालांकि वह यह जताने की कोशिश कर रही थी कि कोई असाधारण बात नहीं है। वह मेहमानों के बीच में बैठी थी और उसके चारों तरफ सैकड़ों तोहफे रखे हुए थे, जो बराबर आते ही जा रहे थे। वह वैसे ही खूबसूरत थी मगर इस मौके पर तो और भी खूबसूरत दिखाई दे रही थी, बिलकुल ऐसे जैसे कोई नाजुक परी हो। वह हँस-हँसकर अपने पास बैठे हुए रिश्तेदारों और दोस्तों से बातें कर रही थी; पर कभी-कभी उसकी बड़ी काली आंखें स्याह पड़ जाती थीं और ऐसा मालूम होता था कि कोई पुरानी बात याद आकर उसको दुखी कर रही है। आखिर वह कौन-सा काला बादल था, जो इस शुभ दिन की खुशी में गहन लगा रहा था? कहीं उसे अपनी मां की याद तो नहीं आ रही है जो अब इस दुनिया में नहीं है और जिसके न होने से एक महत्वपूर्ण जगह खाली हो गई है? या उसे अपने प्रिय पिता से जुदा होने का खयाल सता रहा था, उस पिता से जिसके लिए वह ज़िंदगी में सब-कुछ थी? वह अब अपने पिता से जुदा होने वाली थी और अब उन्हें पहले से भी कहीं ज्यादा अकेलेपन में अपना जीवन बिताना होगा। हो सकता है कि इस खयाल से दुलहन को कुछ परेशानी हो रही हो कि अब तमाम पुराने बंधन टूट रहे हैं और एक नया जीवन शुरू हो रहा है; क्योंकि कौन कह सकता है कि भविष्य में उसके लिए क्या बदा है! सुख? दुख? मन की इच्छाओं का पूरा होना? या मायूसी? उसकी काली आंखें और ज्यादा काली पड़ गईं; पर सिर्फ एक क्षण भर के लिए। फिर वे पहले की तरह हो गईं और अब उनसे किसी ख़ास बात का पता नहीं चलता था।

शादी की शुभ घड़ी करीब आ गई और इन्दिरा अपने पिता के साथ उस जगह आई जहां शादी की रस्म अदा होने वाली थी। दूल्हा उसी जगह उसकी राह देख रहे थे। शादी की रस्म बहुत सादा और आडम्बरहीन थी। दूल्हा और दुलहन साथ-साथ बैठे और उनके सामने दुलहन के पिता। उनके करीब एक खाली आसन रखा हुआ था। यह उनकी पत्नी के लिए था, जो अब इस दुनिया में नहीं थीं; पर उस दिन भी उसकी याद उनके मन में मौजूद थी, इसलिए कि वह उनके जीवन भर की साथिन थीं। मैंने जब उस खाली आसन पर नजर डाली और उसके दर्द-भरे मतलब पर ग़ौर किया तो मेरा कण्ठ भर आया। आज अगर वह ज़िंदा होतीं तो कितनी खुश होतीं?

मेरी आंखों में उनकी वह हँसती हुई तसवीर खिंच गई। मुझे ऐसा दिखाई दिया कि उसकी आँखें मारे खुशी के चमक रही हैं और वह दुलहन की आंखों से कुछ ही बड़ी मालूम हो रही हैं। पर मैंने कोशिश की कि ऐसे दुःख के सारे विचार अपने दिल से दूर कर दूं। अगर यह सिलसिला इसी तरह जारी रहा तो और भी ऐसे बहुत-से विचार मेरे मन में आते और इस दिन की सारी खुशी को खराब कर देते।

कुछ दिनों तक शादी की दावतें जारी रहीं और हमारे पुराने घर में काफी खुशी और चहल-पहल रही। फिर एक के बाद एक मेहमान वापस जाने लगे और कुछ हफ्तों के बाद मैं भी बम्बई वापस लौट आई।

एक साल बीत चुका था। फिर एक बार इलाहाबाद गई। इस बार मैं अपनी बहन स्वरूप के साथ एक हफ्ता गुजारने जा रही थी। स्वरूप नौ महीने जेल में काटकर पन्द्रह दिन के लिए छुट्टी पर बाहर आई थीं। रात को बहुत देर बाद मैं उस स्टेशन पर आई, जिससे मैं खूब वाकिफ थी। यह स्टेशन पिछली मर्तबा जितना पुराना दिखाई दे रहा था, उससे अब और ज्यादा पुराना हो गया था। एक दोस्त, एक जवान भानजी और स्वरूप की बेटी, मुझे स्टेशन पर मिले और हम सब घर गये। अब की बार मोटर पर नहीं, इसलिए कि अब हमारे पास कोई मोटर नहीं थी। हम एक पुराने तांगे पर घर गए, जो कि इलाहाबाद की खराब सड़क पर रेंगता-सा जान पड़ता था।

आखिर हम आनन्द-भवन के दरवाजों में से दाखिल हुए। इस बार मैंने वहां जो कुछ देखा वह उससे बिलकुल भिन्न था, जो मैं साल-भर पहले देख चुकी थी। अब न तो वहां ज्यादा रोशनी थी, न इधर-उधर दौड़ने वाले नौकर-चाकर। पूरे मकान में अंधेरा था, सिर्फ बाहर के दरवाजे पर एक बत्ती धीमी-धीमी जल रही थी और एक कमरे में कुछ रोशनी दिखाई दे रही थी। हमारा घर उदास, उजड़ा हुआ और खामोश दिखाई दे रहा था। मुझ पर भी कुछ ग़म और उदासी छाई थी और मुझे ऐसा लग रहा था कि मैं किसी ऐसी जगह जा रही हूँ जिससे मैं वाकिफ नहीं हूं और नहीं जानती कि आगे चलकर क्या नज़र आएगा। सहमे हुए दिल से मैं तांगे से उतरी और स्वरूप की तलाश में गई। जब मैंने उसके कमरे में कदम रखा तो वह मुझसे मिलने और मुझे गले लगाने के लिए आगे बढ़ी। मैंने अपनी बाहें उसके गले में डाल दीं और वह कोशिश की कि वह मुझे देखकर यह पता न लगा सके कि उसकी

खराब हालत देखकर मु कितना दुःख हो रहा है। अभी साल-भर पहले जब मैंने उसे देखा था तो वह अपनी उमर से दस वर्ष कम मालूम हो रही थीं। अब वह नौ महीने जेल में गुजारकर चंद हफ्तों के लिए बाहर आई थीं। फिर एक बार जेल की ज़िंदगी ने मेरी एक अज़ीज़ की ज़िंदगी को तबाह कर दिया था और उसके चेहरे पर इस तबाही के निशान दिखाई दे रहे थे। इन चंद महीनों में वह पहले से कहीं ज्यादा बूढ़ी दिखाई देने लगी थीं।

मैं एक हफ्ता उसके साथ रही और फिर अपने घर और अपने बच्चों में वापस लौटी। ज़िंदगी फिर अपने प्रियजनों के बिना ही कटने लगी। स्वरूप को न जाने कब तक के लिए जेल वापस जाना था और अपनी तीन छोटी बच्चियों को ऐसी दुनिया में छोड़कर जाना था जहां आशा और सुख की जगह निराशा और कटुता ने ले ली थी। ऐसी दुनिया में इन छोटी बच्चियों को बिना किसी खास सहारे के अपना जीवन बिताना था।

जब मैं रेल पर बंबई वापस लौट रही थी तो यही विचार मेरे मन को सता रहा था कि मैं फिर आनन्द-भवन कब जाऊंगी और अबकी जब जाऊंगी तो वहां और क्या-क्या अन्तर पाऊंगी। क्या फिर कभी वह घर वैसा ही सुहावना और हंसी-खुशी से भरा हुआ घर होगा, जैसा पहले कभी था? या वह ऐसा ही सुनसान और उदासी-भरा घर रहेगा जिससे हंसी-खुशी हमेशा के लिए रुख़सत हो गई हो? मुझे उम्मीद थी कि ऐसी बात न होगी और मैंने ख़ामोशी से अपने मन में यह प्रार्थना की कि आनन्द-भवन सचमुच फिर एक बार वैसे ही आनन्द से भर जाए, जैसाकि उसका 'आनन्द-भवन' नाम रखते वक्त पिताजी की भावना थी।

मैं फिर एक बार अपने छोटे-से घर में वापस आ गई। मेरा दिल टूट रहा था। हमारा छोटा-सा घर भी उदास ही था; क्योंकि राजा अब हमारे साथ नहीं थे। जीवन चल जरूर रहा था मगर उसमें कोई सुख और आनन्द नहीं था, कारण कि जवाहर और हमारे दूसरे सैकड़ों-हजारों देशवासी लोहे की शलाखों के पीछे बन्द थे। पिछले चार साल से लड़ाई जारी है, जिसने सारी मानवता को घेर रखा है और हम हिन्दुस्तानियों को अपनी आज़ादी से महरूम रखा गया है। हमारी इच्छा मालूम किए बिना लड़ाई की इस भट्टी में हमें झोंक दिया गया है। हमसे कहा गया है कि इस लड़ाई से सारी

दुनिया को शांति और आज़ादी मिलेगी, पर इस पर भी पिछले चार साल में हर कदम पर हमें अपनी आज़ादी से रोका गया है और इसका भी मौका नहीं दिया गया कि हम अपने विशाल देश के लोगों और उसकी शक्तियों को अपने ही नेताओं की निगरानी में इकट्ठा कर सकें। हमारे देशवासियों के मन में एक तरफ साथी राष्ट्रों से हमदर्दी थी और दूसरी तरफ साम्राज्यवाद से नफरत थी और इन दोनों के बीच में हमारी खींचातानी हो रही थी। इसलिए हमने यह मांग रखी कि लड़ाई के उद्देश्य क्या हैं, उनका साफ ऐलान किया जाए, जिससे सभी को इस बात का भरोसा हो कि लड़ाई से उन्हें भी आज़ादी मिलेगी। पर हमारी मांग का कोई जवाब नहीं मिला। १६४२ में बहुत काफी झिझक और पशोपेश के बाद हमसे यह वायदा किया गया कि लड़ाई के बाद हमें आजादी दी जाएगी पर इस वायदे के साथ ऐसी-ऐसी शर्तें लगाई गईं, जो दुनिया का कोई राष्ट्र कभी भी पूरा नहीं कर सकता था। फिर ऐसे वायदे तो हमसे पहले भी बहुत बार किये जा चुके थे, जो कभी भी पूरे नहीं हुए। यह कितना बड़ा जुल्म और मजाक है कि हमसे उसी आज़ादी और जनतंत्रवाद के लिए, जो खुद हमें नहीं दिया जाता, हमें अपना खून बहाने के लिए, अपने लोगों को भूखा मारने के लिए और तरह-तरह की तकलीफ उठाने के लिए कहा जाए!

आज अपनी आज़ादी के लिए हमारा आंदोलन जारी है। हम चाहते हैं कि अपनी किस्मत के आप मालिक बनें। हम साम्राज्यवाद से छुटकारा चाहते हैं, केवल उस हद तक ही नहीं, जहां उसका हमसे सम्बंध है; बल्कि हम उसे दुनिया भर में हर जगह से मिटाना चाहते हैं। हमारी आज़ादी उसी शोषण को मिटाने वाली शक्ति का एक रूप है और उसका मकसद खुद अपने आपको और बाकी सारी दुनिया को भी विदेशियों की गुलामी और लूट से मुक्ति दिलाना है। १६४१ में हमने व्यक्तिगत सत्याग्रह का जो आंदोलन शुरू किया था उससे हमारी मुराद यह थी कि ब्रिटेन अपने लड़ाई के मकसदों क साफ ऐलान कर दे। यह दुनिया की नैतिकता से हमारी अपील थी; पर इस अपील का कोई जवाब नहीं मिला। हमारी अपील में ज्यादा ज़ोर पैदा करने और दुनिया को उसे सुनाने के लिए हमारी तरफ से और ज्यादा कुर्बानियों की ज़रूरत थी। हमारी सरहदों पर हालत बड़ी खतरनाक होते हुए भी कांग्रेस को लोगों से यह कहना पड़ा कि वे और ज्यादा कुर्बानियों के लिए तय्यार हो

जाएं। चूंकि अब सवाल सिर्फ सारी दुनिया की शांति और आज़ादी का नहीं था; बल्कि अब अपने देश को फासिस्ट हमले से बचाने का भी था, इसलिए हमें यह नया आंदोलन शुरू करना पड़ा और हालांकि अभी वह आंदोलन शुरू नहीं हुआ था और हुकूमत से बातचीत चल ही रही थी कि हमारे नेताओं को पकड़ लिया गया। हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए हम आज जो आंदोलन चला रहे हैं,वह हमारी तंग राष्ट्रीयता का प्रतीक नहीं हैं, बल्कि सही मायनों में मानव-स्वतंत्रता प्राप्त करने की जागरूक इच्छा है। हिन्दुस्तानियों ने फासिज़्म और साम्राज्यवाद का हमेशा विरोध किया है और अपने खाली हाथों से वे चीन, स्पेन और दूसरे देशों को जो भी मदद वे दे सके, उन्होंने बराबर दी है। जहां वे कोई प्रत्यक्ष मदद नहीं दे सके, वहां उन्होंने कम-से-कम यह किया है कि अपनी हमदर्दी और अपना विश्वास दुनिया के गिरे हुए और कमजोर लोगों के साथ ज़ाहिर किया है।

आज हमारे सामने और सिर्फ हमारे ही नहीं, सारी दुनिया के सामने जो चीज़ है वह यह कि लड़ाई के दौरान में ही एक ऐसी राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक बुनियादी तब्दीली हो जाए कि जिससे हम अपनी पूरी प्रजा को जापानी हमले के मुकाबले के लिए खड़ा कर सकें और हिन्दुस्तान को तरक्की के रास्ते पर डालकर अपने देश की तबाही रोक सकें। इस वक्त सारी दुनिया में अजीब गड़बड़ी फैली हुई है और यह हमारा काम है कि उसमें किसी हद तक सही शांति और व्यवस्था कायम करें। हो सकता है कि यह काम सिर्फ हम हिन्दुस्तानियों के बस की बात न हो; पर जब तक हम इस मकसद को अपने सामने रखे रहें, और इस मशाल को रोशन रखें तो हो सकता है कि जो काम हम न कर सकें वह और लोग कर सकेंगे। अपनी इस एक ही मंजिल तक पहुंचने का जो रास्ता है, उसमें बहुत-सी रुकावटें हो सकती हैं, पर जब तक हमारे कदम सीधे रास्ते पर हों और हमारी नज़र ठीक से अपनी मंज़िल पर हो तो हमें इन रुकावटों की क्या पर्वाह है?

इन विचारों को मानने वाले हज़ारों लोगों के लिए, जो दुनिया में जगह-जगह फैले हुए हैं, और ख़ासकर हम हिन्दुस्तानियों के लिए, जब तक हम अपनी आज़ादी प्राप्त न कर लें आराम करने या चैन लेने का सवाल ही पैदा नहीं होता, चाहे हमें उसकी कितनी ही कीमत क्यों न अदा करनी पड़े। अगर हमारी किस्मत में यही लिखा है कि हम सारी उम्र तकलीफें उठाते रहें तो हमें

उसके लिए भी तैयार रहना चाहिए और अपना काम इस उम्मीद के सहारे जारी रखना चाहिये कि भले ही हमें सुख और वैभव प्राप्त न हों, हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए ऐसी दुनिया बनाएंगे जो हमारी इस दुनिया से ज्यादा सुखी और सम्पन्न होगी। पीयरी व्हां पासें ने अपनी किताब 'केवल वह दिन' में लिखा है :

"एक दिन ऐसा जरूर आएगा जब इन्सान अकेले घूमने से तंग आकर अपने भाई की तरफ देखने लगेगा। वही दिन होगा, जब हम दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने लगेंगे और जब दूसरों की तकलीफ और आशाएं हमारी तकलीफें और आशाएं बनेंगी। वह संसार जिसमें प्रेम और न्याय भरा हुआ हो उसी दिन करीब आयेगा जिसके लिए सारी दुनिया बेकरार है और जिसका नमूना ख़ामोश रात के तारे भी बढ़िया, लेकिन अधूरी तौर पर पेश करते हैं।"

जब से मैं पैदा हुई तब से १९१९ तक का जीवन मेरे लिए सुख, शांति और आनन्द का था। मेरी खामोश ज़िंदगी में पहली बेचैनी जलियांवाला बाग के कत्लेआम से पैदा हुई और इस घटना से मैं उन बातों को सोचने लगी, जिन पर मैंने पहले ग़ौर नहीं किया था। वह पहली उथल-पुथल थी। इसके बाद तो और कई ऐसी घटनाएँ हुईं और वे एक-से-एक बढ़कर थीं। १९२० के बाद हममें से शायद ही किसी को शांत जीवन नसीब हुआ हो, पर हमारा खानदान एक जगह बना रहा और यह बड़ी बात थी। १९३१ में पिताजी की मौत ने यही नहीं कि हम लोगों के जीवन में एक बड़ी कमी कर दी, बल्कि उसने हमारे लिए और मुसीबतोंका भी दर्वाज़ा खोल दिया। १९३६में कमला चल बसीं और दो साल बाद माताजी। हमारी आर्थिक हालत अब इतनी अच्छी न थी। हम-में से किसी के लिए भी जीवन सुखी या आसान नहीं था, पर मेरा ख़याल है कि इसके कारण हम लोगों से ज्यादा तकलीफ दूसरी पीढ़ी को उठानी पड़ी। बार-बार अपने रिश्तेदारों की जुदाई और दूसरी छोटी-बड़ी तकलीफों और मुसीबतों ने मुझे कभी-कभी बहुत ज्यादा परेशान किया है और मायूस भी कर दिया है। पर जिस बात के कारण मैंने बिलकुल हिम्मत नहीं हारी वह मेरी अटल श्रद्धा और पूर्ण विश्वास है कि हम इन्साफ के लिए लड़ रहे हैं। यह केवल हमारा ही काम नहीं है, दुनिया भर के दलितों का और आम लोगों का काम है। यही विचार मेरी सहायता करता है और मुझे यकीन है कि और बहुत-सों

की भी इसी तरह सहायता करता होगा। यही सबब है कि हम तमाम दुःख और जुदाइयां बिना किसी शिकायत और कड़ुवाहट के सह लेते हैं।

जीवन की अनिश्चितता जो मेरे खानदान के हिस्से में आई है और जो हमारे और बहुत-से देशवासियों के हिस्से में भी आई है, ऐसी चीज़ है जो इन्सान को धीरे-धीरे थका देती है। मैं इस आशा पर जीती हूं कि फिर सब कुछ ठीक होगा, फिर अज़ीज़ एक साथ मिल बैठेंगे, फिर सुख और शान्ति के दिन आएंगे, फिर हमारा देश सम्पन्न होगा; पर सच तो यह है भविष्य अभी इतना रोशन नज़र नहीं आता। फिर भी उन सब तकलीफों और परेशानियों के होते हुए भी—और मैं समझती हूं कि हमें इन चीजों का हिस्सा जरूरत से कुछ ज्यादा मिला—और उन कुर्बानियों के, जो हमें अब तक देनी पड़ी हैं और शायद आगे चलकर भी देनी पड़ेंगी और उस बेचैनी और उथल-पुथल के जो मेरे पूरे जीवन की साथिन बनी हुई हैं, जब मैं जो कुछ हुआ उस सब पर नजर डालती हूं तो मुझे किसी तरह की भी कोई शिकायत नहीं होती।

"ओ मेरे बंधुओ, अपनी सादगी की श्वेत पोशाक में अभिमानी और शक्तिशाली के सामने खड़े होने से तुम्हें लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे सिर पर मानवता का मुकुट हो और तुम्हारी आजादी का अर्थ हो आत्मा की आज़ादी। अपनी निर्धनता और अभावों पर प्रतिदिन भगवान का सिंहासन बनाओ और गाँठ बाँध लो कि जो विशाल दिखाई देता है, वह महान नहीं है और अभिमान कभी भी चिरंजीव नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

['दो बहनें' और 'स्मृतियां' लेखों के विषय को बढ़ाकर प्रस्तुत पुस्तक 'कोई शिकायत नहीं' तैयार की गई है। पुस्तक तो यहां समाप्त हो जाती है; लेकिन उसका विषय खत्म नहीं होता, वह आगे जारी रहता है। मैं इन लेखों को यहाँ इसलिए दे रही हूँ; क्योंकि जो स्मृतियां सदैव मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगाती रहती हैं, वे इन लेखों में संग्रहीत हैं।]

दो बहनें

दस साल की एक छोटी लड़की अपनी मां के बिस्तरे के पास खड़ी उस नई बच्ची की तरफ देख रही थी, जो हाल ही में पैदा हुई थी। यह उसकी छोटी बहन थी। इतनी छोटी, पर इतनी खूबसूरत! दस साल की उस लड़की में उससे ज्यादा अकल थी, जो उसकी उम्र के बच्चों में होती है। इसलिए उसने इस किस्म के बेवकूफी के सवाल नहीं किए कि यह छोटी बच्ची कहां से और किस तरह आई। उसे इन बातों का कुछ धुंधला-सा खयाल था और वह कुदरत की इस कारीगरी पर ताज्जुब कर रही थी। वह यह भी सोच रही थी कि क्या कभी उसके भी कोई ऐसा ही छोटा बच्चा होगा, जिससे वह खेल सकेगी? उसका दिल उस नाजुक बच्चे की ओर गया, केवल उस प्रेम से नहीं, जो बहन को बहन से होता है। उसके साथ एक ऐसी कोमलता और रक्षा का खयाल भी था, जो प्रेम की अपेक्षा कहीं अधिक था।

साल पर साल गुज़रते गए। एक बड़े अमीर घराने में एक उत्सव का मौका था और हर तरफ खुशी की चहल-पहल थी। पुराना मकान बहुत खूबसूरती से सजाया गया था और अन्दर से गाने-बजाने और हँसी-मज़ाक की आवाज़ आ रही थी। घर की सबसे छोटी लड़की की उस दिन शादी हो रही थी। वह अपने घर के एक कमरे में बैठी हुई थी। अभी वह कमसिन ही थी,

अपनी गुलाबी रंग की साड़ी में वह सुहावनी सुबह से भी ज्यादा खूबसूरत दिखाई दे रही थी। उसे उस दिन के महत्व का ठीक से अंदाज़ा भी न था। उसके पास ही उसकी बड़ी बहन बैठी थी। वह भी जवान थी और सुन्दर भी। वह एक सफेद साड़ी पहने हुए थी, पर उसके कोई गहना न था; क्योंकि वह बचपन में ही विधवा हो चुकी थी। जब उसकी शादी हुई; उसकी उम्र भी बीस साल से कम ही थी; पर शादी के साल-भर बाद ही उसके पति की, जिसे वह पूरी तरह जान भी न सकी थी, मृत्यु हो गई। आज उसके दिल में दुःख या खुद अपने ऊपर अफ़सोस के लिए जगह न थी। उसकी छोटी बहन का, जिसे उसने अपनी बच्ची की तरह पाला था, आज ब्याह हो रहा था और उसके लिए आज बड़े ही आनंद का दिन था। उसकी सारी ममता अपनी छोटी बहन के लिए थी। खुद अपने लिए उसके मन में किसी चीज की भी इच्छा न थी; न अच्छे कपड़ों की, न गहने-पाते की, न ऐश-आराम की। हर रोज और आज के दिन खासकर उसकी जो प्रार्थना थी, वह बस यही थी कि उसकी प्यारी बहन के रास्ते में किसी तरह का दुःख न हो और जब वह उस नन्हीं-सी दुलहन के करीब बैठी थी और अपनी दुखभरी आंखों से उसकी तरफ प्रेम से देख रही थी तो उस सुन्दर दृश्य को देखकर उसका दिल गर्व से बल्लियों ऊंचा उछल रहा था।

और भी कई साल गुजर गए। छोटी बहन अब बड़ी खूबसूरत औरत बन गई थी। वह कई बच्चों की मां थी और एक बड़े सुखी घर की मालकिन। इस तरह कई और साल सुख और संतोष के साथ बीत गए।

अब उस बड़े घर में पहले से कुछ फर्क हो गया। अब उस घर के मालिक घर को शोभित करने के लिए मौजूद न थे। घर की स्वामिनी गमगीन और अकेली थी, और वही घर जो कभी हंसी-खुशी से भरा-पूरा रहता था, अब ख़ामोश और दुखी था। ऐसा मालूम होता था कि इस घर का सारा तेज और सुख उसी के साथ चला गया, जो घर की जान था।

बाग के एक कोने में दो बड़ी उमर की औरतें बैठी थीं, पर उमर के बढ़ने से उनकी जवानी की खूबसूरती और बढ़ गई थी। उन दोनों में जो बड़ी थी वही ज्यादा मजबूत मालूम होती थी। उसके सिर में शायद ही कोई सफेद बाल होगा और उसके दुखी चेहरे में कुछ ऐसी कोमलता और दयालुता थी जो बयान से बाहर थी और ऐसा मालूम होता था कि यह किसी दूसरी दुनिया

की बसने वाली है। दोनों में से छोटी अब भी बड़ी ही नाजुक और कमजोर थी। उसके बाल करीब-करीब सभी सफेद हो चुके थे; पर वे उसके चेहरे को, जिस पर दुख और तकलीफें अपने निशान छोड़ गई थीं, कुछ अजीब शोभा दे रहे थे। दूर से हवा के झोंकों के साथ जब छोटे नाती-पोतों की आवाज़ उनके कानों में पड़ती तो उनके चेहरों पर हंसी खेलने लगती थी।

वह बिस्तरे के पास खड़ी थीं, पत्थर की तरह खामोश। वह अपनी छोटी बहन के शांत और सुंदर चेहरे को देख रही थीं। मरने के बाद भी वह वैसी ही सुंदर दिखाई दे रही थीं, जैसी कि जीवित अवस्था में थीं। पर यह कैसे हो सकता था कि जब जीवन का काम ख़तम हो गया तो वह अपनी बड़ी बहन को पीछे छोड़कर अकेली आगे चली जाएं! यह मुमकिन न था। वह जो हमेशा से डरने वाली थीं; अनजान रास्ते का इतना लंबा सफर वह अकेले कैसे कर सकती थीं। बड़ी बहिन उसे अकेला जाने नहीं दे सकती थीं। उन्हें भी उसके साथ-साथ जाना चाहिए, उसका हाथ थामने के लिए और उसे हिम्मत दिलाने के लिए।

छोटी बहन चली गई, अब बड़ी बहन के पास टूटे हुए दिल के सिवा और कुछ न था, जो खून के आंसू रो रहा था। वह चुपचाप एक कोने में पड़ी हुई थी, हैरान, परेशान और थकी हुई। उसकी आंखें बन्द हो गईं और उसके दिल की आंखों के सामने तरह तरह की तसवीरें घूमने लगीं—एक नन्ही-मुन्नी बहन जो अपनी मां के पास बिस्तर पर लाचार पड़ी हुई थी; एक जवान दुलहन जो बड़ी ही खूबसूरत मगर बच्चों की तरह मासूम थी; एक शानदार मां और उसके साथ उसके बच्चे; एक बूढ़ी बहन, कमजोर और थकी हुई और फिर उसकी प्यारी बहन ही की तरह नज़र आने वाली प्रतिमा, निस्तेज और ख़ामोश गोया उसमें अब जान बाकी न थी! लेकिन नहीं, वह मरी नहीं थी; क्योंकि वह तो अपनी बड़ी बहन को इशारे से बुला रही थी कि आओ और इस नाले को पार करने में मुझे मदद दो। अब बड़ी बहन के चेहरे पर हंसी की चमक दिखाई दी, अद्वितीय कोमल हंसी। उसने अपना हाथ इसलिए आगे बढ़ाया कि अपनी छोटी बहन का हाथ पकड़े और उसे दूसरी दुनिया में क़दम रखने में मदद दे।

अब उसके चेहरे पर भी अनन्त शांति छाई हुई थी। शांति और सुख इसलिए कि क्या वह भी सिर्फ कुछ घंटों की जुदाई के बाद फिर अपनी

बहन से जाकर नहीं मिली और उसके साथ इस दुनिया के आख़िरी छोर तक और इसके बाद की दूसरी दुनिया में भी नहीं जा रही थी? उसका पूरा जीवन अपनी बहन की श्रद्धाभरी और निस्वार्थ सेवा की एक लम्बी कहानी थी। मौत में भी इतनी शक्ति न थी कि उन दोनों को जुदा रख सके।

स्मृतियां

किसी कवि ने कहा है, "स्मृतियां वसंत ऋतु के फूलों की-सी होती हैं।" जब पिछली बातें याद आती हैं तो वह मनको ऐसा ही आनंद देती हैं जैसी सुन्दर फूलों की सुगंध किसी अकेले मन को देती है। पर हर बात की याद ऐसी सुहावनी नहीं होती। कुछ बातें ऐसी भी होती हैं, जिनकी याद के साथ कुछ दुख भी होता है, कुछ ऐसी जिनसे अफसोस होता है और कुछ ऐसी भी कि जिनके आते ही ऐसा दर्द होता है जो समय के गुजरने से या वातावरण के बदलने से कम नहीं होता। इन्सान को ऐसे दिनों की याद भी होती है, जो खुशी और आनंद के दिन थे, जिनमें चारों ओर प्रकाश और प्रसन्नता थी। फिर ऐसे दिनों की भी याद आती है, जब खुशी का सूरज दुख के बादलों में घिरा हुआ था और जीवन सूना और बेकार मालूम होता था; पर इन सब बातों की याद गुज़र जाती है, इसलिए कि उसे गुज़र जाना ही चाहिये; पर जाते-जाते इनमें से कुछ बातों की याद हलके-से निशान छोड़ जाती है और कुछ की याद ऐसे निशान छोड़ जाती है, जो कभी भी मिटाये नहीं जा सकते।

इसी तरह जब मैं अपने बचपन के घर को हर बार वापस जाती हूँ तो पुरानी स्मृतियां जाग उठती हैं। बड़े ही अच्छे बचपन की सुखभरी याद, फिर बाद के बरसों की दुखभरी याद और उन दिनों की याद जो अब कभी पलट कर नहीं आ सकते, ऐसी याद जो दिल को इतना ग़मगीन बनाती है कि दिल बस टूटने लगता है, इसलिए कि मेरा घर अब वह पुराना घर नहीं रहा, जो वह पहले था और हर बार जब मैं वहां जाती हूं तो कोई-न-कोई नई बात मुझे दिखाई देती है।

मैं उसी पुराने बाग में जा बैठी, जहां मैं बचपन में बैठा करती थी। हरदम बदलती रहने वाली इस दुनिया में यही एक जगह।ऐसी है, जो बदली

वह किसी मुसीबत या बदनसीबी में नहीं हुआ था, बल्कि उसका सबब यह था कि लोगों के दृष्टिकोण में और राजनैतिक विश्वासों में तबदीली हो गई थी ।

कुछ साल और निकल गए। पुराने मकान के करीब ही अब एक नया मकान और बन गया था। नया मकान क्या था, एक सपना था, जिसे एक प्रिय पिता ने अपने प्रिय पुत्र के लिए मकान का रूप दे दिया था; पर इसके रहनेवालों को उससे सुख बहुत कम और दुःख बहुत ज्यादा मिला।

मकान के बड़े कमरों में से एक में एक बूढ़ा आदमी बैठा था। उसके बाल बर्फ की तरह सफेद होगए थे। उसका सिर झुका हुआ था और वह कुछ सोच में मग्न था। वह बहुत बीमार था और कुछ राजनैतिक विचारों के लिए उसके बेटे को जेल भेज दिया गया था। बेटे के जेल जाने से पहले उससे मिलने के लिए उसने घर तक पहुंचने में सैकड़ों मील का सफर किया था। उस बूढ़े ने भी उन्हीं विचारों की ख़ातिर कई महीने जेल की कोठरी में गुज़ारे थे और फिर वहीं जाने के लिए वह तैयार था। वह ठीक समय पर घर पहुंचा। बस इतनी देर पहले कि अपने बेटे के जेल जाने से पहले उससे एक बार हाथ मिला ले। उसके पास ही वह छोटी-सी औरत बैठी थी, जिसने बड़ी बहादुरी के उसके पूरे जीवन में और उसके हर दुख-सुख में उसका साथ दिया था। वह अब पहले से भी ज्यादा कमज़ोर दिखाई देती थी, पर आश्चर्य की बात यह कि हर नया वार सहने के लिए वही अपने बूढ़े पति को शक्ति देती थी, वही जो इतनी दुबली-पतली और कमजोर और शरमीली थी और उस पति को सहारा देती थी, जो हमेशा से निडर और मजबूत था।

कमरे के एक कोने में उस घर की बड़ी लड़की बैठी थी। उसका ब्याह हो चुका था और वह बच्चों की मां बन गई थी और उसे इस बात का पूरा अन्दाज़ा था कि उसके माता पिता को इस समय कितना दुःख हो रहा होगा। उसकी नज़र उन्हीं दोनों के चेहरों पर जमी हुई थी और उसका दिल यह देखकर टूट रहा था कि वह अपना दुःख खामोशी से झेल रहे हैं और वह खुद उनकी कुछ भी मदद नहीं कर सकती। उसी कमरे के दूसरे हिस्से में दीवार से सिर टेककर और अपना मुँह सब लोगों की ओर से मोड़कर उस घर की छोटी लड़की खड़ी थी। उसके दिल में भी दर्द था। उसकी आंखों में आंसू थे जो अभी छलके नहीं थे। उसके दिल में क्रांतिकारी विचार भरे हुए थे। और सब लोग तो यह कह चुके थे कि अब किस्मत में जो कुछ लिखा होगा, हो

जाएगा; पर यह लड़की कुछ और ही सोच रही थी। कभी तो उसे यह खयाल आता था कि जो बड़ा भारी मकसद उसके सामने है उसके लिए यह सब त्याग और कुर्बानी ज़रूरी है। कभी-कभी जब वह अपने माता-पिता की परेशानियों का पहाड़ देखती थी और उनकी तनहाई महसूस करती थी जो उसके दिल में बहुत सी शंकाएँ पैदा होती थीं। वे अगर चाहते तो दुनिया को प्राप्त कर सकते थे और चैन से रह सकते थे;पर उन्होंने कर्तव्य का कठोर रास्ता अपने लिए पसंद किया और अपना जीवन मानव-जाति की और अपने देश की सेवा के काम में लगा दिया। उसके दिल में ऐसे परस्पर विरोधी विचार पैदा होते थे और उसे यह हिम्मत न होती थी कि वह अपने माता-पिता की तरफ देखे, जिनका दुःख वह खुद कम नहीं कर सकती थी। घर के प्यारे बेटे के बिना सारा घर सूना था; पर वह पुराना घर भी कुछ अजीब शान से खड़ा था और ऐसा मालूम होता था कि उसे भी उस बेटे पर गर्व है, जो उसकी छाया में पला और बड़ा हुआ है। माता-पिता को वक्त का कुछ ख़याल ही न था। वे तो बस उस बेटे की राह तक रहे थे, जो कुछ मील के फासले पर जेल की बर्फ जैसी ठंडी कोठरी में पड़ा था और इधर ये दोनों अपने आलीशान महल जैसे मकान में बैठे थे और उस आराम से नफ़रत कर रहे थे, जो उनके चारों ओर था।

कुछ देर तक वे दोनों ऐसे ही बैठे रहे। वे दोनों अपने ही विचारों में मग्न थे; पर वे विचार एक ही व्यक्ति के लिए थे। यह हालत सिर्फ थोड़ी देर के लिए रही। पिताजी अपनी आह को दबाकर उठे, उनके चेहरे, खासकर उनकी ठुड्डी, से उनके दृढ़ निश्चय का पता चल रहा था। वह सोच रहे थे कि अब उन्हें उठ खड़ा होना चाहिये और जिस काम के करने से उनके बेटे को रोक दिया गया था, उसे आगे बढ़ाना चाहिये। यही सोचकर वे उठ खड़े हुए और वहां से चल दिए। और वह छोटी-सी औरत, जो एक बहादुर बेटे की माता थी, वह भी उठ खड़ी हुई। उसके दिल में दर्द था, पर उसके चेहरे पर हिम्मत की मुस्कराहट झलक रही थी। वह उठी और अपने रोज़ के कामों में लग गई।

कई साल और बीत गये। मीलों तक हजारों आदमी रास्ते के दोनों तरफ खड़े थे। इनमें कोई आंख ऐसी न थी, जो आंसू न बहा रही हो और न कोई दिल ऐसा था जो दर्द से टूट न रहा हो! हर एक यही समझ रहा था

कि खुद उसी का अपना कोई आत्मीय उसे छोड़कर जा रहा है। ये सब लोग उस महान व्यक्ति की, जो अब उनके बीच में नहीं था, मृत्यु पर श्रद्धांजलि अर्पित करने इकट्ठे हुए थे। वह उम्र भर लड़ते रहे थे, उन्होंने कई दिन और कई रातें मौत का भी मुकाबिला किया और प्रयत्न करते रहे कि कुछ साल और ज़िंदा रहें और अपनी ज़िंदगी भर के काम का नतीजा अपनी आंखों से देख लें; पर विजय मौत की हुई जैसी कि अंत में उसी की होनी थी और वे दुनिया से बिदा हो गए। जो घर कभी हँसी-खुशी से भरा रहता था, उसी घर के एक कमरे में उस बहादुर वीर की विधवा बैठी हुई थी, जो अपने आखिरी सफर पर रवाना हो चुका था। अपने पति से जुदाई का सदमा इतना ज़बरदस्त था कि वह गरीबिनी आंसू भी नहीं बहा सकती थी। पास ही अपनी बाहें उसके गले में डालकर उसका बेटा बैठा था। उसकी आंखों में भी आंसू भरे थे; क्योंकि कि वह अपने पिता को बहुत चाहता था। उसकी समझ में नहीं आता था कि अपनी माता को कैसे दिलासा दे, पर माता ही खुद उसे दिलासा दे रही थी और अपने जवान बहादुर बेटे का हाथ थामकर उसका दिल बढ़ा रही थी।

जमाना आगे बढ़ता गया। उस पुराने घर ने बहुत से परिवर्तन देखे थे और अभी उसे और भी बहुत-कुछ देखना था। उस घर की तरफ जाने वाले रास्ते पर पुलिस की गाड़ियां खड़ी थीं और मकान के अहाते में भी जगह-जगह पुलिस दिखाई दे रही थी। यह सब तैयारी उस घर की दोनों लड़कियों की गिरफ्तारी के लिए थी। इतने साल वे दोनों भी ख़ामोश नहीं बैठी थीं। वे भी काम करती रही थीं और अपने पिता के कदमों पर चलकर अपने खान-दान की पुरानी परम्पराओं पर कायम थीं। इसीलिए उन दोनों को भी उसी तरह जेल जाना पड़ा, जिस तरह इससे पहले उनके पिता और भाई जेल गये थे। पुलिस के अफसर ने अदब से वारंट पेश किया और लड़कियों ने उसे हंसकर कबूल किया और अपनी कुछ जरूरी चीजें लेने अन्दर चली गईं। ऐन उस वक्त उनकी मां अपने कमजोर पैरों से जितनी तेजी से चल सकती थी, चलकर बाहर आई और पूछने लगी, "यह सब क्या हो रहा है? इतनी गाड़ियां और इतने लोग क्यों जमा हैं?" बड़ी लड़की ने अपनी मां के गले में बांहें डालीं और चुपके से उनके कान में बात कह दी। एक क्षण भर के लिए उन्होंने कमजोरी दिखाई। उनकी आंखों में आंसू आ गए।

उन्होंने लड़की का हाथ पकड़ कर कहा, "तुम्हारे बिना तो मैं बिलकुल अकेली रह जाऊंगी।" पर यह हालत एक क्षण भर ही रही। वह फिर तनकर खड़ी हो गई और इस नई आज़माइश का एक शेरनी की तरह मुकाबला करते हुए उन्होंने कहा, "मुझे तुम पर गुमान है, बहुत गुमान और मैं भी अभी इतनी बूढ़ी तो नहीं हूँ कि तुम्हारे पीछे न चल सकूं।" यह बात कहते वक्त उनकी आंखें चमक उठीं। उन्होंने अपनी दोनों लड़कियों को खूब ज़ोर से गले लगाया और आशीर्वाद दिया। पर उनका कोमल और कमजोर शरीर इतने कष्ट सहन कर चुका था कि अब ज्यादा सहन करने की शक्ति उसमें बाकी नहीं रही थी। जैसे ही उन्होंने अपने हाथ उठाए, वह बेहोश हो गई। दोनों लड़कियों को उस जगह भेज दिया गया, जहां उन्हें ले जाने के लिए वे गाड़ियां आई थीं। और जिंदगी इसी तरह गुज़रती रही।

जेल का एक कमरा और उसकी काली भयानक दीवारें! उसके अन्दर दो बहनें बैठी थीं। अब वे एक नए रिश्ते से–कैदी होने के नाते––एक दूसरे के और ज्यादा करीब थीं। एक दूसरी के सहारे वे बिलकुल करीब-करीब बैठी थीं और लोहे की शलाखों में से खूबसूरत सुर्ख आस्मान को देख रही थीं, जिसका अर्थ यह था कि जेल की दीवारों के बाहर कहीं सूरज डूब रहा था। वे दोनों बहनें अपने-अपने विचारों में मग्न थीं। एक को अपना घर, अपने पति और अपने छोटे बच्चे याद आ रहे थे, जिन्हें उसने पीछे छोड़ा था। दूसरी का दिल अपने पिता की वह हंसी सुनने के लिए तड़प रहा था, जो उसे हमेशा हिम्मत और आशा दिलाती रही थी। अपनी मां की गोद भी उसे याद आ रही थी—उसी मां की, जो उस बड़े और सुनसान मकान में अब अकेली रह गई थी।

जंजीरों की झंकार और किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनाई दी। कैदी सोचने लगे कि क्या बात है। एक पहरेदारिन उन दोनों बहनों के पास आई उसके हाथ में एक तार था। उन्होंने तार डरते-डरते लिया और एक क्षण के बाद वे एक-दूसरी की तरफ देखकर मुस्कराईं। अच्छा तो उनकी बहादुर मां ने अपना वचन सच कर दिखाया और अब वह भी किसी जेल में बन्द हैं। कितनी बहादुर थीं उनकी मां और कितने जालिम और निष्ठुर थे वे लोग, जिन्होंने पैंसठ साल की इस बूढ़ी औरतको भी जेल में बन्द कर दिया था!

कुछ साल और बीत गए। जिस घर ने सुख-दुख के इतने मौके

देखे थे, उसी के सामने आज फिर बड़ा भारी मजमा था। यह मौका उस मां की मृत्यु का था, जो एक शाम को चुपचाप दुनिया से कूच कर गईं। वह हमेशा दूसरों के लिए जिंदा रही थीं और अब किसी को तकलीफ़ दिये बिना ही चल बसीं। वह अपने बिस्तरे पर पड़ी थीं। मृत्यु के बाद भी वह वैसी ही कोमल और सुन्दर दिखाई दे रहीं थीं, जैसी जिंदगी में थीं। फूलों से लदी हुई वह एक रानी मालूम दे रही थीं। सचमुच वह रानी ही थीं।

मैंने एक सुनसान घर देखा, जिसमें अब हंसी-खुशी नाम को न थी। यह मकान एक बाग के बीच में था, पर बाग की अब देख-भाल नहीं होती थी। मकान के अंदर एक कमरे में उस घर का बेटा बैठा हुआ था। वह अपनी मेज के पास बैठा काम कर रहा था। हमेशा काम करते रहना उसकी आदत थी। उसकी जिंदगी आराम की जिंदगी नहीं थी और न उसे आगे चलकर कोई खास सुख या आराम मिलने की आशा थी; क्योंकि उसने अपने लिए एक सीधा और तंग रास्ता इख्तियार किया था और उस रास्ते के पीछे फिरने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। कभी-कभी वह अपनी थकी हुई आंखें उठाता था और देखनेवाले को उन आंखों में ऐसा दर्द और गम दिखाई देता था, जो बयान से बाहर था; क्योंकि वह अब बिलकुल ही अकेला रह गया था। पर जब कभी और लोग मौजूद होते तो वह अपने अकेलेपन को छुपा लेता था और अपनी मुस्कराहट और अपने मन मोह लेने वाले बर्ताव से वह सभी के दिल में घर कर लेता था।

मैंने कष्ट से नींद ही में करवट बदली। मेरा दिल पत्थर की तरह भारी था। पिछले बरसों में इस प्यारे घर में बड़ी-बड़ी तब्दीलियां हुई थीं; पर यह विचार दिल को खुश कर रहा था कि वह भाई, जिससे मिलने मैं इतनी दूर आई थी, अभी जेल से बाहर है; क्योंकि भाई के बिना घर में कभी वह आनन्द नहीं आता था जो उनके होते हुए आता था। मैंने अपनी आंखें खोलीं और इरादा किया कि दौड़कर ऊपर जाऊं और भाई से बातें करूं। मैंने अपनी किताब उठाई और घर की तरफ दौड़ी। जैसे ही मैं घर में दाखिल हुई, टेलीफोन की घंटी बजी। मैंने चोगा उठाया तो किसी अजीब आवाज़ ने कहा--"सुनिए, आपके भाई का मुकदमा कल होगा।" "कल मुकदमा? कैसा मुकदमा?" मैं आश्चर्य से सोचने लगी। मेरी आंखों में अभी नींद भरी हुई थी। इसलिए वह खबर ठीक मेरी समझ

में नहीं आई; पर एक ही क्षण बाद सारी बात मेरी समझ में आ गई। भाई अन्दर नहीं थे, जिनसे आकर मैं मिलती। मैं सपना देख रही थी। इसलिए कि भाई तो दो ही दिन पहले पकड़े जा चुके थे।

थकी-मांदी मैं ऊपर अपने कमरे में गई। मेरा साथ देने के लिए मेरे भाई वहां नहीं थे। उनकी जगह पिछले दिनों की बातें थीं, सुख और दुःख की बातें, जो मुझे याद आ रही थीं।